Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

श्री वि० आयुर्वेद ग्रन्थमाला ४८

सचित्र

क्रियात्मक औषधि परिचय विज्ञान

(Practical-Pharmacognosy-In Ayurveda)

लेखक
आयुर्वेद-बृहस्पति
श्री विश्वनाथ द्विवेदी

चौखम्भा भारती अकादमी
आकर ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बाक्स नं० १०६५
गोकुल भवन, के. ३७/१०६, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी—२२१००१ (भारत)
मूल्य रु० ५०—००

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन आयुर्वेद ग्रन्थमाला

४८

सचित्र

क्रियात्मक औषधि परिचय विज्ञान

(Practical-Pharmacognosy-In Ayurveda)

लेखक

आयुर्वेद-वृहस्पति

श्री विश्वनाथ द्विवेदी

शास्त्री, शास्त्राचार्य, बी० ए०

अध्यापक स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र, डायरेक्टर-आयुर्वेदिकशिक्षण

व अन्वेषण संस्था जामनगर

डीन आफ दी फैकल्टी आफ आयुर्वेद

गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

भूतपूर्व प्रिंसिपल श्री ललित हरि आयुर्वेद विद्यालय, पीलीभीत,

रीडर इन इंडियन मेडिसिन, मेडिकल कालेज, लखनऊ।

वा० प्रिंसिपल, राजकीय आयुर्वेद विद्यालय, लखनऊ

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९६६

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२३
मूल्य : [illegible]

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,
Chowk, Varanasi-1 (India)
1966

Phone : 3076

LX
N66
000057

प्रधान कार्यालय :—
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
गोपाल मन्दिर लेन,
पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स ८, वाराणसी-१

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

THE
VIDYABHAWAN AYURVEDA GRANTHAMALA
48

KRIYĀTMAKA AUṢADHIPARICHAYA VIJÑĀN

(Practical Pharmacognosy in Ayurveda With Illustrations)

By
SRI VISHWANATH DWIVEDI
B. A., Ayurveda Shastracharya, (B. H. U. Varanasi),
Professor of Dravya Gun Vijñan in Post Graduate Training Centre and
Director—Institute of Ayurvedic Studies and Research, Jamnagar.
Dean of the Faculty of Ayurveda, Gujrat University, Ahamedabad.

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1
1966

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

First Edition

1966

Price Rs. [redacted]

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Publishers and Antique Book-Sellers

P. O. Chowkhamba, Post Box arian 8, Varanasi-1 (India)

Phone : 3145

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परमपूज्य प्रातःस्मरणीय

सर्वतंत्रस्वतंत्र, वैद्यसम्राट्, पद्मभूषण

गुरुदेव श्री सत्यनारायण जी शास्त्री

के

करकमलों में

सादर समर्पित

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भूमिका

(क्रियात्मक औषधि विवरण की आवश्यकता)

भारतवर्ष में आयुर्वेद के विद्यालय व महाविद्यालयों की संख्या कम नहीं है। कई स्टेटों में आयुर्वेद विद्यालय सरकार द्वारा भी परिचालित हैं। कई प्रान्तों में ये आयुर्वेद व यूनानी के चिकित्सा बोर्डों द्वारा सम्बद्ध व साहाय्य प्राप्त भी हैं। विश्वविद्यालयों से भी कई सम्बद्ध हैं। इनमें दो प्रकार के पाठ्य-क्रम परिचालित हैं। एक वह जिनमें विशुद्ध आयुर्वेद का कोर्स पढ़ाया जाता है। दूसरे वे जिनमें मिश्रित कोर्स पढ़ाया जाता है। दोनों प्रकार के विद्यालयों में द्रव्य गुण के विषय का पाठ्यक्रम केवल नाममात्र के क्रियात्मक आधारों पर शिक्षा देते हैं। इनके क्रियात्मक विवरण में केवल मात्र औषधि दिखा देना ही या बहुत हुआ तो कहीं बनौषधि यात्रा करा करके पूरा समझ लिया जाता है। कुछ जगहों में तो इनका भी प्रबन्ध नहीं है। इस प्रकार एक-दो बार द्रव्य देखने से छात्र को सन्तोष नहीं होता, न स्मरण ही रह सकता है।

इधर बाज़ार में जो द्रव्य मिलते हैं उनमें मिलावट बहुत होती है। कौन द्रव्य शुद्ध है, कौन सा अशुद्ध है यह कहना सरल नहीं है। अतः उचित वस्तु का ज्ञान होना अशक्य-सा हो जाता है। कई द्रव्य व्यापारियों द्वारा टिकाऊ करने के लिये रंगे जाते हैं। किसी में तैल मिलाया जाता है। यथा : पारसीक यमानी व सोंठ में चूना मिलाकर सफेद बनाया जाता है। सींगिया को तैल में रंगने से पूर्व उसे गोमूत्र व काशीश के जल में भिगोया जाता है। कुछ विशेष विधि से तैयार होते हैं। यथा : कुटकी को बाज़ार में लाने से पूर्व फरमेण्ट करके सुखा कर लाते हैं। तब रंग पीला होता है व सुगन्ध आती है। पुष्कर-मूल को उसके ऊपर के छिलके को छुड़ाकर तब बाज़ार में लाते हैं। इत्यादि।

अतः केवल एक बार के दर्शन से ही द्रव्य का ज्ञान नहीं हो पाता। संदिग्ध द्रव्यों की तो बात ही पृथक् है। इस निमित्त आवश्यकता इस बात की पड़ती है कि छात्र को ठीक ज्ञान देने के लिये उसके दिखाने के बदले उसके रचनात्मक ज्ञान का भी विवरण जानना आवश्यक है। नकली बनाने वालों ने तो सारे परीक्षा के साधनों को निर्मूल बना रखा है। नकली चीजें परीक्षा में अधिक देर ठहरती हैं। असली में वे लक्षण कम मिलते हैं यथा : शिलाजीत को ही ले लें तो नकली को सरलता से असली परीक्षा द्वारा मनवाया जा सकता है। अतः द्रव्य की अन्तःरचना व बाह्यरचना को देखकर व रासा-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यनिक परीक्षा द्वारा परीक्षा करके उसका परिचय करने पर द्रव्य का भी ज्ञान विद्यार्थी को रहता है वह रचना आदि देखकर भ्रम में नहीं पड़ सकता व परीक्षणों से परीक्षा करके द्रव्य लेने में नकली द्रव्य नहीं लिया जा सकता। अतः क्रियात्मक परिज्ञान का होना अत्यावश्यक मानकर इस पुस्तक का निर्माण किया गया है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इस विषय की शिक्षा के लिये विभिन्न प्रत्यक्ष परीक्षणों का ज्ञान कराया जाता है। प्रत्यक्ष दर्शन व क्रियात्मक स्वरूप परिचय से द्रव्य का ज्ञान मानसपटल पर देर तक अंकित रहता है। छात्र इस प्रकार प्रभावित भी बहुत होता है। आयुर्वेद के शिक्षक इसमें विशेष दिलचस्पी नहीं लेते। अतः विषय भी उनकी दृष्टि में नगण्य हो जाता है।

यही नहीं, आयुर्वेद में क्रियात्मक प्रत्यक्षीकरण न होने से आधुनिक चिकित्साशास्त्र की शिक्षा की तरह प्रभावशाली नहीं होता। अतः छात्र सदा मिश्रित कोर्स में अधिकतर आधुनिक विषयों की तरफ आकर्षित होते हैं और झुकाव भी उधर ही होता जाता है। अतः आवश्यकता है कि आयुर्वेद के विषय जो कि प्रत्यक्ष दृष्ट हैं आधुनिक विषयों की तरह सुरुचिपूर्ण बनाये जाँय।

इस क्रियात्मक विवरण में द्रव्य गुण के विषय को समुचित बनाने के लिये यह प्रयत्न किया गया है। इसमें की प्रकृष्ट पद्धति द्वारा द्रव्य गुण की शिक्षा देने पर यह विषय हस्तामलकवत हो जाता है। एक द्रव्य को दो घंटे तक देखना, विवरण लिखना व भीतर की रचना को स्वयं देखकर उसका ज्ञान करना आदि एक द्रव्य पर पर्याप्त समय लगाना द्रव्य का ज्ञान मानस पटल पर जमा देता है। अतः इस विषय को आयुर्वेद की शास्त्रीय परिपाटी का स्वरूप देकर इसका यह स्वरूप निर्धारण किया गया है।

इसमें द्रव्य की वाह्य आकृति का ज्ञान, छेदन करके विशेष शक्ति के ताल द्वारा भीतरी बनावट का ज्ञान करना, उसके रस, वर्ण, विलेयता, गन्ध व शब्द आदि का स्वतः प्रत्यक्षीकरण सम्मिलित है। यथा : द्रव्य के वर्ण परिज्ञान के लिए द्रव्य का प्राकृतिक वर्ण, चूर्ण करके उसका वर्ण, भग्न करके भीतर का वर्ण, जल, घृत व तैल में पकाकर उसमें का वर्ण, सुरा व ज्वाला में डालकर वर्ण का ज्ञान करके देखना होता है। इस तरह उसका स्वरूप चिरस्थायी होता है। रस परिज्ञान के लिए द्रव्य को जीभ पर रखकर उसके रस का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। कुचला, धत्तूर, कुटकी, अश्वगन्धा का जो स्वयं रस चख

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कर नहीं जानता वह रोगी को देने में वास्तविकता का ज्ञान नहीं रख सकता। इसी प्रकार गंध विज्ञान के लिए द्रव्य का प्राकृतिक गन्ध, उसके चूर्ण का गंध, अग्नि में डालकर उसका गंध जानने पर द्रव्य का गन्ध घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष हो जाता है। द्रव्यों के मूर्त्त गुणों की परीक्षा विना स्पर्श किये सम्भव नहीं होती। गुण कार्मुक व मूर्त्त दो प्रकार के होते हैं। मूर्त्त गुणों का स्पर्श करके उष्ण, शीत, रूक्ष, खर, कठिन, स्निग्ध, पिच्छिल, मृदु आदि का ज्ञान हो जाता है। कार्मुक गुण तो शरीर में जाने पर ही ज्ञात होते हैं, अतः इस परीक्षा में मूर्त्त गुणों का ज्ञान ही अपेक्षित होता है। शब्द परीक्षा में द्रव्यगत कोई शब्द होता है तो उसको जानते हैं। यथा: करंज शण आदि। भंगुर व अभंगुर की भी परीक्षा करते हैं।

वर्ग निर्धारण: यह विषय पाँच भौतिक लक्षणों के आधार पर मिलता है। किन्तु इसका विवरण रसाधार पर ही करना ठीक होता है। सुश्रुत ने इसको अधिक स्पष्ट करके लिखा है और उसके आधार पर वर्ग बनाने पर सामान्यरूप से गण का ठीक पता चल जाता है। इसका विवरण विशेपरूप में आगे किया गया है। अतः इस प्रकार से छात्र के सामने एक रूप आ जाता है और वह अपना विचार बनाने में सफल हो जाता है।

इस प्रकार क्रियात्मक ज्ञान् के हो जाने पर द्रव्य का एक परिपक्व ज्ञान हो जाता है और छात्र को भी सन्तोष हो जाता है। इसमें अभी इतना ही ज्ञान दिया गया है जो कि आयुर्वेद के छात्र के लिये उपयोगी हो। सूक्ष्म विवेचन के लिये अणुवीक्षण यन्त्र का सहारा लेना होता है। इसमें सब छात्र जानकारी नहीं रखते। अतः आवश्यकता है कि इस तरफ अध्यापक पूर्ण ध्यान दें।

कठिनाई: इस विषय के तैयार करने में पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ा है। अभी तक कोई पुस्तक इस विचार की आयुर्वेद में नहीं थी। आधुनिक फारमेकोग्नोसी में इसका विशाल साहित्य है और एक स्थायीरूप का है। किन्तु उसमें आयुर्वेद की औषधियों का विवरण न होकर ब्रिटिश फारमाकोपिया व अमेरिकन फारमाकोपिया के द्रव्य होते हैं। जिनमें का अधिकांश भाग वैद्य चिकित्सक प्रयोग नहीं करते। अतः उनको आयुर्वेदानुकूल बनाने में नये रूप से स्वयं करके उसका विवरण दिया गया है। जहाँ पर साधन मिले उनका उपयोग किया गया है। इसके बाद यह प्रयत्न भी चालू है कि शेष औषधियों का भी विवरण तैयार करके उसका भी योग किया जाय। यह

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम बहुकालापेक्षी है। सूक्ष्म रचना का भी क्रम तैयार किया जा रहा है। जो कि इस विषय के विशेषज्ञ बनने वालों के लिये उपयोगी होगा। इसके बाद उस साहित्य का भी निर्माण हो रहा है जिसमें छात्र चूर्ण को देखकर किस द्रव्य का चूर्ण है यह ज्ञान कर सकें। वटी व अन्य वस्तुओं के मिश्रण को समझ सकें। प्रस्तुत साहित्य केवल क्रियात्मक रूप का ही विवेचन है। इसका विस्तृत साहित्य बृहत्त्रयी निघण्टु के रूप में आपके समक्ष शीघ्र आने वाला है। इसका कार्य हो चुका है। विवरण उसमें देखने की आवश्यकता है। इसमें सूक्ष्म रूप से वनौषधि का परिचय दिया गया है। अतः केवल क्रियात्मक रूप देखकर हताश होने की आवश्यकता नहीं है।

आभार प्रदर्शन :

इस पुस्तक के निर्माण में पूर्णता लाने के लिए कई आधुनिक व आयुर्वेदिक पुस्तकों से सहायता ली गई है। वानस्पतिक विवरण को स्पष्ट करने में वनस्पतिशास्त्र की पुस्तकों का आश्रय लिया गया है। जहाँ तक आयुर्वेद की संज्ञायें मिलीं हैं उनका प्रयोग किया गया है। शेष को आधुनिक संज्ञाओं के आधार पर तैयार किया गया है।

हमारे विभागीय सब व्यक्तियों ने इसमें सहयोग किया है। चित्र बनाने में कान्तिलाल भट्ट का हाथ अधिक रहा है। हमारे छात्रों ने भी उत्साह से भाग लिया है। कई चित्र श्री श्यामलालजी सक्सेना द्वारा भी बनाये गये हैं। अतः मैं उन सब सज्जनों के प्रति आभार प्रदर्शन करना अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता हूँ जिनका सहयोग हमें मिला है। जिन ग्रन्थों की सहायता ली गई है उनकी सूची अन्यत्र दी गई है।

निवेदक—
विश्वनाथ द्विवेदी

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आधार-ग्रन्थ

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन में निम्नलिखित ग्रन्थों से सहायता ली गई है उनके रचयिताओं का हम हृदय से आभार मानते हैं—

१. चरकसंहिता ।
२. सुश्रुतसंहिता ।
३. अष्टाङ्गहृदय ।
४. अष्टाङ्गसंग्रह ।
५. धन्वन्तरिनिघण्टु ।
६. राजनिघण्टु ।
७. भावप्रकाशनिघण्टु ।
८. कैयदेवनिघण्टु ।
९. मदनपालनिघण्टु ।
१०. द्रव्यगुणविज्ञान द्वितीय भाग, श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य ।
११. वनस्पतिवर्णनप्रवेश, श्री बापालालजी गुजराती ।
१२. टेक्स्ट बुक ऑफ बोटानी इंडियन एडीशन, लाउसन व साहनी ।
१३. प्रैक्टिकल फारमेकोगनोसी, टी० इ० ट्रीज ।
१४. टेक्स्ट बुक ऑफ फारमेकोगनोसी, वैलिस ।
१५. ... ..., ट्रीज ।
१६. इण्डियन मेडिसिनल प्लांट्स, कीर्तिकर वसु ।
१७. इण्डिग्रन मेटिरिया मेडिका, नादकरनी ।
१८. फोरेस्ट फ्लोरा, श्री कुञ्जीलालजी ।
१९. प्रैक्टिकल फारमेकोगनोसी ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विषय सूची

१. द्रव्यपरिचय विज्ञान

आमुख १–५

२. औषधि परिचय लिखने की विधि ६–१०

३. क्रियात्मक द्रव्य के वर्ण्य विषय ११–१२

४. विवरण में क्या लिखना उचित होगा

मूलकंद १४

पत्र १४

बीज १४

कांड १६

पुष्प १६

फल १७

निर्यास सत्व १८

५. क्रियात्मक विवरण का नमूना १९

६. वनस्पति का विवरण क्रम २२

मूल का निर्माण २७

अंकुरण ,,

मूल के भेदोपभेद ३०

परिवर्तित मूल के रूपान्तर ३२

अनियमित मूल के विभिन्न रूपान्तर ३३

वायवीय मूल का रूपान्तर ३४

भूत्व के कार्य ३५

मूल की आंतरिक रचना ३७

७. कांड ३९

कांड की रचना ४४

शुंग या शीर्ष कली ४८

त्वगीय वाह्याभ्यन्तर भाग ५०

त्वक् निर्मित एकदलीय काण्ड रचना ५२

शाखायें ५३

पत्र ५६

पर्णक्रम ६८

पुष्परचना ६९

पुष्प परिचय ७५

पुष्पच्छद वलय ७८

पुंल्हिंगचक्र ८१

पुंकेशर ८२

स्त्रीकेशर ८४

वीजोत्व ८५

आदि बीज ८६

फल तथा बीज परिचय ८७

फल का वर्गीकरण ८९

सूखे फल के भेद ९०

शुष्क न करने वाले बीज ९०

शुष्क वहुबीजीय ९१

साधारण या सलफल ९२

सामूहिक फल ९५

मिलित या ग्रथित फल ९५

बीज परिचय ९६

मूल के विषय की जानकारी १००

१. हरिद्रा १०१

२. गंध पलाशी १०३

३. कटुकी १०४–१०७

४. कर्चूर १०८

५. जटामांसी १०९

६. हिरण्य तुल्य ११०

७. शतावरी ११३

८. वत्सनाभ ११४

९. सांगली ११८

१०. पुष्करमूल ११९

११. उशीर १२०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१२. जैलप १२१-१२३
१३. भद्रमुस्ता १२४
१४. अतिविषा १२६
१५. रास्नामूल १२७
१६. सर्पगंधा १२८
१७. निशोथ १३०
१८. पुनर्नवामूल १३२
१९. अंजन मूल १३५
२०. आर्द्रक १३६

कांडपरीक्षा १३८
१. गुडूची १३८
२. कृष्ण सारिवा १३९
३. सुधाकाड १४१
४. गांगेरुकी १४३
५. मंजिष्ठ १४४
६. वृडदारुक १४७
७. मधुयष्ठी १४९

पत्रपरीक्षा १५०
१. तमालपत्र १५२
२. वासापत्र १५४
३. सनाय की पत्तियां १५६
४. सुगंधवाला १५७
५. भंगि के पत्र १५८
६. पृश्निपर्णी १६०
७. घृत कुमारी १६१

पुष्प परीक्षा १६३
१. केशर १६४
२. लवंगपुष्प १६७
३. पिपरमेंट १७१
४. नागकेशर असली १७२

बीजपरीक्षा १७५
१. जायफल १७६
२. गंधप्रियंगु १७८
३. एरंड बीज १८१
४. ज्योतिष्मती १८३
५. मदनफल १८५-२००
६. पिप्पली १८५
७. फलपरीक्षा १८७
८. बीज परीक्षा ”
९. क्षुद्रएला १८८
१०. रक्तगुंजा १९१
११. कुपीलुबीज १९१
१२. धुस्तूरबीज २०१
१३. विडंग २०८
१४. करंज २०४
१५. यमानी २०४
१६. मिश्रेया २०७
१७. शतपुष्पा २०८
१८. धान्यक परीक्षा २१०
१९. जीरक २१२
२०. विभीतक २१४
२१. हरीतकी २१५
२१. काकड़ासिंगी २१६
२३. कालीमिर्च २१८

त्वक्परीक्षा २१९
१. अशोकत्वचा २२१
२. अर्जुन २२२
३. लोध्र २२४
४. पाटला २२५
५. श्योनाक त्वक् २२७
६. वकुल त्वक् २२८
७. कांचनार त्वक् २२९
८. कुटज २३१
९. राहितक २३१
१०. कटफल २३२
११. बबूलत्वक् २३४
१२. वरुणत्वक् २३५
१३. उदुम्बरत्वक् २३६
१४. बिल्वत्वक् २३७
१५. अग्निमंथत्वक् २३८
१६. भारंगीत्वक् २३९
१७. दालचीनी २४०
१८. दालचीनी के भेद २४२

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पंचांग लेखन विवरण

१. स्वर्णक्षीरी २४३
२. अश्वगंधा पंचांग २४७

निर्यास परीक्षा

१. हिंगु परीक्षा २४९
२. हिंगु परिचय २५०
३. गुग्गुलु २५३
४. कुमारीसार २५४
५. एलोवेरा २५५
६. एलोपेरियाई २५५
७. एलोचाइनेंसिस २५५
८. एलोफेरोक्स २५६
९. एलो भारतीय २५५
१०. हीराबोल परीक्षा २५७
११. सर्जरस २५९
१२. शल्लकी निर्यास २६०
१३. लोहवान २६१
१४. मधु परीक्षा २६२
१५. खदिरसार २६३
१६. मोचरस २६४

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चित्र-सूची

	चित्र-संख्या
अंकुर नाभि छिद्र व नाभि चिह्न	१
अंकुर दल व छिल्का का विवरण	२
आदि मूल व प्ररोह	३
मूल के विभिन्न अंश का विवरण	४
परिवर्तित मूल का रूपान्तर गाजर	५
मूली व शलगम	६, ७
दीर्घ मूलिनी व ह्रस्व मूलिनी	८, ९
भौमिक कांड का रूपान्तर आर्द्रक	१०
बल्की कंद	११
पत्र, उपपत्र व वृंत के चित्र व पत्राधार	१२, १३, १४
पर्ण तल	१५
जालिनी पत्र क्रम	१६
पक्षाकार पत्र व पत्रसिरा विन्यास	१७, १८
सूचिकाकार पत्र व हृदयाकार पत्र	१९, २०
वृक्काकार, अंडाकृति, रेखाकृति	२१, २२, २३
भल्लाकृति पत्र	२४
दर्व्याकृति, लट्वाकार, विपरीत लट्वाकार	२५, २६, २७
त्रिकोणाकार पत्र व पाल्याकार पत्र	२८, २९
समसंख्यक दल, विषमसंख्यक दल, द्विपक्षाकार पत्र	३०, ३१, ३२
समदल, विषमदल	३३, ३४
क व ख उपपक्षयुत दल करतलाकार आदि पत्र	३४, ३५, ३६
अभिमुख पत्र, घेरदार पत्र, एकान्तरित पत्र	३७, ३८, ३९
जपापुष्प व सवंत पुष्प	४०, ४१
मंजरी व गुच्छ सवंत पुष्प	४२, ४३
स्तवक व पुष्प गुच्छ	४४, ४५
एकान्तरित पुष्प	४६
द्विपार्श्विक पुष्प	४७
स्त्री केशर	४८
पुष्प दल	४९
पुंकेशर	५०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

	चित्र-संख्या
अष्ठील फल, मांसल फल	५१, ५२
गूदेदार फल	५३
सामूहिक फल	५४, ५५
प्राथमिक हरिद्रा, द्वितीयक हरिद्रा, हरिद्रा का छेद	५६, ५७, ५८
कटुकी	५९
सुरंजान का कंद व पुष्प कांड	६०, ६१, ६२
छेदित सुरंजान	६३
वत्सनाभ मूल, पत्र, सपुष्प कांड	६४, ६५, ६६
लांगली कंद व छेदसहित कंद	६७, ६८, ६९
जैलप का शुष्क मूल	७०
जैलप का छेद	७१
भद्रमुस्ता का स्वरूप	७२
भद्रमुस्ता का लम्बाई में छेद, चौड़ाई में छेद	७३, ७४
सर्पगंधा मूल, चौड़ाई में किया हुआ छेद	७५, ७६, ७७
त्रिवृत्त के कांड का छेद व मूल का छेद	७८, ७९
भारतीय आर्द्रक का शुष्क कंद, अफ्रिका का आर्द्रक, कोचीन का आर्द्रक	८०, ८१, ८२
आर्द्रक का छेद	८३
कृष्ण सारिवा, लम्बाई व चौड़ाई में छेद	८४, ८५, ८६
स्नुही कांड, स्नुही का छेदित कांड	८७, ८८, ८९
गांगेरुकी कांड पत्र व गांगेरुकी का छेदित कांड	९०, ९१
वृद्धदारुक कांड	९२
छेदित कांड चौड़ाई में	९३, ९४
मधुयष्टि कांड, त्वक् रहित कांड व छेदित	९५, ९६, ९७
तमाल पत्र	९८
सनाय के पत्र	९९, १००
सपुष्प भांगपत्र व भांग का उपपत्र	१०१, १०२
पत्रावरण व बीज	१०३, १०४
घृतकुमारीपत्र, पुष्पकांड	१०५, १०६
लवंग पुष्प, बीज सहित लवंग, छेदित लवंग	१०७, १०८, १०९
नागकेशर का पुष्प	११०, १११
जायफल तथा उसका कर्तित चित्र लम्बाई व चौड़ाई में	११२, ११३, ११४

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

	चित्र-संख्या
गंध प्रियंगु के फल परिवर्द्धित रूप में	११५
वृंतहीन फल व छेदित फल	११६, ११७–११८
एरंडफल, बीजांकुर सहित कर्तितफल	११९, १२०
एरंड बीज का च्छेदित स्वरूप	१२१, १२२
ज्योतिष्मती का पूर्ण फल, आवरणरहित फल	१२३, १२४
फलावरण व आवरणरहित बीज	१२५
बीज छेद बीजांकुर सहित, व्यत्यस्त छेद	१२७, १२८
एला बीज मंगलोर मालावार मैसूर	१२८
छेदित फल, एला का एक बीज	१३०, १३१
एला बीज : अनुलंव व व्यत्यस्त छेद	१३२, १३३
कारस्कर व कारस्कर का पड़ा हुआ चित्र	१३४, १३५
कुचले का अनुलम्ब व व्यत्यस्त छेद	१३६, १३७
आरग्वध का फल–शिम्बी पूरी	१३८
कर्तित शिम्बी व आरग्वध बीज	१३९, १४०
सोया के सामने से पार्श्विक चित्र, व्यत्यस्त छेद	१४१, १४२, १४३
शतपुष्पा तथा उसका छेदित चित्र	१४४–१४५, १४६
धान्यक तथा छेदित धनिया का स्वरूप	१४७, १४८
कृष्ण जीरक, कृष्ण जीरक का व्यत्यस्त छेद	१४९, १५०
अर्जुन त्वक् चित्र	१५१, १५२
कांचनार का बाह्य व आभ्यंतर रूप	१५३, १५४
वरुण त्वक् बाह्य व आभ्यंतर	१५५, १५६
दालचीनी का त्वगावरण पूर्ण	१५६
दालचीनी त्वक् का व्यत्यस्त छेद	१५८
स्वर्णक्षीरी का बाह्य तथा आभ्यन्तर रूप	१५९, १६०
स्वर्णक्षीरी शाखा का छेद	१६१
स्वर्णक्षीरी का कांडक्रम	१६२
स्वर्णक्षीरी का पुष्प विन्यासक्रम	१६३, १६४
स्वर्णक्षीरी का काण्ड, रचना तथा पुष्प विन्यास	१६५, १६६
स्वर्णक्षीरी फल तथा उसका व्यत्यस्त छेद	१६७, १६८
अश्वगन्धामूल तथा उसका व्यत्यस्त छेद	१६९, १७०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अवशिष्ट चित्र

[कृपया पृष्ठाङ्कों के अनुसार यथा स्थान इन चित्रों का अध्ययन करें ।]

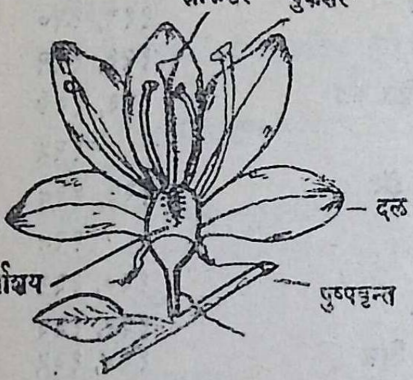

पृष्ठ ७५—पुष्प का परिचय

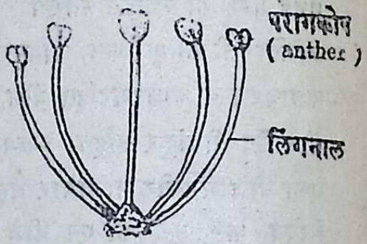

पृष्ठ ८२—पुंकेशर व परागकोष

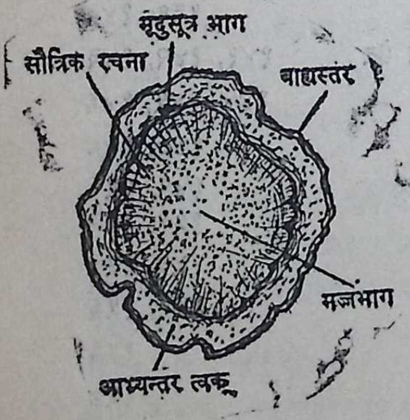

पृष्ठ १०८—कचूंर का भीतरी विवरण

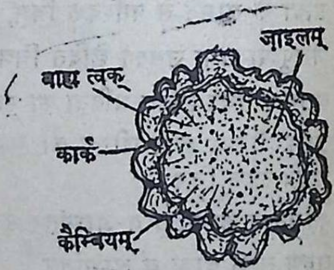

पृष्ठ १२३—जैलप मूल की रचना का विवरण

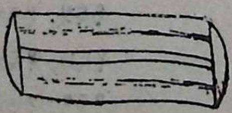

पृष्ठ १४०—कृष्ण सारिवा कांड

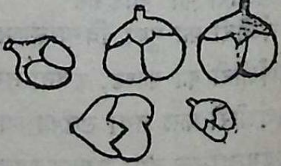

पृष्ठ १८३—ज्योतिष्मती बीज

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रियात्मक औषधि परिचय विज्ञान

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य परिचय विज्ञान

आमुख :

द्रव्य परिचय विज्ञान द्रव्य गुण शास्त्र का एक प्रधान अंग है जिसमें केवल द्रव्य के परिचय का ही समावेश होता है। इस परिचय में उन सब बातों का समावेश होता है जिनसे द्रव्य का पूरा परिचय हो जाय। इसमें द्रव्य के अंकुरोद्भेद से लेकर फलपाकान्त तक की सारी स्थिति तक का विवरण रहता है। इसके साथ ही द्रव्य की उत्पत्ति का स्थान, उत्पन्न होने व परिपक्व होने का काल, उसके संग्रह व संरक्षण की विधि, व्यापारिक स्वरूप व अन्य विवरण का भी ज्ञान होना अत्यावश्यक समझा जाता है। महर्षि चरक ने इन सभी बातों पर बड़ा ही सुन्दर विचार उपस्थित किया है और द्रव्य की परीक्षा के विषय में लिखते हुये उन्होंने लिखा[1] है कि निम्न बातें द्रव्य के विषय में जानना अत्यावश्यक है—

१ द्रव्य परिचय विज्ञान	५ ओषधि संग्रह व संरक्षण विज्ञान
२ द्रव्य गुण विज्ञान	६ औषधि संस्कार विज्ञान
३ द्रव्य प्रभाव विज्ञान	७ मात्रामात्र विज्ञान
४ देश विज्ञान	८ औषधि प्रयोग विज्ञान

औषधि के विषय में यह जानना चाहिये कि इस की आकृति क्या है, किस देश में किस प्रकार की भूमि में उत्पन्न होती है, इसके संरक्षण व संग्रह की विधि क्या है, किस संस्कार के करने पर क्या कल्प बनता है, इसके गुण व कर्म क्या हैं, कितनी मात्रा में देने पर इसका लाभ होता है, किस-किस रोग में प्रयोग करना चाहिये और इससे क्या लाभ व हानि होती है। बिना इसके जाने औषधि का प्रयोग करना प्राचीन काल में मना था। यह सारा विषय द्रव्य-गुण शास्त्र का है। इसमें से द्रव्य परिचय का, उत्पन्न होने वाले देश व भूमि का व संग्रह एवं संरक्षण का ज्ञान द्रव्य परिचय विज्ञान की

---

१. इदमेवंप्रकृतिमेवंगुणमेवंप्रभावमस्मिन् देशे जातमस्मिन्नृतावेवंगृहीतमेवं-निहितमेवमुपस्कृतमनया मात्रया प्रयुक्तमस्मिन् व्याधावेवंविधस्य पुरुषस्यैतावन्तं दोषमपकर्षयति उपशमयति वा। च० वि० स्था० अ० ८।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सीमा में आते हैं तथा शेष द्रव्य गुण के कर्म व गुण विज्ञान में आते हैं। अतः द्रव्य परिचय विज्ञान में इन बातों का समावेश होता है जैसा कि ऊपर लिखा गया है।

द्रव्य परिचय विज्ञान में द्रव्य के आर्द्र एवं शुष्क स्वरूप का तथा उसके मूल, कांड, पत्र, पुष्प, फल आदि के स्वरूप का ज्ञान होना चाहिये। उसकी आभ्यंतर रचना का भी ज्ञान होना चाहिये ताकि औषधि के विषय का पूर्ण ज्ञान हो सके। द्रव्य के अंगादि के ज्ञान के अतिरिक्त यह भी ज्ञान होना चाहिये कि इसकी जाति क्या है, शास्त्र में किस-किस गण में वर्णन आया है तथा इसके भेद व उपभेद क्या हैं।

आयुर्वेदशास्त्र में २००० औषधियों का विवरण आता है। संहिता ग्रंथों को देखें तो चरक में ६३६ द्रव्यों, सुश्रुत संहिता में ५७३ द्रव्यों, अष्टांग हृदय में ९०२ द्रव्यों, वेदों में २५० औषधियों, निघण्टु ग्रंथों में से धन्वन्तरि निघंटु में ३७३ द्रव्यों, राजनिघंटु में ११२६ द्रव्यों व अन्य कई उपयोगी धान्यों व जलादि का विवरण मिलता है। इसी प्रकार भाव प्रकाश में ४२६, मदन पाल में ४९४ व कैयद्देव निघंटु में ४२४ औषधियों का उल्लेख है। यदि चिकित्सक को इसका ज्ञान नहीं होगा तो द्रव्य से बनने वाली औषधि का निर्माण भी न हो पायगा। अतः यह जानना आवश्यक है कि द्रव्य का आकार-प्रकार व उसकी रचना क्या है, ये कहाँ से उपलब्ध होते हैं और कहाँ से व्यापार होता है।

इस पुस्तक में द्रव्य-परिचय के विषय में वैद्योपयोगी साहित्य का वह भाग मिलेगा जिसे जानकर वह द्रव्य की ठीक स्थिति का ज्ञान कर सके। साथ ही शिक्षाकाल में कितना विषय द्रव्य-गुण के प्रत्यक्षीकरण-काल में लिखना चाहिये जिससे द्रव्य का विवरण हो सके इसका निर्देश यहाँ पर किया गया है। औषधि-विवरण के लिखने से पूर्व संक्षिप्त ज्ञान होना भी आवश्यक है अतः इस स्थान पर औषधि संबंधी साधारण विवरण उपस्थित किया जा रहा है। शिक्षा-काल में बहुत से विद्यार्थी इस प्रकार के आ जाते हैं कि उन्हें इसका ज्ञान ही नहीं रहता। अतः सबकी सुविधा के लिये इस स्थान पर इनका भी समावेश किया गया है ताकि इसको जानकर वे भी कार्यरत हो सकें।

आधुनिक वनस्पति शास्त्र बहुत ही प्रौढ़ हो चुका है। आज प्रत्येक प्रकार की जानकारी की सुविधा उपलब्ध है अतः उससे वैद्य समाज व विद्यार्थी गण

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

को भी लाभान्वित होना चाहिये। अतः स्वरूप-विज्ञान के साथ आभ्यंतर रचना तथा बाह्य रचना का ज्ञान कराने के सब साधन उपलब्ध किये गये हैं। आयुर्वेद के ग्रंथों में इनका विवरण तो है परन्तु उनका विस्तारपूर्वक ज्ञान अभी तक संगृहीत नहीं है, जिसके अभाव में छात्र पंसारियों के शिकार हो सकते हैं। वैद्य समाज भी अच्छी तरह परिचय का ज्ञान नहीं रखता अतः कई द्रव्य इस त्रुटि से संदिग्ध हो गये हैं। इसके निवारण के लिये आवश्यक है कि उन समुचित ज्ञान किया जाय। इस संबन्ध का ज्ञान इसलिये ही संक्षेप में दिया जा रहा है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

औषधि-परिचय लिखने की विधि

औषधि-परिचय लिखने का भी एक क्रम होता है और उस क्रम का त्याग करने पर पूरा विवरण नहीं लिखा जा सकता जो कि उचित होना चाहिये। आवश्यकता इस बात की है कि उसका ज्ञान ठीक प्रकार का हो अतः उसका एक नमूना यहाँ पर दिया जाता है।

द्रव्य का नाम, पर्याय व गण : जिस द्रव्य का विवरण लिखना अभिप्रेत हो उसका नाम देना चाहिये, विशेषकर जो कि प्रचलित नाम हो। छात्र को उसके प्रसिद्ध पर्याय भी देना उचित है। इसके बाद उसके गण का नाम, लिखना चाहिये जो कि चरक व सुश्रुत में दिया हो। आधुनिक गण का नाम भी लिखना आवश्यक है ताकि विद्यार्थी को याद रह सके।

आकृति-विज्ञान : आकृति-विज्ञान से ही स्पष्ट है कि उसमें उपलब्ध विवरण देकर परिचय लिखा जाय और वह ऐसा होना चाहिये जिससे कि उसका पूरा ज्ञान आ जाय। अर्थात् यह द्रव्य, वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि व वीरुध् में से किस जाति का है। इसके किस अङ्ग का विवरण दिया जा रहा है। वह मूल है, पत्र है, काण्ड है, या क्या है। उसकी क्या विशेषता है। उसका आकार, प्रकार, लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि क्या है, बाजार में किस रूप में मिलता है, उपस्थित किस रूप में है, उसका वर्ण क्या है। टुकड़ों के रूप में है, अखंडित है या खंडित है। उसमें जो भी विशेषता है वह सब लिखना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि उसके विवरण का कोई अंश छूटने न पावे। हो सके तो रेखा-चित्र बनाकर प्रस्तुत करना उचित है।

वर्ण-विज्ञान : वर्ण की उपलब्धि के लिए निम्न कई उपाय वरतना आवश्यक है।

१ : प्रथम प्राकृतिक वर्ण क्या है। उसका छेद लेने पर भीतर का क्या वर्ण है, बाहर-भीतर के वर्ण में कोई भिन्नता हो तो उसका भी विवरण देना चाहिये। फिर घिसने, तोड़ने, चूर्ण करने, क्वाथ की तरह पकाने पर क्या वर्ण मिलता है। तैल व घृत में पकाने पर व सुरा में डालने पर क्या वर्ण मिलता है। जलाने पर ज्वाला का वर्ण क्या है। छेद लेकर चित्र बनाकर विवरण देना चाहिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसविज्ञान : उसके रसज्ञान के लिये जिह्वा पर रखकर रसज्ञान करना चाहिए। यह सामान्य साधन है। कभी-कभी कई द्रव्य जीभ पर नहीं घुलते, यथा : राल, गुग्गुल, लाक्षा आदि। यह द्रव्य सरलता से तैल, घृत या सुरा में घुल जाते हैं। इनके ज्ञानार्थ रसना पर रखना चाहिये और मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय का ज्ञान जो भी हो लिखना चाहिए।

गंधविज्ञान : प्रत्येक द्रव्य में कुछ गंध होता है किसी-किसी का विशेष गंध होता है वह घ्राणेन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष होता है अतः इस विधि से ज्ञान करना चाहिये। कभी-कभी गंध का विशेष ज्ञान नहीं होता, तब चूर्ण में पानी मिलाकर रगड़ कर सूंघने से ज्ञान हो जाता है। जलाने पर गन्ध का ज्ञान होता है।

स्पर्शविज्ञान : द्रव्य में मूर्त व अमूर्त गुण रहते हैं। इनका ज्ञान स्पर्श के द्वारा होता है। मूर्त गुण का ज्ञान स्पर्श से जानकर लिखना चाहिये कि यह कोमल या मृदु, रूक्ष, कठिन, आदि क्या है। पानी में डालकर गुरुता व लघुता का ज्ञान हो जाता है।

शब्दविज्ञान : द्रव्य में कोई शब्द हो तो लिखना चाहिए। यथा करंज वीज में, सन में होता है। जिसमें नहीं हो तो भग्नकाल का शब्द, जलाने के समय का शब्द लिखना चाहिये।

गणपरिचय : ऊपर के विचारों के आधार पर इस द्रव्य का क्या गण होगा यह लिखना चाहिये। इसमें विशेषता रसाधार पर ही लिखने में मिलती है। विशेष विवरण आगे दिया जा रहा है।

वर्ग का निर्धारण :—

चरकादि ऋषियों ने इस विषय पर जो विचार दिये हैं वह निम्न हैं : यथा :

पार्थिव द्रव्य : गुरु, खर, कठिन, मंद, स्थिर, विशद, सान्द्र, स्थूल व गंध-गुणबहुल होते हैं।

आप्य द्रव्य : द्रव, स्निग्ध, शीत, मृदु, मंद, पिच्छिल, गुरु, स्तिमित, सर, सान्द्र, रसबहुल होते हैं।

तैजस द्रव्य : उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लघु, रूक्ष, विशद, खर, रूपबहुल होते हैं।

वायव्य द्रव्य : लघु, रूक्ष, शीत, खर, विशद, सूक्ष्म, व्यवायी, विकाशी, स्पर्शबहुल होते हैं।

नाभस द्रव्य : मृदु, लघु, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण, विशद, विविक्त, व्यवायी व शब्दबहुल होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इनमें ऊपर जो भी लक्षण दिये गये हैं उनके आधार पर कोई वर्ग-निर्धारण कठिन हो जाता है क्योंकि यह कार्मुक व मूर्त गुण युक्त कहे गये हैं। न केवल गंधबहुल, रसवहुल, रूपबहुल व स्पर्शबहुल कहने मात्र से ही वर्ग बनता है। प्रत्येक द्रव्य में गंध होगा ही अतः गंधबहुल मानकर चलें तो एला, लवंग, उशीर को पार्थिव मानना होगा। मधु व घृत के अतिरिक्त आप्य कोई न होगा। द्रव्य अधिकतर शुष्क ही बाजार से आते हैं। अतः उनमें भेद करना कठिन होगा। रूपबहुल में प्रत्येक द्रव्य में कोई न कोई रूप होता ही है। इसी प्रकार स्पर्शबहुल की स्थिति है। शब्द तो किसी द्रव्य में शायद ही मिलेगा अतः वर्गीकरण में कठिनाई आती है।

इनके समाधान के लिये केवल सुश्रुत का रसप्रधान आधार लेने पर काम चल जाता है और सर्वापेक्षा अधिक निकट होता है। यथा :

१ प्रायशो मधुरमीषत्-कषायम्-इति पार्थिवम्।

२ प्रायशो मधुरमीषत्, कषायाम्ललवणम् आप्यम्।

३ प्रायशः कटुकमीषत् अम्ललवणम्—तैजसम्।

४ प्रायशः कषायमीषत्तिक्तम्—वायव्यम्।

५ प्रायशोऽव्यक्तरसम् ईषत्तिक्तम्—नाभसम् इति।

इसके आधार पर विचार करके यदि वर्ग बनावें तो पाञ्चभौतिक वर्गीकरण का एक स्वरूप बन जाता है। केवल प्रश्न प्रायशः तिक्त, प्रायशः अम्ल व प्रायशः लवण वालों का विचारणीय रह जाता है।

तिक्त रस वाले द्रव्य उष्ण व शीत दोनों प्रकार के गुण युक्त होते हैं। अतः इनका विचार रसाधार पर सुश्रुत ने नहीं दिया है। वीर्याधार व विपाकाधार पर विचार कर लिया जाय तो कुछ स्वरूप बन जाता है। वीर्याधार पर करें तो उष्ण द्रव्य तैजस व शीतद्रव्य आप्य हो सकेंगे। इसमें सन्देह होने पर सुश्रुत के निम्न वाक्य का आश्रय लेकर चलें तो कुछ स्वरूप बन जाता है। यथा :

तेजोभूयिष्ठायां भूमौ कटुकं तिक्तं च। सु० सू० स्था० ४६।६

अतः तिक्त को कटु समान होने से आग्नेय वर्ग में रखा गया है। तिक्त का विपाक भी कटु होता है और वीर्य भी उष्ण प्रायशः होता है। अतः आग्नेय मानने में हेतु कुछ बनता है।

वहुत से चिकित्सक तिक्त रस को वायव्य मानने को कहते हैं क्योंकि तिक्त रस का निर्माण वायु व आकाश तत्त्व के संयोग से होता है और कोई

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिक्त रस वाले द्रव्य शीतवीर्य भी होते हैं। अतः उनका कथन है कि वायव्य माना जाय। इसको मानें तो आकाशीय क्यों न माना जाय यह भी प्रश्न है ? अतः विवादरहित विचार नहीं बनता। उनको अपने बात की पुष्टि में कोई विशेष तर्क नहीं मिलता। अतः प्रायशः पूर्व के आधार पर तिक्त का वर्गीकरण किया गया है। सूक्ष्म विवेचन के लिए प्रत्यक्ष वर्गीकरण में स्थान न होने से व कठिनाई होने से अभी तक इसे तैजस वर्ग में ही रखा है। यदि कोई संतोषजनक कोई विचार देंगे तो इस पर पुनः विचार कर लेंगे। यह भौतिक वर्गीकरण प्रायशः एकरूपता लाने के लिए ही किया गया है। यह निर्णयात्मक नहीं है। यह विवरण अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। इसके मानने का एक शास्त्रीय आधार भी है, यथा :

रसवीर्यप्रभृतयो भूतोत्कर्षापकर्षतः।
एकरूपा विरूपा वा द्रव्यं समधिशेरते॥ अ० हृ० सू० अ० १७।

अम्ल को भी इसी प्रकार वीर्य व विपाक के आधार पर तैजस माना गया है। लवण मधुरविपाकी प्रायशः होता है। अतः शीतवीर्य होने से आप्य हो सकेगा। अतः विचार रसप्रधान के आधार पर किया गया है। इससे भी सूक्ष्म विचार करना हो तो तिक्त के साथ कटु-अम्ल अनुरस रहने पर तैजस व मधुर-कषाय अनुरस रहने पर वायव्य वर्ग में रखा जाता है। एक महत्त्वपूर्ण विवरण सुश्रुत ने विचारणीय लिखा है। मधुर प्रायः पार्थिव व आप्य दोनों हैं। फिर किस प्रकार इनमें भेद होगा व 'प्रायशः मधुरः ईषत् कषायः पार्थिवः', व 'प्रायशः मधुरमीषदम्ललवणम्' आप्यम् कहा है। ऐसे ही 'ईषदम्ललवणकटुरस-प्रायं तैजसम्' 'ईषत्तिक्तं विशेषतः कषायम्-वायव्यम्' आदि जो प्रधान रस के साथ ईषद् लगे हैं उनका समाधान करना चाहें तो निम्न विचार मिल सकता है और सुश्रुत का निर्णय भी तब समझा जा सकता है। यह विचार बहुत सूक्ष्मता के साथ विचारा गया है। यथा : भूतोत्कर्ष—दो महाभूतों के अधिक होने पर प्रायशः रसोत्पत्ति सब आचार्य मानते हैं। विचारिये : यथा :

१ पृथिवी + जलप्रधान (नाभस + वायव्य + तैजस) = मधुर रस।
२ पृ० + वायुप्रधान (आप्य + तैजस + नाभस) = कषाय रस।
३ पृ० + अग्नि (वा० + तै० + ना०) = अम्ल रस।
४ जल + अग्निप्रधान (वा० + तै० × ना०) = लवण रस।
५ वायु + अग्निप्रधान (पृ० + ना० + तैजस) = कटु रस।
६ वा० + ना० प्रधान (तै० + पा० + जल) = तिक्त।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ऊपर के विचारानुसार निम्न तत्त्व विशेष रूप में इन रसों का निर्माण करते हैं : यथा :

पृथिवी तत्त्व	अधिक—	मधुर, कषाय, अम्ल रस,
जल तत्त्व	,,	मधुर, अम्ल, लवण,
अग्नि तत्त्व	,,	लवण, कटु, अम्ल,
वायु तत्त्व	,,	तिक्त, कटु, कषाय,
आकाश तत्त्व	,,	तिक्त।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि भूतों के परस्पर सन्निकर्ष व अपकर्ष से जो रस बनते हैं उनमें उनका सान्निध्य अधिक रहता है। अतः :

पार्थिव में : प्रायशः माधुर्य के साथ ईषत् कषाय लिखा है।
आप्य में : प्रायशः मधुर के साथ ईषदम्ल लवण हो सकता है।
तैजस में : प्रायशः कटु के साथ ईषदम्ल लवण हो सकेगा।
वायव्य में : प्रायशः कषाय के साथ ईषत्तिक्त व कटु रस चल सकेगा।
नाभस में : अव्यक्त के साथ ईषत् तिक्त रस रह सकेगा।

अतः इस आधार को लेकर चला जाय तो एक निरापद भौतिक वर्ग की कल्पना की जा सकती है। अन्यथा कोई भी वर्ग क्रियात्मक काल में बनाना संभव नहीं हो सकता। बहुत विचार करने पर यह एक स्वरूप दिखाई पड़ा है। यद्यपि इसे भी निरापद नहीं माना जा सकता परन्तु औरों से यह बहुत सन्निकट आता है अतः इसको इस रूप में ही रखा गया है।

क्योंकि द्रव्य के आकृतिविज्ञान के लेखन में अन्य विचार मानतुला पर प्रायशः नहीं पहुँचते अतः वर्गीकरण का आधार यह लिया गया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रियात्मक द्रव्य-विज्ञान के वर्ण्य विषय

द्रव्यविज्ञान : यह द्रव्यगुणविज्ञान का प्रारम्भिक अंश है। इसमें द्रव्य के अंग-प्रत्यंग का ज्ञान करना पड़ता है। इस अवसर पर विवरणार्थ कई प्रकार के विषयों का समावेश होता है, जिनमें द्रव्यविज्ञान का व द्रव्य-परिचयविज्ञान का अंश प्रधान होता है, यह महत्त्वपूर्ण विज्ञान जो द्रव्य के अंकुरोद्भेद काल से लेकर के द्रव्य की फलपाकान्त तक की अवधि का विवरण उपस्थित करता है। इसमें हरित या शुष्क द्रव्य परीक्षार्थ आते हैं और उस द्रव्य के अंग-प्रत्यंग का निरीक्षण करके तब सारांश लिखना पड़ता है। उनमें प्रधान निम्न लिखित अंग विशेष रूप से वर्णनार्थ आते हैं।

१ मूल : मूल, कंद, मूल त्वक् , मूल संधि।

२ काण्ड : कांड, काण्डत्वक् , कांड का परिर्वातित स्वरूप, कंद आदि।

३ शाखा : शाखा, शाखाग्र।

४ पत्र : पत्रवृन्त, पत्रमूल, पत्राग्र, पत्रपार्श्व, पत्रशिरा, पत्रकोण, पत्रस्थ ग्रंथि।

५ पुष्प : पुष्प का बाहरी आवरण, भीतरी आवरण, पुष्पपत्र, पराग कोष, केशर, गर्भाशय।

६ फल : कच्चे व पके हरित फल, शुष्क फल।

७ बीज : बीजावरण, द्विदल, अंकुर, गर्भभोज्य आदि।

८ सार।

९ निर्यास।

१० क्षीर व क्षार आदि।

इनसे संबंधित विवरण का स्वरूप आगे दिया है।

इन सब बातों के लिये विभिन्न प्रकार के परीक्षण की आवश्यकता पड़ती है और उन परीक्षाओं के निमित्त कई यंत्रों की आवश्यकता होती है, जिनमें प्रधान अणुवीक्षण यंत्र, व्यवच्छेदक शस्त्रादि, शीशियाँ, उच्च शक्ति के ताल, कुछ अन्य यंत्र तथा कुछ रासायनिक द्रव्यों की आवश्यकता होती है। उनकी सूची निम्न लिखित है :

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ प्रयताग्रवृद्धि पत्र (Scalpel)
२ क्षुरक व वृद्धि पत्र : (Razor)
३ संदंश : (Forceps)
४ काच या ताल : (Pocketlens)
५ बाल की कूर्चिका : (Brush)
६ सुराप्रदीप : (Spirit lamp)
७ शीशे के पात्र, शीशी आदि
८ काचपट्टिका (Slides)
९ सूचिका (Needle)
१० जलपूर्ण ग्लास
११ सुरा ९० प्रतिशत
१२ ग्लिसरिन
१३ तैल
१४ घृत
१५ बिन्दुक (Dropers)
१६ रंजक वस्तु
१७ ब्लाटिंग पेपर
१८ रूई

इनके अतिरिक्त पेंसिल, नोटबुक, कागज, डस्टर व प्यालियां आदि जो आवश्यक पदार्थ चाहिए वह सब लेना आवश्यक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

औषधि-विवरण में क्या लिखना उचित होगा

किसी औषधि के विवरण को लिखने में निम्न लिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये। यदि ठीक तरह किसी वस्तु का निरीक्षण करें तो ज्ञात होगा कि वह वस्तु हरित अवस्था में जैसी थी, शुष्क हो जाने पर वैसी ही नहीं रही। उसके आकार, प्रकार, आकृति और भार में बहुत बड़ा अंतर आ जाता है। जिसने हरित औषधि के पत्र, पुष्प, फल, मूल आदि को प्रारम्भ से नहीं देखा है वह उसको शुष्क हो जाने पर शीघ्र पहिचान नहीं सकता। द्रव्य-गुणविज्ञान के एक विद्यार्थी को इन द्रव्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करना पड़ता है। यदि वह थोड़ी भी अवहेलना कर ले तो भयंकर भूल कर सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रारम्भ से द्रव्य का निरीक्षण किया जाय। जो द्रव्य परीक्षणार्थ उपस्थित हो उसके विवरण को स्पष्ट लिखना चाहिये और उनमें पार्थक्य न हो इस निमित्त उसकी प्रत्येक स्थिति को एक समान ही लिखने के निमित्त निम्न सरणि को ध्यान में रखना चाहिये। इससे विवरण में एकरूपता आ जाती है।

संक्षिप्त विवरण :—

मूल और कन्द :—

१ आकृति-विस्तार व वर्ण—(Dimension and colour) जैसा द्रव्य में दृष्टिगोचर होता हो।

२ आकृति (Shape)—वर्तुल, चपटा, पतला, लम्बा, गांठदार, त्रिकोणाकार, सूत्राकार, सीधा, विषमग्रंथियुक्त।

३ शाखा-प्रशाखा—वर्तुल, नलिकाकार, अवकाशयुक्त, कठिन, त्रिकोण, चतुष्कोण इत्यादि।

४ स्थिति (Conditon)—शुष्क, आर्द्र, छिल्कायुक्त, त्वग्रहित, सम्पूर्ण, कर्त्तित लम्बाई या चौड़ाई में कटा हुआ।

५ उपमूल—इसमें किसी छोटी मूल की शाखा का ज्ञान होता है कि नहीं? है तो प्रकार, प्राकृत या वायवीय, लगा हुआ, टूटा हुआ, लटका हुआ, पतला, छोटा, सूत्रवत्, भंगुर।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

६ वृद्धिगत क्रम—ऊर्ध्वगामी, अधोगामी, समतलीय, झुका हुआ, त्रिकोणाकार, लट्वाकार ।

७ बाह्यस्तर (Sarface character)—व्रणचिह्न, पत्रचिह्न, शाखाचिह्न, फटा हुआ, रूक्ष, खुरदरा, पिच्छिल, छिलके दार, चिक्कण ।

८ व्यत्यस्तच्छेद (Transverse section)—इसमें स्तरों की रचना, सूत्र, सेल, ऊर्ध्वस्तरीय, आभ्यंतर-काष्ठीय, सारभागीय सहभाग ।

९ बनावट व भंग (Fracture and structure)—तोड़ने पर शृंगाकृति, सूत्रांशयुक्त, विशिष्टांशयुक्त, स्नेहयुक्त (Horny, fibrous, starchy, fatty) ।

१० स्वाद व वर्ण ।

११ वैचित्र्य—पूर्णायु, अपूर्णायु, पत्रकाण्ड की विशेष रचना ।

१२ रासायनिक परीक्षण ।

पत्र :—

आकार-प्रकार—लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई ।

रूप—पत्र का वर्ण जो दिखाई पड़ता हो ।

दशा (Condition) :—(ताजी), शुष्क, पूर्ण-भग्न, चपटी, सद्योद्धृत, आर्द्र (सद्यस्क) ।

पर्णाधार (lamina):—सामान्य पत्र (Simple leaf), पक्षाकार (Pinnate), करतलाकार (Palmat), संयुक्त पत्र (Compound), मध्यशिरा (Rachis), एकपक्षाकार (Unipinnate), द्विपक्षाकार (Bipinnate), त्रिपक्षाकार (Tripinnate) ।

शिरारचना (Venation)—जालीदार (Reticulate), समानान्तर (Parallel), जालीदार-पक्षाकार (Unicostate) , शिराओं की संख्या व आकार ।

किनारें (Margin) :—अखंडित—(Entire), तरंगायित (Repand or Undulate), दन्तुरित (Serrate), कंगूरेदार (Crenate), कंटकित (Spinous) ।

पत्राग्र (Apex) :—सूक्ष्माग्र (Acute), अतिसूक्ष्माग्र (Acuminate), कुंठिताग्र (Obtuse), कंटाग्र (Mucronate), नताग्र (Emarginate), कंटकी (Spinouse), तन्तुमय (Tendrillar).

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पर्णतल (Base)—परिवेष्टक (Seathing), पत्रवृन्त (Petiole), दीर्घक्षुद्र-अवृन्तक-सवृन्तक (Petiotate), कर्णाकार (Auriculate), प्रकाण्डासक्त (Amplexicaul), सहजात (Connate), काण्डलग्न (Decurrent). समुज्ज्वल ।

सतह—चिकनी-लोमश-मसृण (Glabrous), कर्कश (Rough), रोमश (Hairy), कंटकाकीर्ण (Stinging), समुद्ररंगी (Glaucous) ।

आकार—रेखाकृति (Linear), भल्लाकृति (Ianceolate), गोलाकार (Rotund), अण्डाकार (Eleptical Oval), विषमाकार (Oblique), लम्बगोल (Oblong), कर्णपाली सदृश (Hastate), सर्षपपत्रकाकार (Lyrate), सूचिकाकार (Acicular), करतलाकार (Palmate), हस्तांगुली सदृश (Degetate), त्रिपर्णी (Trifoliate), पक्षिपदानुकारी (Pedats), गोजिह्वाकार (Runcināte) ।

पर्णरचना (Phyllotaxis)—समानान्तर–एकांतरित (Alternate). गुच्छाकार (Whorled) ।

वैचित्र्य ग्रंथियां-विचित्रता

स्वाद-गन्ध—

बीज (Seeds) :—

आकृति-आकार-ऊँचाई, लम्बाई, मोटाई, कठिन, मृदु, मेसृण—

भेद-एकाकी, संयुक्त फल, सामूहिक फल (Aggregate) ।

बीजावरण (Seed Coat) संख्या, चिह्न, नालचिह्न ।

बीजशस्य (Perispērm)—Present—Absent.

बीजान्तर (बीजमध्य)–गर्भभोज्य—Endosperm-Present-Absent,

स्वाद, गन्ध—

भार–१०० बीज का

वैचित्र्य—

रासायनिक परीक्षा—

काण्ड (Stems) :

१ जाति (Kinds)—कठिन, काष्ठमय, वार्षिक, द्विवार्षिक, क्षुपजातीय, वृक्षलताजातीय इत्यादि सूत्रात्मक जड़ी-बूटी पंचाङ्ग ।

२ स्थानस्थितिनिर्णय (Direction)—ऊर्ध्वमुख, अधोमुख, विस्तारित, परिसर्पण, आरोही-अवरोही ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३ आकृति—कोणीय, वर्तुल, चतुष्कोण, षट्कोण, त्रिकोण, विषम आदि।

४ ऊर्ध्वस्तर (Surface)—वर्ण, चिकना, लोमश, रूक्ष, खर, दारुण, स्निग्ध।

५ पत्रचिह्नस्थिति—उभयतः, आन्तरिक, दूरवर्ती, अधिक पत्रविन्यास।

६ गन्ध व स्वाद—

७ कर्तित—आयामिक-विस्तारिक-काष्ठतरों का क्रम

८ काष्ठ—वर्ण और घनत्व।

९ दाने—यदि कोई दानेदार वस्तु दिखाई पड़े तो उनकी आकृति, स्तरों को अलग करने पर की स्थिति।

१० वार्षिक वृत्ताकृति चिह्न—उपस्थित या अनुपस्थित—लम्बाई में या चौड़ाई में।

११ स्रोतस्—छिद्रयुक्त, नलिकाकृति।

१२ सार—आकृति घनत्व।

१३ वैचित्र्य—यदि कोई हो।

त्वक् (Barks) :—

१ आकृति—त्वक्-खण्ड की आकृति, नालिकेय, स्रोतोयुक्त, चपटा, वृत्त, अर्धवृत्त, समतल, चतुष्कोण, वर्गाकार।

२ आकार—प्रकार लम्बाई, मोटाई, चौड़ाई।

३ वर्ण—हल्का, गहरा, विषम (कहीं हल्का-कहीं गहरा)।

४ बाह्य स्तर—वर्ण, स्तर का रूप।

५ आभ्यन्तर स्तर—वर्ण, स्तर का रूप।

६ भङ्ग—भंगुर, सूत्रात्मक, दानेदार।

७ व्यत्यस्तच्छेद—स्तरों की स्थिति का अवलोकन, सारवान्, स्नेहयुक्त, दृढ़, स्निग्ध।

८ गन्ध और रस।

९ वैचित्र्य।

१० रासायनिक विवरण।

पुष्प (Flowers) :

साधारण आकृति (General Feature)—नियमित, अनियमित।

पुष्प बाह्यकोष—आवरणपत्रों की संख्या।

संयुक्तत्व (Cohesion), संयुक्तदल (Gamosepalous), भिन्नपत्र बहुपत्र (Polysepalous).

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मेल (Insertion) :—सामान्य, विशिष्ट ।

वैचित्र्य—वर्ण, आकार ।

आभ्यन्तरकोष (Corolla), संयुक्तत्व (Cohesion)—मेल (Insertion), गर्भाशयाधःस्थित (Hypogynous), वैचित्र्य (Peculiarities), उपरिस्थित (Perigynous) ।

पुंकेशर (Androeceum) संख्या—

संयुक्तत्व—स्वतंत्र या संयुक्त (Monade phous)—गर्भाशयाधःस्थित, गर्भाशयोपरिस्थित ।

वैशेष्य—

योनिसूत्र (Style) :—लम्बा, छोटा, शाखायुक्त-साधारण ।

योनिच्छत्र (Stegma) :—वृत्त–चपटा-छत्राकार ।

गर्भाशय—एक वा एकाधिक संख्या, आदिबीज (Ovules), गर्भाशय थैली (Embryosac), बीजस्थान (Placenta), स्थालक ।

फल (Fruits) :—

भेद—सामान्य संयुक्त (Aggregate)-(Succulant) ।

आकृति व परिणाह—लम्बाई, मोटाई, चौड़ाई ।

आकार—वृत्त, अंडाकार, कोणीय, चपटा ।

मेल—उत्तम, अनुत्तम ।

स्फोटनशील (dehiscent), अस्फोटनशील (Indepiscent), मांसल ।

बाह्यभाग (Pericarp)—वर्ण ।

रचना (Texture)—कठिन, मृदु, मांसल, अमांसल ।

चिह्न (Marklng) —योनिच्छत्र, उभार, व्रणचिह्न ।

सीवन—लम्बाकृति, व्यत्यस्तसंधि ।

बीजकवच (Testa), दृढ़ फलों में (Drupe), बहिर्वेष्ट (Epicarp) तनु, दृढ़ मांसलभाग (Masocarp) मांसल, सौत्रिक, अन्तर्भाग (Endocarp) कठिन ।

बीजक्रम—कक्षीय (Axile), मध्यस्वतंत्र (Trancentral), पार्श्वीय (Pericentral), तलस्थ (Besal), बाहरी (Superficial)

बीज—संख्या ।

विशेष—स्वाद, गन्ध ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

निर्यास (Gum) :

आकृति—थक्का, दानेदार, पृथक्-पृथक् , वर्तिरूप, कोणीय, इत्यादि ।

वर्ण—

आवरण (Packing)—त्वक् , पत्र, चर्म, इत्यादि ।

रूप—चमकदार, साफ, गन्दा ।

स्वाद—

गन्ध ।

घुलनशीलता ।

रासायनिक परीक्षण

सत्त्व (Stach) :

वर्ण—श्वेत, कृष्ण, नील, पीत ।

स्पर्श (Feel)—भंगुर, अभंगुर ।

आकृति—दानों की आकृति ।

मिश्रण—

गन्ध—स्वाद

रासायनिक परीक्षण

क्षार व लवण :

आकृति

वर्ण

प्राप्ति

विशेषता

रासायनिक परीक्षण

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रियात्मक विवरण का नमूना

क्रियात्मक विवरण

द्रव्यनाम ____________________ शिक्षार्थीनाम ____________

कुलनाम ________________________ तिथि ____________

आकृतिविज्ञान—परीक्षार्थ या परिचयार्थ उपस्थित द्रव्य के अंग व प्रत्यंग का पूर्ण सचित्र विवरण. (यथा—मूल, काण्ड, त्वक् , पत्र, फल, बीज, निर्यास, क्षीर, क्षार, सत्त्वादि.)

चाक्षुषी परीक्षा

प्रत्यक्ष—

यान्त्रिक—द्रव्य के मूल, काण्ड, पत्र, फल, इत्यादि का छेद लेकर उसका सचित्र विवरण।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यपरिमाण

द्रव्यांग	भार	आयाम (लम्बाई)	विस्तार (चौड़ाई)	उत्सेध (ऊंचाई)	परिणाह

वर्णपरिज्ञान

द्रव्यस्थितप्रकृतिवर्ण	कषे	भंगे	चूर्णे	क्वाथे	तैले	घृते	ज्वालायाम्	

विलेयता

विलेयता	वारिणि	तैले	घृते	सुरायाम्				
अल्पांश ...								
सर्वांश ...								

रस परीक्षा

द्रव्य		मधुर	अम्ल	लवण	कटु	तिक्त	कषाय	
शुष्क ...	प्रधानरस							
" ...	अनुरस							
आर्द्र ...	प्रधानरस							
" ...	अनुरस							

गंधपरीक्षा

	सुगंध	दुर्गंध	उग्र	मृदु	ग्लानिकर	अवसादक		
शुष्कद्रव्य ...								
आर्द्रद्रव्य ...								
धूपन ...								

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्पर्शपरीक्षा

मूर्तगुण		उष्ण	शीत	कठिन	मृदु	खर	श्लक्ष्ण	रूक्ष	स्निग्ध	पिच्छिल	लघु	गुरु			
द्रव्य शुष्क/आर्द्र	...														
त्वक्	...														
पत्र	...														
फल	...														
पुष्प	...														
काण्ड	...														
मूल	...														
बीज	...														
निर्यास	...														

शब्दपरीक्षा

द्रव्य शुष्क/आर्द्र	द्रव्यगतशब्द	भग्नकालीन-शब्द	ज्वलनकालीन-शब्द	भंगुर–अभंगुर	

द्रव्यके वर्गका सहेतुक निरूपणः—

(पार्थिव, आप्य, तैजस, वायव्य, नाभस इनमें से कोई)

____

____

____

____

____

____

____

____

हस्ताक्षर–विभागाध्यक्ष.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वनस्पति का विवरण-क्रम

वनौषधि-वर्णन का विवरण : वनौषधि का विवरण लिखने के लिए निम्न बातों की आवश्यकता रहती है, उनका ध्यान रखकर विवरण देना आवश्यक है।

वनस्पतिक सृष्टि : इस सृष्टि के दो विभाग हैं।

१ सपुष्प सृष्टि[1]

२ अपुष्प सृष्टि[2]

उपविभाग :

इसके चार विभाग हैं :

१ वनस्पति : जिसमें पुष्प नहीं दिखाई पड़ते या निगूढ पुष्प होते हैं। उन्हें वनस्पति कहते हैं। यथा : अश्वत्थ, वट, पीपल जैसे बड़े पेड़। व सूक्ष्म वनस्पति यथा : काई, शैवाल आदि।

यह अपुष्प सृष्टि में आते हैं।

सपुष्प सृष्टि :

२ इसमें तीन विभाग आते हैं यथा :

१ वानस्पत्य : जिनमें पुष्प व फल दोनों दिखाई देते हैं।

२ औषधि : जिनमें पुष्प व फल तो आते हैं परन्तु वह वर्ष भर के भीतर समाप्त हो जाता है।

३ वीरुध : यह भी सपुष्प सृष्टि में ही हैं केवल अन्तर यह है कि यह लता-प्रतान के रूप में छोटे-बड़े आदि भेद से कई प्रकार के होते हैं। इनमें फल व पुष्प दोनों होते हैं।

अतः सर्वप्रथम यह लिखना होता है कि यह किस विभाग के हैं। वेदों और संहिता ग्रन्थों में वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि व वीरुध का विशाल व विपुल विवरण मिलता है। सम्पूर्ण सृष्टि के विभाग-चेतन व अचेतन विभाग से यह चेतन वर्ग के क्षेत्र में आते हैं। इनमें सब अंतश्चेतन होते हैं। विशेष विवरण बृहत्त्रयी निघण्टु में दिये गये हैं और यहाँ पर विशेष विवरण लिखने में उनकी

---

1. Phanerogams. 2. Cryptogams.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आवश्यकता नहीं होती। जितना चाहिये उतना दिया गया है। सपुष्प सृष्टि के पुनः दो उप विभाग होते हैं :

१ नग्नबीजी[1] २ आवृतबीजी[2]

नग्नबीजी : जिनके बीज नग्न या खुले रहते हैं। यथा :—देवदारु वर्ग में।

आवृतबीजी : इस वर्ग के बीज आवृत होते हैं :

१ द्विदल वर्ग[3] : जिनके बीज में दो दल होते हैं। यथा : चना

२ एकदल वर्ग[4] : जिनके बीज में एक ही दल होता है। यथा : मक्का

अपुष्प सृष्टि : इसमें भी कई विभेद हैं।

१ हरितक[5] २ श्वेतक[6]

३ पर्णिनी[7] ४ अन्य विभाग :

इनके भेदों के बाद क्या लिखना चाहिए एतदर्थ निम्न बातों की आवश्यकता रहती है। छात्र को इतना जानना चाहिये।

इनमें प्रत्येक में किसी न किसी रूप में मूल, पत्र, काण्ड, पुष्प, फल व अन्य अङ्गों का समावेश होता है।

वनस्पतियों के जो चार भेद किये गये हैं उनके पुनः आकार के आधार पर कई भेद होते हैं। आकार के आधार पर वर्ग :

१ वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि व वीरुध के आकार के अनुसार पुनः इस में भेद किया गया है।

१ महावृक्ष : बहुत बड़े वृक्ष जिनकी शाखा-प्रशाखायें अधिक होती हैं और बहुत ऊँचे होते हैं। ५० से १०० फीट या अधिक ऊँचाई के वृक्ष इस श्रेणी में आते हैं।

२ वृक्ष : जो मूल के सहारे पृथ्वी पर खड़े होते हैं और शाखा-प्रशाखायें महावृक्ष से कम होती हैं। इनकी ऊँचाई १५ से ५० फीट या इससे कुछ अधिक भी होती है, वृक्ष कहलाते हैं। इनके पर्याय कई हैं जिनको निघंटुकारों ने लिखा है। यथा : वृक्ष, महीरुह, पादप, शाखी, विटपी, तरु, अनोकह, कुट, शाल, पलाशी, द्रु, द्रुम आदि।

३ वृक्षक : छोटे वृक्षों को वृक्षक के नाम से पुकारते हैं। यह १० से १५ फीट तक ऊँचे होते हैं।

---

1. Gymnosperms. 2. Angiosperms. 3. Dicotyledons.
4. Monocotyledons. 5. Algae. 6. Eungi. 7. Mosses.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४ क्षुप : जिनकी शाखायें व मूल ह्रस्व होते हैं। जो ५ से १० फीट तक ऊँचे होते हैं। यथा—ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः। अमर।

५ स्थाणु : जो एक स्तंभ की तरह आकार में होते हैं। शाखायें नहीं होतीं या बहुत कम होती हैं। इनको स्थाणु कहते हैं।

६ गुल्म : जिनमें एक मूल से कई शाखायें निकलती हैं। इन्हें अप्रकांड, स्तंब भी कहते हैं।

७ लता : जो मूल से निकल कर अपने शरीर को संवृत कर थोड़ी दूर जाती हैं, शरीर कृश होता है। इन्हें वल्ली, व्रतती भी कहते हैं।

८ वीरुध : विस्तृत वल्ली को वीरुध कहते हैं। प्रतानिनी इनका नाम है। इनका प्रसार बहुत होता है और शाखा-प्रशाखायें अधिक देती हैं।

९ गुल्मिनी : झाड़ीदार पौधों को गुल्मिनी व उलप कहते हैं। वृक्ष की तरह लता में भी आरोहिणी, प्रसारिणी, वामावर्तिनी, दक्षिणावर्तिनी, मूलारोहिणी वडिशारोहिणी, सूत्रारोहिणी इत्यादि कई उपभेद पाये जाते हैं।

पुन : इनके वर्णन में कई बातों का विचार करना पड़ता है। आंगिक विवरण के आधार पर सामान्य भेद इस प्रकार हैं :

पुष्पिणी : जिनके पुष्पों का प्रयोग अधिक औषधि में होता है।

फलिनी : जिनके फल का प्रयोग होता है।

मूलिनी : जिनके मूल का प्रयोग होता है मूलिनी कहलाती हैं।

कांडिनी : जिनके कांड का उपयोग होता है।

परन्तु इनके विवरण के आधार पर कई प्रकार के भेद हैं। प्रधान निम्न हैं :

आंगिक रचना के आधार पर वर्ग निर्माण :—

सामान्य रूप से दो भेद हैं :

१ बाह्य[1] रचना

२ [2]आभ्यंतर रचना :

पुन : इसके दो विभाग हैं :

१ स्थूल रचना[3]

२ सूक्ष्म रचना[4]

1, External morphology. 2. Internal morphology.
3. Histology. 4. Cytology.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्थूल रचना :

इसमें वनौषधि के बाह्य आकृति को स्पष्ट रूप में लिखा जाता है। जिसमें उसके आकार-प्रकार, लम्बाई-चौड़ाई, मोटाई व बाह्य आकारसम्बन्धी बातों पर विचार स्पष्ट दिया जाता है। इस विषय में वनौषधि के कई प्रकार के अंगों का विवरण रखना होता है। जिनका विवरण नीचे दिया जाता है।

सूक्ष्म रचना : इसमें वनौषधि के स्थूल रचना के अतिरिक्त सूक्ष्म कोष-रचना, काष्ठ की रचना या जिस अंग की रचना दी गई हो सूक्ष्म विवरण दिया जाता है। यह साहित्य आयुर्वेद के ग्रन्थों में सामान्य मिलता है। किन्तु आज कल आधुनिक वनस्पति-विज्ञान के वनौषधि-परिचय—फारमेकाग्नोसी (Pharmacognosy) में विस्तृत विवरण दिया गया है। इसके विवरण में आवश्यकतानुसार उसका भी साहाय्य लिया गया है।

वनौषधियों के अंग के विषय में पर्याप्त विचारणा मिलती है। संक्षिप्त विवरण में निम्न रूप में कहा जा सकता है।

वेदों,[1] संहिताओं,[2] निघंटुवों[3] में इन अंगों का उल्लेख है। [4]मनुस्मृति व [5]पुराणों में भी यह पाया जाता है। यथा :

अंकुर, मूल, कांड, शाखा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, त्वक्, सार, निर्यास, नाल, पल्लव, क्षार, क्षीर, भस्म, तैल, कंटक, शुङ्ग, कन्द, प्ररोह, तुष, कण, बीजकोषभ्रूण, अंकुर आदि कई भेद हैं जिस में जो-जो मिलता है वह उसमें लिखा जाता है। इनके अतिरिक्त निम्न अंग भी राजनिघंटुकार ने बताये हैं। संक्षेप में इनका विवरण दिया जाता है। जो भी संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है वह यहाँ पर संक्षेप में दिया गया है और विचार-वर्णन सौकर्य के आधार पर रखा गया है।

१ अंकुर[6] : बीज का वह अंश जो जमीन फोड़ कर बाहर आता है वह अंकुर या उद्भेद कहलाता है।

२ प्ररोह[7] : अंकुर के बाद का वह भाग जो मूल के ऊपर रहता है, जिसमें पत्रादि निकलते हैं वह प्ररोह है।

---

१. वेद में अथर्व काण्ड ।४।७ व ८।७।८। व ८।४।८

२. १—चरक : च० सू० अ० १। २—सुश्रुत : क० स्था० स्थावर विष विवरण

३. राजनिघंटु व अमरकोष : वनौषधि वर्ग धरण्यादि वर्ग

४. विष्णु पुराण अ० ७ श्लोक ३७-३८ ५. मनुस्मृतिः अ० १

६. Radical. ७. Plumule.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३ मूल या जड़ : अंकुर पृथ्वी में जाने पर जिस रूप में फैल कर नीचे क्षुप का रूप धारण करता है वह मूल या पाद, अंघ्रि, चरण, नेत्र आदि कहलाता है।

४ जटा : मूल के ही विभागों में जटा भी है परन्तु यह स्कंध से निकलने वाले अंग के लिये भी कहा जाता है। इसके नाम—जटा, शाखा, शिफा, सिरा, अवरोह आदि भी हैं।

काण्ड : मूल से शाखा पर्यन्त भाग का नाम काण्ड या प्रकाण्ड, दंड आदि है।

शाखा : स्कंध के ऊपर का भाग शाखा कहलाता है। लता के कांड को भी शाखा कहते हैं।

शाला : शाखावों के समूह को शाला कहते हैं।

सार : काण्ड के भीतर के भाग को, जिसमें मज्जा या तैलांश होता है, सार कहते हैं।

कोटर : काण्ड के भीतर के भाग को निष्कुट या कोटर कहते हैं।

त्वचा : कांड या लता के बाहरी भाग को त्वचा या आवरण कहते हैं।

पल्लव : नये कोमल रक्ताभ पत्र को पल्लव कहते हैं। किसलय, प्रवाल, पल्लव भी नाम हैं।

पर्ण : हरित पुष्ट पत्र को पर्ण कहते हैं। दल, बर्ह, पलाश, छदन, छद पर्याय हैं।

पर्णशिरा : पत्र के भीतर एकान्तरित या जिस रूप में शिरायें उभरी रहती हैं उनको शिरा कहते हैं।

पुष्प : शाखाग्र पर लगे फूल को पुष्प, प्रसून, कुसुम, प्रसव, शुङ्ग-सूनु आदि पर्याय हैं।

वृंत : पुष्प या पत्र के आदि भाग को वृंत कहते हैं।

फल : तरु के फल को फल कहते हैं सस्य भी इसका पर्याय है।

वंध्य : जिन में फल नहीं आते उन्हें वंध्य तरु कहते हैं।

तुष : फल के ऊपर के धान्य आदि के आवरण को तुष या भूसी कहते हैं।

इस प्रकार कई अंग का भेद-प्रदर्शन किया गया है। छात्रों के सौकर्य के लिये इनका विवरण क्रियात्मक स्वरूप को लिखने के क्रम के लिये यहाँ पर यह क्रम क्रमशः किया जा रहा है ताकि सब प्रकार के छात्र समझ सकें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सूक्ष्म विवरण में यंत्रों की सहायता लेकर जो कार्य किये जाते हैं उनका भी संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। आयुर्वेद के इस साहित्य को पुनः विस्तार-पूर्वक छात्रोपयोगी रूप में दिया गया है जिन का नाम आदि रह गया है वह भी विवरण में दिया गया है।

मूल का निर्माण

किसी प्रकार के बीज की उत्पत्ति के लिये प्रथम उसको बो देना पड़ता है। बो देने के बाद भी उचित सामग्री मिलने पर बीज का अंकुरण होता है। जिनमें प्रधान चार वस्तुयें होती हैं।

१ : ऋतु, क्षेत्र, अम्बु व बीज।

महर्षि चरक[1] का कथन है कि बीज को पृथ्वी के भीतर बो देने पर भी जल का सिंचन व कालानुसार, वायु व ताप का मिलना आवश्यक होता है। समान रूप में अंकुरित होने के लिये भिन्न-भिन्न ऋतु, उचित-भूमि, पुष्ट-बीज, व उचित मात्रा में जल का होना आवश्यक है।

अङ्कुरण या अङ्कुरोद्भेद (Germination)

बीज भी कई प्रकार के होते हैं। सामान्य रूप से पेड़ के बीज को ही बोते हैं। परन्तु कई ऐसे वृक्ष हैं जिनके अंकुरण के निमित्त बीज नहीं बोना होता। और उनका अंकुरण बादल की गरजन, शिशिर-वायु-संपर्क होने पर या स्कंध-रोपण पर होता है। भिन्न-भिन्न बीज व रोप्य वस्तु के लिये भिन्न-भिन्न काल व ऋतु होना चाहिये। जैसे वट[2], पीपल, पाखर आदि के लिये स्कंध का रोपण करने पर अंकुरण होता है।

अङ्कुरण :

कन्द आदि में उसके कन्द, पुत्रिका या अन्य वस्तु के रोपण पर अंकुर निकलता है। यथा : शूरण, कूठ व वच आदि।

बृहत् संहिताकार ने लिखा है कि अंकुरण के लिये उचित मृदु भूमि होना चाहिये।

यथा : मृद्वी भूः सर्वसस्यानाम्।

---

१. ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादंकुरो यथा। चरक वि० स्थान ८

२. वटनिम्बपिप्पलनिम्बादीनां जलधरनिनाद-शिशिरवायुसंस्पर्शादङ्कुरोत्पत्तिः। षड्दर्शनसमुच्चय।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भूमि अच्छी भी हो और मृदु न बनाई जाय तो भी कार्य नहीं होता। अतः भूमि को मृदु व उपजाऊ बनाने के लिये कड़ी भूमि को कई बार सिंचन पूर्वक जोतते हैं तो वह मृदु हो जाती है और बीज डालने योग्य हो जाती है।

बीज में उद्भिद के आवश्यक अंश उपस्थित रहते हैं। अतः उनको उपयोगी बनाना पड़ता है। बीज के भीतर उसका भ्रूण भोज्य वस्तु व रक्षक अंश होते हैं। उनको सक्रिय बनाने के लिये भूमि में बीज डालकर पानी डालते हैं। अथवा इसे देखने के लिये बीज को पानी में डाल दें तो दिखलाई पड़ेगा कि पानी में डालने पर बीज फूल गया है। और बड़ा बन गया है। यथा : चना या एरंड के बीज पानी में डालें तो वे फूल कर बड़े बन जाते हैं। और उनमें निम्न लिखित अंग दिखाई पड़ेंगे। १ : बीज के ऊपर का कड़ा छिल्का। चना के आवरण में एक नोकदार भाग होता है। नोक के पास एक छोटा अंडाकार भाग रहता है। यह नाभिचिह्न या [1]हाइलम् कहलाता है। इसके नीचे एक छिद्र होता है यह नाभि-छिद्र या माइक्रोपाइल[2] कहलाता है। इस छिद्र से पानी भीतर जाता है और भीतर का तत्त्व फूल जाता है। छिल्का भी मोटा हो जाता है। इसको हटा दें तो नीचे दो दाल दिखाई पड़ते हैं। दोनों दालों के संगम पर एक नोकदार भाग रहता है। यह नोकदार भाग ही अंकुर है। और दाल द्विदल है।

जो भाग नोक की तरफ होता है वह प्रारम्भिक[3] मूल कहलाता है। और जो भाग द्विदल व भ्रूण के या अंकुर के बीच होता है वह प्रारम्भिक[4] प्ररोह का भाग बनता है। शेष भाग बीज के पोषण के लिये रहते हैं। प्रारम्भिक मूल बढ़कर मूल का रूप धारण करता है और प्ररोह उस के काण्ड का रूप ग्रहण करता है।

इसी प्रकार एरंड के बीज को लें तो दिखाई पड़ेगा कि बीज के ऊपर एक कड़ा आवरण है और वह पानी में फूल कर बीज सहित मोटा हो गया है अधिक फूल जाने पर एरंड का कड़ा छिल्का फट जाता है और भीतर से एक श्वेत वर्ण की वस्तु दिखाई पड़ती है। यह भ्रूण की भोज्य-सामग्री है। दोनों भागों के बीच में अंकुर दिखाई पड़ता है जो नोकदार होता है और नोकदार भाग से दो दल लगे रहते हैं। यह दल हैं और पत्रवत् होते हैं। नोकदार भाग आदि मूल का व अन्य पत्रक का भाग प्ररोह का स्वरूप धारण करते हैं।

1. Hilum.
2. Micropile.
3. Radicle.
4. Plumule.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसी प्रकार एक दल वाले पौधों में भी अंकुरण होता है। इसका स्वरूप कुछ पृथक् होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न बीज के अंकुरण का भिन्न-भिन्न क्रम होता है। एकदलीय पौधों में मक्का आता है। इसके पतले छिल्के के

चित्र १

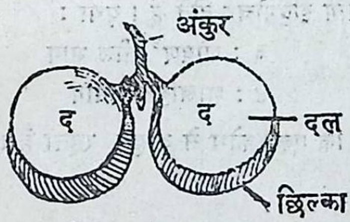

चित्र २

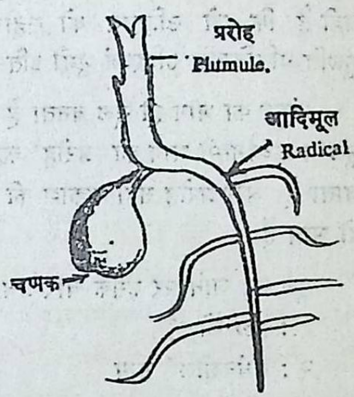

चित्र ३

नीचे द्विदल की तरह रचना नहीं होती। इसमें एक बड़ा भाग होता है। यह इसका गर्भभोज्य द्रव्य है और छोटा भाग दूसरा होता है इसमें भ्रूण छिपा रहता है। इसकी परीक्षा के लिये यदि इस पर आयोडिन द्रव की एक बूँद डालें तो, गर्भभोज्य गहरा-नीला और दूसरा भाग हरा दिखाई पड़ेगा।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न पौधों में अंकुरण का क्रम भिन्न होता है।

इस प्रकार देख पाते हैं कि सब प्रकार के बीजों में, प्ररोह का भाग बढ़ता है जो, प्रारम्भ में मुड़ा रहता है। फिर द्विदल वालों में यह अंश ऊँचा उठ जाता है और दालों वाला भाग ऊपर उठकर, पत्र बन जाता है, अंकुर का भाग नीचे चला जाता है और मूल का स्वरूप धारण करता है। इस प्रकार एक बीज उद्भिद का स्वरूप धारण करता है और अंकुर मूल का रूप और प्ररोह काण्ड का रूप धारण करता है। यह मूल-निर्माण की कहानी है। यहाँ से मूल की उत्पत्ति होकर कई रूप में विस्तार होता है। और बीज एक वृक्ष बन जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मूल व उसके भेदोपभेद

मूल : परिभाषा :

उद्भिज्ज का वह भाग जो कि उसके पोषण का आधार होता है, पृथ्वी के भीतर जाकर उसे स्थिर करता है, मूल कहलाता है। इसका शाब्दिक अर्थ भी यही है कि जो उद्भिज्ज को सहारा देकर भूमि में स्थापित करे। यथा : मूलति प्रतितिष्ठति उद्भिज्जं भूमौ इति मूलम्।

अंकुर का भाग ही मूल बनता है। इसमें अंकुर के अधोगामी भाग को आदि[1] मूल व ऊर्ध्वगामी भाग को प्ररोह[2] कहते हैं। मूल सदा प्रकाश के विरुद्ध नीचे जाता है और प्ररोह सदा प्रकाश की तरफ जाता है। यह अंकुर के प्रारंभिक दो भाग हैं।

मूल बन जाने पर इसके चार प्रधान भाग दृष्टिगोचर होते हैं। यथा :

१ : मूल कोश[3]
२ : वर्धनशील[4] भाग
३ : शोषण[5] शील भाग
४ : शाखायुक्त[6] भाग

मूल कोश : वह मूल का भाग जो कि एक कोश से आवृत रहता है। इसे मूल-कोश या टेपरूट[7] कहते हैं।

२ वर्धनशील भाग : मूल कोश के पीछे का भाग जो नये रूप को देकर बढ़ता है वह वर्धनशील भाग कहलाता है।

३ शोषणशील भाग : वर्धनशील भाग के पश्चात् भाग को शोषणशील कहते हैं क्योंकि इनमें रोम होते हैं और यह पृथ्वी से वनौषधि के लिये लवण व जल का शोषण करता है। और पौधे को बढ़ाता है।

शाखायुक्त भाग : यह शोषणशील भाग के ऊपर और कांडाधार के नीचे होता है। इस भाग से ही शाखारूप में उपमूल निकलते हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं।

१ प्रारम्भिक मूल : द्विदलीय पौधों में आदि मूल बढ़ कर जब नीचे जाता है तो उसकी संज्ञा आदि मूल या [8]प्राइमरी रूट होती है।

---

१. Radicle.
२. Plumule.
३. Root cap.
४. Growing Rigeon.
५. Absorbing Regeon.
६. Branching Regeon.
७. Tape Root.
८. Primary Root.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२ उपमूल : प्रारम्भिक मूल के पृथ्वी में जाने के बाद उसके पार्श्व से जो शाखायें निकलती हैं उन्हें उपमूल या सेकेन्डरी[1] रूट कहते हैं। यह भूमि में तिरछे फैलते हैं।

चित्र ४

३ प्रधान मूल : प्रारंभिक मूल यदि भूमि में जाकर वढ़े और मोटी हो जाय और शाखावों से भी मोटी रहे तो यह प्रधान मूल होता है।

४ शाखायुक्त प्रधान मूल : यदि प्रधान मूल प्रारम्भ में मोटा हो परन्तु लम्बाई में छोटा हो और पार्श्व से लम्बे-लम्बे उपमूल निकल कर मोटे-मोटे बन जायं तो उसे शाखा-प्रशाखा युक्त प्रधान मूल या फाइ[2]ब्रश टैपरूट कहते हैं।

५ अवरोह या सहायक मूल : वृक्षों या पौधों के शाखा या काण्ड के पर्व से या स्कंध से मूल की तरह लटकने वाला मूल जो लटक कर जमीन में समा जाय उसे अवरोह या एरियल[3] रूट कहते हैं।

यथा : वट, पीपल आदि के अवरोह।

---

1. Secondary Root. 2. Fibrous Root.
3. Aerial Root.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्कंधोद्भव अवरोह : यदि यही अवरोह स्कंध से निकलें तो उसे स्कंधोद्भवमूल कहते हैं। और जब ये स्कंध से निकल कर मूल के चारों तरफ भूमि में जाकर पौधे को खड़ा रखने में सहायक हों तो इन्हें सहायक मूल या, स्टिल्ट[१] रूट कहते हैं यथा ज्वार व बाजरे का मूल या केबड़े का मूल।

६ अवलंबक मूल : जो मूल किसी लता या मूलारोहिणी लता के काण्ड पर से छोटे-छोटे मूल के रूप में निकले और लता को वृक्ष या दीवाल पर चढ़ने में सहायक हो तो इन्हें सहायक मूल या अवलंबक मूल या क्लाइम्बिग[२] रूट कहते हैं।

७ स्तंभाकार मूल : जो मूल किसी वृक्ष की शाखा से निकल कर भूमि की तरफ जाकर भूमिबद्ध होकर एक स्तंभ या स्कंध की तरह मोटी हो जाय और वृक्ष को सहारा पहुंचावे उसे स्तंभाकार मूल या कालमनर[3] रूट, प्राप या पिलर कहते हैं।

आवास भेद से यह तीन प्रकार के होते हैं।

१ भौमिक मूल : जो मूल भूमि में रहते हैं भौमिक कहलाते हैं।

२ आप्य मूल : जिनके मूल जल में रहते हैं। आप्य कहलाते हैं।

३ वायव्य मूल : जो मूल भूमि से बाहर निकले रहते हैं वायव्य मूल कहलाते हैं।

परिवर्तित मूल के रूपान्तर :

कन्द : मूल का आकार जब मोटा कन्द के रूप में हो जाता है तो इस प्रकार के मूल को संग्राही या कन्द या स्टोरिंग[४] रूट कहते हैं। इसके कई भेद होते हैं।

१ शंकाकार : जो मूल ऊपर मोटे और क्रमशः नीचे पतले होते जाते हैं और आकार शंकु की तरह बनाते हैं उन्हें शंक्राकार या[५] कोनीकल कहते हैं।

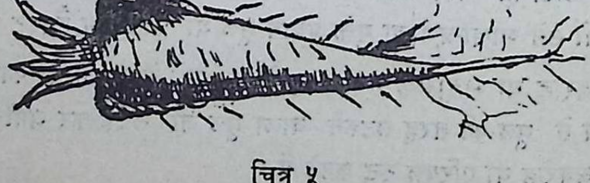

चित्र ५

१. Stilt Root.
२. Colomner Root.
३. Climbing Root.
४. Storing Root.
५. Conical.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२ मूलकाकार : जो मूल प्रारम्भ में पतले बीच में मोटे और नीचे क्रमशः पतले होते जाते हैं और मूली का आकार बनाते हैं उन्हें मूलकाकार या [1]फ्यूज़ी फार्म कहते हैं।

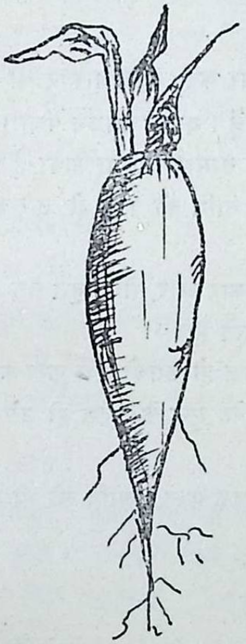

चित्र ६

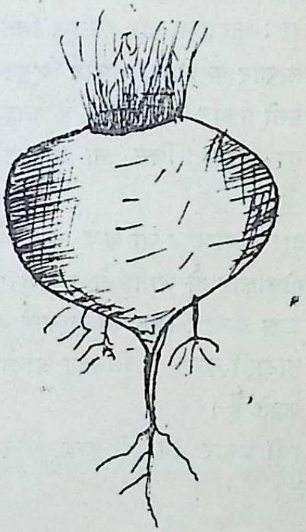

चित्र ७

३ लट्वाकार : जो कन्द या मूल ऊपर सिरे पर बहुत मोटे और वृत्ताकार होते हैं और नीचे एकायक पतले हो जाते हैं उन्हें लट्वाकार या नैपीफार्म[2] कहते हैं।

अनियमित मूलों के विभिन्न रूपान्तर :

अनियमित मूल कई प्रकार के होते हैं। इनका आकार भिन्न-भिन्न रूप का होता है।

१ कन्दाकार मूल : जिन मूलों में आदि का मूल पतला और बीच में मोटा और अन्त में फिर पतला होता है उन्हें कन्दाकार मूल या ट्यूबरस[3] रूट कहते हैं। इनके भिन्न-भिन्न आकार हैं। यथा :

---

१. Fusiform. २. Napeform. ३. Tuberous Root.

३ क्रि० औ०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क : सामान्य कन्द : जो उभय पार्श्व में मोटे व बीच में पतले होते हैं। यथा : शकरकन्द, शतावरी।

ख : कन्दगुच्छ : जो मूल कई संख्या में एक ही मूल से निकलते हैं और आकार गुच्छ का बनाते हैं उन्हें कन्दगुच्छ कहते हैं। यथा : शतावरी, मूसली आदि।

ग : करतलाकार कन्द : जिनका आकार करतल के आकार का हो उन्हें करतलाकार कन्द या, पामेटेड[1] ट्यूबरस कहते हैं। यथा : सालम पंजा।

इसी प्रकार अन्य प्रकार के आकार का भी नामांकन किया जाता है। यथा :

वत्सनाभ : जिस का आकार बछड़े की नाभि की तरह हो उसे वत्सनाभ कहते हैं।

शूरण कन्द : जो कन्द ऊपर मोटा वृत्ताकार और नीचे वृत्त रूप में धीरे-धीरे गोलाकार हो जाता हो उसे शूरण कन्द कहते हैं।

वज्र कन्द : जिस का आकार वज्र की तरह हो उसको वज्र कन्द कहते हैं।

वाराही कन्द : जिसका आकार वाराह के मुख के सदृश हो उसे वाराही कन्द कहते हैं।

इसी प्रकार विदारी कन्द, श्रीकन्द, पिंडालुक कन्द, आदि को भी समझना चाहिये।

वायवीय मूल का रूपान्तर जो मिलता है :

जो मूल जमीन से बाहर रहते हैं उनको वायवीय मूल कहते हैं। उनके रूपान्तर विभिन्न प्रकार के होते हैं। यथा :

१ स्तंभाकार : भूमि के ऊपर जो मूल स्तंभाकार हो उन्हें स्तंभाकार मूल कहते हैं। यथा : वट।

२ श्वासग्राही मूल : जो मूल भूमि में या पंकयुक्त भूमि में श्वास ग्रहण करने के लिये ऊपर छिद्रित होकर निकल आते हैं उन्हें श्वासग्राही या ब्रिदिंग[2] रूट कहते हैं।

३ वातलम्वी मूल : वे पौधे जो किसी अन्य वृक्ष से चिपके रहते हैं पर उससे अपना खाद्य न लेकर अपनी मूल से सूक्ष्म मूल या अवलम्बी मूल निकाल करके आहार ग्रहण करते हैं उन्हें वातावलम्बी मूल कहते हैं। यथा : बन्दाक या बंगाली रास्ना मूल।

---

१. Palmated. २. Breathing Root.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४ प्रवाल सदृश मूल : जो मूल प्रधान मूल के अतिरिक्त ऊपर से अन्य कई मूल देकर शाखा-प्रशाखा दे देते हैं उन्हें शाखी प्रवालमूल या कोरोलोयड[1] रूट कहते हैं।

शोषक मूल : जो पौधे अपने मूल से दूसरे पौधों को भेद कर उससे आहार ग्रहण करते हैं वे शोषक [2]मूल होते हैं। जैसे बान्दा की कई जातियाँ।

संतानोत्पादक मूल : कुछ पौधों में कलम लगाने पर उससे मूल निकल कर दूसरे पर चिपक जाते हैं और दूसरा पौधा बनाते हैं, वे संतानोत्पादक मूल या रिप्रोडक्टिभ[3] रूट कहलाते हैं।

मूल का विवरण :

ग्रन्थिवत् मूल :

जो मूल आगे जाकर गांठ की तरह मोटा हो जाय उसे तथा जो कि आगे जाकर ग्रंथि की तरह मालाकार रचना बनावे उसे ग्रन्थिवत् मूल कहते हैं।

इस प्रकार सैकड़ों भेद मूल के पाये जाते हैं।

मूल के कार्य :

१ स्थैर्यकृत् : मूल पौधों को ज़मीन में दृढ़ स्थापन करता है। प्रधान मूल के रूप में कहीं पर प्रधान मूल से विभिन्न रूप का शाखादार मूल निकल कर पेड़ को स्थिर रखता है। इस प्रकार वह वृक्ष को संरक्षण प्रदान करता है।

२ शोषण कर्म : मूल पृथ्वी से रस का शोषण करके वृक्ष या क्षुप को आहार प्रदान करता है। और वनौषधि के जीवन का रक्षण करता है।

३ रस संवहन : मूल पृथ्वी से विभिन्न प्रकार के लवण व जल का शोषण करने के बाद उसका संवहन करा कर जीवन की रक्षा करता है। मनुष्य में जिस प्रकार रस संवहन होता है उसी प्रकार से पेड़ों में भी रस का संवहन होता है।

४ संग्रह : वृक्ष या पौधों की रक्षा के लिये मूल आहार-सामग्री का संग्रह करके उसके भविष्य के जीवन की सुविधा को प्रदान करता है। औषधियों में कन्द मूल व अन्य प्रकार के जितने साधन हैं वह मूल से ही मिलते हैं। इस निमित्त पौधों की रचना में विशेष प्रकार के सूक्ष्म रचनाओं का होना यह

---

१. Coroloid Root. २. Parasitic Root.

३. Reproductive Root.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बतलाता है कि इसके जीवन के लिये ये आवश्यक हैं। अतः मूल की रचना व उनका विवरण आगे दिया जा रहा है।

मूल की प्रारंभिक आन्तरिक रचना

(Primary internal structure of the Root.)

मूल की रचना में जब यह एकदलीय व द्विदलीय के भेद से विचारा जाय तो दोनो में भेद दिखाई पड़ता है। काण्ड में भी इसी प्रकार का भेद मिलता है और इसके आधार पर दोनों की रचना का भेद किया जाता है। इन रचनावों को अध्ययन करने के लिये इनके छेद, अनुलम्ब व अनुप्रस्थ लेने पड़ते हैं, और उनका अध्ययन करते हैं। विवरण निम्न मिलता है।

द्विदलीय रचना :

द्विदलीय मूल की रचना में छेद लेने के बाद हमें विचारणीय विवरण मिलता है वह यों है : बीज के भीतर के भागों को जो उसमें रहते हैं विचारें तो कई भाग मूल-निर्माणकर होते हैं। यदि अनुप्रस्थ छेद लें तो रचना में यह दिखाई पड़ेगा :

१ : सब से बाहर की तरफ एक कोष की दीवाल होती है। यह समान रूप से चारों ओर होती है इसे मूल त्वक् या एपीब्लेमा[१] कहते हैं। इसी मूल त्वक् की कुछ कोषायें, परिवर्द्धित होकर मूल के रोम का स्वरूप धारण करती हैं।

२ : इसके बाद की दीवाल कई कोषाओं की बनी होती है जो कि मोटी होती है। इसे इसका प्रान्तीय भाग या कोरटेक्स[२] कहते हैं। इसकी कोषायें अनियमितकोषा की होती हैं और पतली दीवाल बनाती हैं।

३ : इसके बाद एक अनिश्चित आकार की कोषाओं की बनी मोटी दीवाल होती है। यह स्तर अन्तस्त्वक् या इंडोडरमिस[३] कहलाता है।

४ : इस के बाद एक अपेक्षाकृत छोटी कोषावों का दूसरा स्तर ऊपर-वाले स्तर से सटा हुआ होता है। यह एक प्रकार की रचना के चक्रक्रम को बनाता है इन्हें पेरीसाइकिल[४] कहते हैं। इसकी कोषायें पतली भित्तिवाली लग-भग षट्कोण-होती हैं।

५ : इसके बाद एक स्तर मिलता है जिसका कार्य मूल में रस-संचार

---

१. Epiblema २. Cortex
३. Endodermis ४. Pericycle

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

करने का होता है। यह रचना मूल व काण्ड में विशेष प्रकार की होती है। इसी आधार पर इसका विभाजन किया जाता है। यथा :

इसमें क्रमशः निम्न रचना होती है :

१ : इसमें मृदु सूत्र (फ्लोयम[१]) व कठिन सूत्र (जाइलम[२]) की रचना का कोषसमूह पृथक्-पृथक् होता है।

२ : वृत्ताकार पेरीसाइकिल की रचना एक निश्चित क्रम में समूह के रूप में पाई जाती है और इनकी संख्या भिन्न-भिन्न पौधों में भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। इसमें चार या पाँच से लेकर कई समूह होते हैं। किन्तु यह निश्चित रहता है कि मृदु सूत्र की व कठिन सूत्र (फ्लोयम व जाइलम) की समूह संख्या समान होती है और क्रमशः एक समूह जाइलम का तो एक समूह फ्लोयम का होता है। फिर एक जाइलम का और फिर एक फ्लोयम का इस प्रकार क्रम में होता है। इस प्रकार की रचनाओं का ध्यान रखना होता है।

३ : प्राथमिक जाइलम[3] की कोषायें जो कि छोटी व पतली होती हैं बाहर की तरफ रहती हैं। काण्ड में यह भीतर की ओर होती हैं या केन्द्र की ओर होती हैं। जब यह केन्द्र की दिशा में अर्थात् भीतर की ओर होती है अंतः स्थितीय[४] कहलाती है और जब बाहर की तरफ रहती है बाह्य[५] स्थितीय कहलाती है। दोनों समूह अलग-अलग होते हैं। इनके बीच में मृदु मज्जा भाग रहता है। इसको पिथ[६] कहते हैं। किन्तु कभी-कभी देखा जाता है कि जाइलम समूह केन्द्र की तरफ एक में मिले रहते हैं ऐसी दशा में पिथ का भाग अलग नहीं दिखाई पड़ता।

मूल की अन्तरिक रचना :

काण्ड व मूल की त्वगीय रचना में कोषाओं में एक अन्तर उनकी स्थिति के कारण भी होता है। कांड त्वक् की कोषायें मोटी और दृढ़ भित्तियुक्त (क्यूटिन युक्त) होती हैं। और यह अपने भीतर से पौधों के जल त्याग को रोकती हैं। मूल त्वक् की कोषायें सामान्य व पतली दीवाल की होती हैं। ताकि यह सरलता से भूमि से रस आदि ग्रहण कर सकें।

एकदलीय मूल की रचना : (Monocot roots & it's structure.)

सामान्य रूप से एकदलीय व द्विदलीय पौधों के मूल में प्रारम्भ में कोई

---

१. Phloem २. Xylem ३. Protoxylem
४. Endarch ५. Exarch ६. Pith

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अन्तर नहीं होता किन्तु कुछ काल के बाद उनमें विभेदक लक्षण दिखाई पड़ते हैं, यथा :

१ : एकदलीय मूलों में मृदु व कठिन सूत्र की समूह सँख्या प्रायः द्विदलीय की अपेक्षा अधिक होती है। द्विदलीय में दो-दो या पाँच-पाँच समूह होते हैं। कभी-कभी अधिक भी रह सकते हैं। किन्तु एकदलीय में यह संख्या प्रायः १२-१५ या बीस तक हो सकती है। कम-से-कम ७ या ८ तक हो सकते हैं। जब दो-दो के समूह होते हैं उन्हें द्विस्तंभीय[१] तीन-तीन की संख्या में होने पर त्रिस्तंभीय,[२] चार-चार की संख्या में चतुःस्तंभीय,[३] पाँच समूह में होने पर पञ्च-स्तंभीय[४], और अधिक होने पर बहुस्तंभीय संज्ञा होती है।

द्विदलीय मूलों में द्वितीया वृद्धि कैम्बियम, कार्क कैम्बियम के निर्माणपूर्वक होती है। एकदलीय में यह द्वितीया वृद्धि नहीं होती।

द्विदलीय मूलों की द्वितीया वृद्धि का क्रम :

जब पौधे प्रारम्भ में उगते हैं तब उनके बीच में मृदु धातु के सूत्र भीतर की तरफ रहते हैं। धीरे-धीरे जैसे-जैसे पौधे बढ़ते हैं यह आगे को बढ़ता जाता है, पौधे को धारण करने वाले कठिन सूत्रों का जन्म होता जाता है और पौधे पीछे की तरफ मोटे होकर बढ़ने लगते हैं। अतः प्रथम वृद्धि के बाद जब द्वितीय वृद्धि होती है तब मृदु सूत्रों के संपर्क में रहने वाली कोषायें विभजन-शील होकर कैम्बियम का रूप धारण करती हैं। इस प्रकार जितने समूह मृदु कोषावों के होते हैं उतनी ही पट्टियां इन कोषावों की बन जाती हैं। इस प्रकार जितने समूह इन मृदु सूत्र वाले कोषास्तरों का होता है उतने ही, पर्त काष्ठ की रचना के बाद बनते जाते हैं।

यह विभजनशील कोषावों की पट्टियाँ पेरीसाइकिल के वृत्त तक बढ़ती हैं। और उनकी कुछ कोषायें विभजनशील बन जाती हैं। इसके बाद इन विभजनशील कोषाओं का समूह इस प्रकार आपस में मिल जाता है कि एक पूरा ऊँचा-नीचा वृत्त सा बन जाता है। जिस में फ्लोयम के समूह बाहर की ओर और कठिन सूत्र समूह भीतर की ओर हो जाते हैं। अब इसके बाद के निर्माण में भीतर कठिन सूत्रमय व बाहर मृदु सूत्रमय रचना बनती है।

शीघ्र ही इन विभजनशील कोषाओं का वृत्त जो कि ऊँचा नीचा था वह

१. Diarch. २. Triarch.
३. Tetrarch. ४. Pentarch.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एक वृत्ताकार आकार धारण करता है और उसके बाद समूचे पेरीसाइकिल का वृत्त भी स्वयं विभजनशील हो जाता है। बीच-बीच में इन विभजनशील कोषावों का साधारण पतली कोषावों का निर्माण भी होता है और इस कारण मध्यवर्ति स्थान में किरणों की तरह नई रचना बन जाती है।

काण्ड की तरह वार्षिक वृत्तों का निर्माण भी यहाँ पर होता रहता है। किन्तु यह रचना इतनी स्पष्ट नहीं होती। काण्ड के समान कार्क कैंबियम की उत्पत्ति हो कर त्वचा आदि का निर्माण, पुराने मोटे मूलों में परिणत हो जाता है।

काण्ड या स्टेम (STEM)

परिभाषा : मूल के ऊपर से अन्तिम शाखा निकलने तक के भाग को काण्ड कहते हैं।

इसके दो-भेद होते हैं यथा १ : प्रकांड या स्कंध
२ : सामान्य स्कंध या काण्ड

प्रकाण्ड या स्कंध : मूल से प्रथम शाखा निकलने तक के भाग को स्कंध कहते हैं।

सामान्य काण्ड : स्कंध से ऊपर के उस भाग तक को जहाँ तक शाखायें निकलती हैं वह सामान्य काण्ड कहलाता है।

यह काण्ड कई प्रकार के होते हैं तथा बड़े वृक्ष और छोटे क्षुप तक में पाये जाते हैं। इनमें शाखापर्व और अक्षि होते हैं। इनके भेद; यथा :

१ : सीधे मज़बूत व दीर्घ काण्ड को स्कंध या [1]काडेक्स कहते हैं यथा : ताल स्कंध।

२ : जो स्कंध ग्रन्थियुक्त व भीतर से खोखले होते हैं वह भी स्कंध कहलाते हैं। यथा : वंश स्कंध।

३ : छोटे पौधे या लताओं में काण्ड प्रारम्भ में उठ कर, पुनः प्रसर जाते हैं और उनके पर्वों से नये पल्लव व शाखायें निकलती हैं उन्हें भूप्रकाण्ड वा स्थगित प्रकाण्ड अंडर ग्रांउड स्टेम[2] कहते हैं।

४ : आकार : काण्ड आकार में कई प्रकार के होते हैं। यथा :

१ : वृत्ताकार[3] २ : अर्द्धवृत्ताकार[4]
३ : त्रिकोण ४ : चतुष्कोण

---

१. Caudex. २. Under ground stem.
३. Cercular ४. Sami cercular

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५ : चपटा ६ : नलिकाकार–शाखा–रहित इत्यादि।

इसके पृष्ठ : मसृण[१] रोमश[२] खर या कर्कश तथा कंटकी होते हैं। ये कंटक कहीं कड़े कहीं मृदु होते हैं।

काण्ड भेद : १ वायवीय[३] जिनका स्थान वायु में होता है।

२ भौमिक[४] : जो भूमिपर पसरते हैं। वायवीय के कई कई भेद होते हैं। यथा :

१ : स्वावलम्बी[५] ये दृढ़ होने से स्वतः खड़े होते हैं।

२ : परावलम्बी[६] या मृदु काण्ड : पतले, दुर्बल व लम्बे होते हैं तथा भूमि पर प्रसरणशील होते हैं। इनकी वल्ली, लता, प्रसर इत्यादि संज्ञा होती है।

भौमिक काण्ड : जो काण्ड वायु में बढ़ने के वदले भूमि में बढ़ते हैं, अधोगामी होते हैं उन्हें भौमिक काण्ड कहते हैं। यह स्थूल, मांसल, रसदार व खाद्य पदार्थों से युक्त होते हैं। इन्हें रूपान्तरित काण्ड भी कहते हैं।

शाखा : शाखायें काण्ड से निकलती हैं। इनके कई भेद होते हैं।

१ : पार्श्विक : जो शाखा पार्श्व से निकलती हैं उन्हें पार्श्विक कहते हैं। इनके परिमित व अपरिमित भेद दो प्रकार के होते हैं :

अपरिमित[७] :

जिनमें बहुसंख्यक शाखायें काण्ड के अन्त तक निकलती हैं। यथा : देवदार।

परिमित[८] :

जब काण्ड थोड़ी दूर बढ़ कर रुक जाता है और शाखायें ही बढ़ कर शाखा-प्रशाखा देती हैं तो उन्हें परिमित कहते हैं। यथा : करौंदा

काण्ड के वायवीय रूपान्तर : (Aerial modification of stem)

१ दीर्घ मूलिनी : (Runner) जो शाखा, जमीन में जड़ देती हुई फैलती है यथा : ब्राह्मी

२ ह्रस्व मूलिनी : (Stolan) यह पूर्व की भाँति ही होती है पर काण्ड छोटा होता है और उस पर पत्तियों का गुच्छा होता है। यथा : कुंमी

---

१. Glabrous २. Hairy
३. Aerial ४. Sub terranion
५. Erect stem ६. Week stem
७. Racemose or Monopodial or Indefinite
८. Cymose or Sympodial or Definite

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३ नत मूलिनी : (Offset) पतली व लम्बी शाखा जो ऊपर उठती है बढ़कर फैल जाती है और फिर भूमि स्पर्श कर नई जड़ें देती है और वहां नया पौधा बन जाता है यथा : पिपरमेंट ।

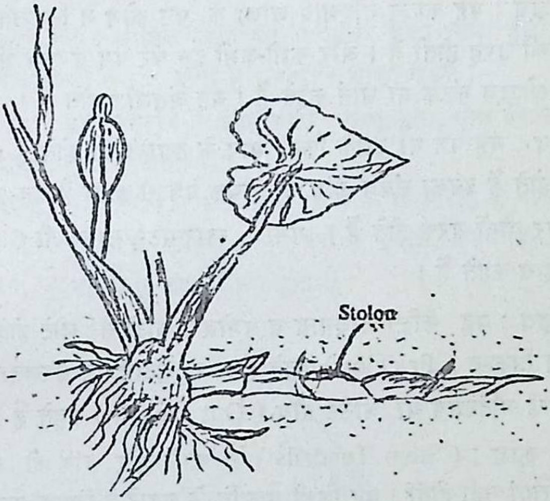

चित्र ८

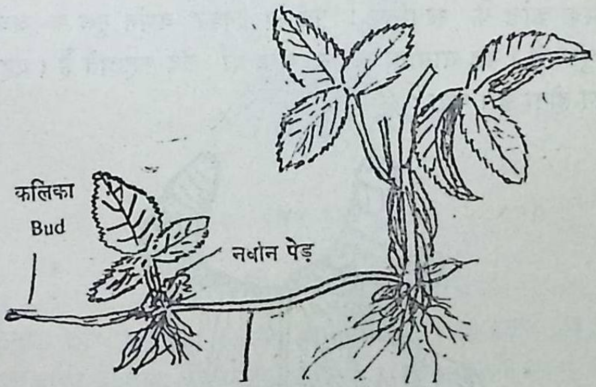

चित्र ९

४ : पत्राभास : कांड : जो देखने में हरे चिपटे या पत्राकार शाखाओं के रूप में होती हैं इन पर पत्र बहुत सूक्ष्म छोटे पतले लगे रहते हैं कभी इन पत्रों का अभाव होता है। यह भूमि में पाये जाते हैं। ये कांड पत्र का भी काम करते हैं यथा : नागफणी व शतावरी ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५ : कंटकी कांड : कांड कभी-कभी कंटकों के रूप में रूपान्तरित हो जाता है ये तीक्ष्णाग्र होते हैं।

१ : कंटक के भेद : १ शाखोद्भव : २ : पत्रोद्भव ३ : उभयोद्भव।

शाखोद्भव : यह कठिन तीक्ष्णाग्र शाखा के पत्र कोण से निकलते हैं इनकी रचना कांड की तरह होती है। और कभी-कभी इन पर पत्र व पुष्प भी निकलते हैं। इन्हें शाखोद्भव कंटक या थार्न कहते हैं। यह अंतर्जात होते हैं।

पत्रोद्भव : यह पत्र या उसके किसी भाग के रूपान्तरित होते हैं। तीक्ष्णाग्र व बर्हिजात होते हैं इनका संबंध कांड से पृथक् पत्र से होता है यह पत्र के पृष्ठ या किनारे पर दोनों तरफ होते हैं। यथा : ग्वारपाठा, नागफणी। इन्हें पत्रोद्भव या स्पाइन्स कहते हैं।

उभयोद्भव : यह कठिन तीक्ष्णाग्र व पत्रोद्भव कांटों से छोटे होते हैं इन्हें उभयोद्भव या प्रिकल्स (Prickles) कहते हैं। यह हटाने पर सरलता से अलग हो जाते हैं इन्हें बहिरुद्भव या आउट ग्रोथ (Out grouth) कहते हैं।

तंतुमत् कांड : (Stem Tendrils) ये पतले और तार की तरह होते हैं। इनमें पत्तियां नहीं होतीं। यह किसी वृक्षादि के सहारे से चिपक कर पौधे को ऊपर उठाते हैं। यथा : कुष्मांड।

भौमिक कांड के रूपांतर : पूर्व में इनका वर्णन मूल के अध्याय में किया जा चुका है। यह सामान्य रूप से कांड या कंद कहलाते हैं। यह प्रधान चार भेद का होता है। यथा :

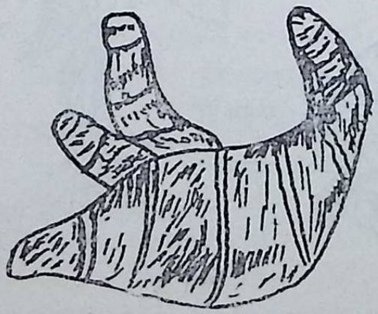

चित्र १०

१ : अनियमिताकारकांड कंद राइजोम (Rhizome)

२ : वृत्ताकार कंद या ट्यूबर (Tuber)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३ : वज्र कंद या कोरम (Coram)

४ : वल्की कंद या वल्व (Bulb)

अनियमिताकार : यह पुष्ट, मोटा, मांसल, वृत्ताकार या गोल नलिकाकार स्थूल होता है।

वृत्ताकार कंद : भौमिक कांड का रूपान्तर मोटा फूला हुआ गोल अनियताकार खाद्य द्रव्यों से पूर्ण होता है। यथा : आलू, कसेरु।

वज्र कंद : यह आकार में बड़ा, मोटा, फूला हुआ, गोल या अनियताकार होता है। यथा : सूरण, मानकंद।

वल्कीकंद : यह अपने वल्क पत्रों से खाद्य संचय करता है वास्तविक कांड छोटा होता है। यह मोठे मांसल वल्क पत्रों से पूर्णतः ढका रहता है यथा : प्याज, रसोन, सुरंजान यह कंद पत्रमय होते हैं

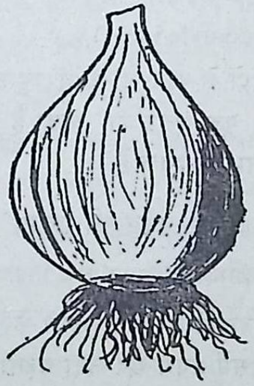

चित्र ११

कांड की आन्तरिक रचना

प्रायशः कांड, मूल का अग्रगामी भाग होता है परन्तु इसमें कुछ रचनाओं के अतिरिक्त बाकी रचनायें भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः इनकी रचना को सरलता से पृथक् किया जाता है। वनस्पतिशास्त्रियों ने इसका अध्ययन इतना गंभीर किया है कि इनका पृथक्करण सरलता से हो जाता है। फिर भी कभी-कभी यह विचार ऐसा आ पड़ता है कि मूल व कांड की रचना को पृथक् करना कठिन हो जाता है। इसमें कारण कई हैं। कई प्रकार के कांड भूगामी होते हैं। और उनका प्रत्यक्ष रूप मूल की तरह ही होता है। कुछ मूलें पृथ्वी के नीचे न चल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कर बाहर हवा में चलती हैं। और उनको बाहर देख कर कोई मूल नहीं मानते। जो भी हो इन स्थितियों से रचना में कुछ अंतर अवश्य आ जाता है। अतः आवश्यक हो जाता है कि मूल व कांड की रचना का अध्ययन किया जाय। इस निमित्त कांड व मूल की साधारण रचना, आंतरिक रचना, उनके कोषाओं की रचना, त्वक् भाग, काष्ठ भाग व सार भाग की रचनाओं का अध्ययन किया जाय।

मूल व कांड की आंतरिक रचनायें जो प्रारंभ में होती हैं बाद में बहुत बदल जाती हैं। इस प्रकार के परिवर्तन के कारण ही वनौषधि अपने शरीर में कई प्रकार के औषधि द्रव्य को अपने भीतर उत्पन्न करती है। अतः इनका अध्ययन और भी आवश्यक हो जाता है। सामान्य रूप से साधारण पुष्प वाले उद्भिद् दो प्रकार के होते हैं।

१ : द्विदलीय (Dicotyledons) व

२ : एकदलीय (Monocotyledons)

दोनों ही प्रकार के उद्भिदों के कांड औषधार्थ प्रयुक्त होते हैं। इनकी रचना में प्रारम्भ से अंत तक बहुत कुछ अंतर आ जाता है। अतः इनकी रचना को पृथक्-पृथक् ही अध्ययन करना आवश्यक है।

द्विदलीय कांड की रचना

प्रारम्भिक स्वरूप : (Primary Strueture)

कांड की आंतरिक रचना को अध्ययन करने के लिये इसका अध्ययन दो प्रकार से करना चाहिये। इसमें प्रथम छेद लेना पड़ता है। यह दो प्रकार से लेना चाहिये।

१ : अनुप्रस्थ च्छेद (Transverse Section)

२ : अनुलम्ब च्छेद (Longitudinal Section)

इस प्रकार के छेद लेने के लिये कई यंत्र आते हैं परन्तु इनका छेदन हाथ से भी सावधानीपूर्वक किया जा सकता है। एक सेल की मोटाई में इसका कर्त्तन कर के पुनः अणुवीक्षण यंत्र से देखना चाहिये। इनको काटना, रंजित करके दर्शनीय बनाना आदि की पृथक् विधि है जो कि किसी वनस्पतिशास्त्र की पुस्तक से सहायता लेकर जानना आवश्यक है। एक द्विदलजातीय पौधे के छेद लेने पर निम्न बातें दिखाई देती हैं। रचना में निम्न बातें होंगी।

१ : सब से ऊपर एक निश्चित आकार की कोषाओं की भित्ति चारों ओर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दिखाई पड़ती है। यह त्वचा की होती है। इसे वाह्य त्वगीयभाग या एपीडरमिस (Epidermis) कहते हैं।

इसके वाद बहुत सी कोषाओं की स्तरें दिखाई पड़ती हैं। इसके वाद विशिष्ट रचनायें भी दिखाई पड़ती हैं। यथा : १ : विशेष प्रकार के कोषाओं का समूह जो गोलाई में स्थित दिखाई देते हैं।

गोलाई में स्थित समूह जो कि दिखाई देते हैं। यह रसवाही नलिकाओं के समूह हैं। इनके द्वारा रस का संवहन होता है। इन्हें रसवाहिनी समूह या वेसकुलर वंडल कहते हैं। शेष भाग एक नियमित रचनाओं से बना होता है। इन रचनाओं को कई भागों में विभक्त कर सकते हैं जिनमें तीन विभाग प्रधान होते हैं।

१ : परिसरीय भाग या कोरटेक्स : (Cortex)

ऊपर से रसवाहिनी तक का भाग परिसरीय कहलाता है।

२ : केन्द्रीय भाग : रसवाहिनी से लेकर अंदर केन्द्र तक का भाग मज्ज भाग या मेडुला (Medulla) या केन्द्रीय भाग या पिथ (Pith) कहलाता है।

३ : रश्मि दंड या मेडुलरी रेज़ : (Medullary Rays)

रसवाहिनी के बीच के हिस्सों से होते हुये अंदर से वाहर को फैल कर जानेवाली रश्मियों के आकार की रचना पाई जाती है इन्हें रश्मिदंड (Medullary Rays) कहते हैं। इन तीन विशिष्ट भागों का अध्ययन निकट से करें तो और भी विशिष्ट रचना दिखाई देगी। यथा :

१ : परिसरीय या कोरटेक्स का भाग : कांड के सबसे बाहर का भाग एक कोषा की दीवाल से निर्मित होता है। इस भाग को बाह्य त्वक् या एपीडरमिस (Epidermis) कहते हैं। शेष कोरटेक्स का भाग हाइपोडरमिस या अंतः त्वक् कहते हैं।

२ : बाहरी त्वक् के ठीक नीचे दो या तीन कोषाओं की मोटाई की एक दूसरी तह होती है। इसे—कैलेन काईमा कहते हैं। इस भाग की कोषायें मोटी भित्ति की होती हैं। और यह मोटाई काष्ठोज या सेल्यूलोज के जमा होने से बनी होती है। इस स्तर में विशेष रूप से काष्ठोज का संग्रह कोणों पर होता है। जहां इनकी मोटाई बढ़ जाती है। इन स्थानों में सेलो में हरित कण या क्लोरोप्लास्ट (Chloroplasts) होते हैं। यह रचना मृदु कांडो में ही पाई जाती है। कांड के मोटे होने पर यह मृत होकर सूख जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३ : इसके बाद पतली भित्ति वाली कोषाओं की कई कोषाओं की मोटी स्तर दृष्टिगोचर होती है। इस भाग में प्रायः निर्यास संग्रह करने वाली नलिकायें भी बन जाती हैं।

४ : इसके पश्चात् एक कोषाओं की स्तर वाली एक आंतरिक त्वचा मिलती है। इसे अंतः त्वक् या इंडो डरमिस कहते हैं। इस स्तर की कोषाओं में नन्हें-नन्हें कण सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखने पर दृष्टिगोचर होते हैं। आयोडिन के द्वारा रंजित करने पर ये पहचाने जा सकते हैं। इस स्तर के ये कण स्टार्च के बने होते हैं। इसे पिष्टसंग्राहक स्तर भी कह सकते हैं।

५ : इसके बाद अंदर की ओर एक स्तर अन्य प्रकार के कोषाओं की मिलती है। यह जानना आवश्यक है कि इस प्रकार के स्तर में भिन्न-भिन्न वृक्षों के कांडों में भिन्न-भिन्न प्रकार की रचना पाई जा सकती है। किसी-किसी में यह एक गोले के रूप में दिखाई देते हैं। किसी-किसी में यह रसवाहिनी समूह के सदृश साथ-साथ केवल समूहों के चारों ओर होती हैं और किसी-किसी में यह होती ही नहीं। इस स्तर को दृढ़ स्तर या हार्ड बास्ट (Hard bast) या कुछ लोग पेरीसाइकिल (Pericycle) भी कहते हैं। इसकी कोषायें कठिन व लिग्निन-युक्त होती हैं। आयोडिन से रंगने पर इसका रंग भूरा सा हो जाता है। इस प्रकार का स्तर वृत्ताकार रूप में कुछ पौधों में केवल एक कोषा की मोटाई का होता है। परन्तु अधिकांश में यह कई कोषाओं के द्वारा बना होता है। और जायमान या जाईलम् के कोषाओं की रचना की तरह दिखाई पड़ता है।

६ : इसके बाद रसवाहिनी समूह के चक्र आते हैं। इस रचनांग के द्वारा रससंवहन का कार्य होता है।

द्विदलीय पौधों में रसवाहिनी समूह की रचना में तीन प्रकार के कोष स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। यथा :

१ : सब से ऊपर बाहर की ओर मृदु कोषाओं का बना भाग या फ्लोयम (Phloem) का भाग होता है। अर्थात् मृदु कोषा की नलिकायें और केन्द्र की ओर कठिन कोषा की नलिकायें होती हैं। जिन्हें ज़ाइलम का स्तर कहते हैं। इनको प्रारंभिक फ्लोयम का और प्रारंभिक ज़ाइलम का समूह कहा जा सकता है। इन दोनों के बीच विभजनशील कोषाओं की एक स्तर होती है इसे विभाजक स्तर कहते हैं। इसका नाम कैम्बियम या (केन्द्रियम्) भाग भी कहते हैं। इन स्थानों की विशेष रचना देखिये।

मृदु कोषीय स्तर या फ्लोयम : (Phloem)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यह कोषा समूह रस वाहिनी के समूह के ऊपर स्थित होते हैं। इनको मृदु भाग या सोफ्ट वास्ट कहते हैं। क्योंकि यह बहुत ही मृदु व पतली भित्ति वाले होते हैं। इस स्थान की कोषायें लम्बे आकार की होती हैं। और आपस में मिलकर छलनीयुक्त नलिकाओं का निर्माण करते हैं। यह नलिकायें द्रव पदार्थ को ऊपर से नीचे ले जाती हैं। इस प्रकार पत्तियों में बनने वाला खाद्य पदार्थ इन्हीं नलिकाओं के द्वारा नीचे को आकर सारे वृक्ष में फैलता है। इसमें तीन प्रकार की कोषायें दृष्टिगोचर होती हैं।

१ : जालीदार रचना वाली कोषायें : (Sieve cells)

२ : साथी कोषायें या कम्पेनियन सेल्स (Companion cells)

३ : साधारण पतली दीवार वाली कोषायें। (Phloem Paremchyma)

इनकी विशेष रचनायें पृथक् से जानना चाहिये।

विभाजक स्तर : या कैम्बियम का स्तर : (Cambiam)

रसवाहिनी समूह की मध्य भाग में इन विभजनशील कोषावों की स्तर होती है। यह कोषायें द्विदलीय पौधों में नये कोषाओं का निर्माण करके कांड की मोटाई को बढ़ाती हैं। कैम्बियम की कोषायें यहां पर दो प्रकार की नई कोषाओं का निर्माण करती हैं। ऊपर की ओर मृदु कोषाओं का व नीचे जाइलम की कोषावों का। यह कैम्बियम कोषायें पतली दीवार की ओर चौखुटी सी होती हैं। और प्रायः गोलाई की दिशा में लम्बी होती हैं। और इनमें कोष विभाजन की क्रिया होती रहती है।

जाइलम् या केन्द्रीय स्तर :

इस स्तर की दीवाल मोटी होती है और लिग्निनयुक्त कोषाओं से बनी होती है। इसकी नलिकायें स्पष्ट दिखलाई देती हैं। केन्द्र की ओर की नलिकायें जो इन कोषाओं के लम्बाई में मिलने से बन जाती हैं कुछ छोटी और ऊपर की ओर कुछ मोटी होती हैं। इनकी दीवारें कड़ी और मजबूत होती हैं। तथा इन नलिकाओं में रस संचार नीचे से ऊपर को होता है इन कोषाओं का आकार गड्ढेदार सर्पिल या जालीदार होता है।

इनकी विशेष रचना कोषाओं की रचना नामक शीर्षक में देखिये।

रसवाहिनी नलिका समूह :

यह समूह शाखा-प्रशाखायुक्त होकर कांड की शाखा और पत्तियों आदि में फैले होते हैं। जहां इनमें शाखा निकलती है वहां यह तिरछे होकर और कोर-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

टेक्स के भाग को चीरते हुये शाखा या पत्र में प्रवेश कर जाते हैं। किसी-किसी द्विदलीय तने में यह कुछ समूह ऐसे मिलते हैं जो केवल कांड में ही सीमित रहते हैं। अन्य भागों में जानेवाले शाखायुक्त भाग पृथक् होते हैं।

इसके बाद का केन्द्रीय भाग पतली दीवाल वाले विशेष कोषाओं का बना होता है जिन्हें पैरेंकाइमा कहते हैं।

मज्जीय रश्मि :

इन रसनलिका समूहों के मध्य में साधारण पैरेंकाइमा के कोषाओं के होने के कारण रश्मि के स्वरूप की रचना मध्य भाग से ऊपर की ओर जाती हुई दिखाई पड़ती है।

शुंग या शीर्ष कली का रचना

शीर्ष कली के स्थान पर कांड आगे को बढ़ता रहता है यहां पर की प्रायः सब कोषायें विभजनशील होती हैं। और नये अङ्ग-प्रत्यङ्ग का निर्माण करती हैं। इस भाग का अनुप्रस्थ छेद लेकर हम देखें तो इसमें तीन भाग दिखाई देते हैं। यथा :

१ : बाह्य भाग या डरमेटोजेन (Dermatogen)

२ : मध्य भाग या पेरीब्लेम (Periblem)

३ : केन्द्रीय भाग या प्लेरोम (Plerome)

यही तीनों भाग कांड के उन सब भागों का निर्माण करते हैं जो हम ऊपर देख चुके हैं। इनका निर्माण क्रम इस प्रकार होता है। यथा :

१ : बाह्य भाग : इसके द्वारा बाहर की त्वचा तथा अन्य रोम आदि।

२ : मध्य भाग के द्वारा : परिधीय या कोरटेक्स का भाग बनता है जिसमें उपत्वचा व अंतस्त्वचा बनती है।

३ : केन्द्रीय भाग : इसके द्वारा रसवाहिनी समूह तथा मज्जीय भाग या पिथ की रचना सम्मिलित होती है।

इस प्रकार की रचना कांड में उन पौधों में दिखाई देती है जो कि थोड़े समय तक जीवित रहते हैं। या जिनका कांड प्रारंभिक अवस्था में होता है। साधारण द्विदलीय बड़े वृक्ष प्रारंभ में तो इस अवस्था में रहते हैं। किन्तु आयु के साथ-साथ उनका शरीर वृद्धि करता रहता है। और उनका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। इस प्रकार इन बड़े शरीर वाले वृक्षों में आहार व औषध संगृहीत होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वड़े वृक्षों में यह वृद्धि किस प्रकार होती है, वृक्ष किस प्रकार वढ़ते हैं इस विषय के एकदलीय व द्विदलीय उद्भिदों में पर्याप्त अंतर रहा करता है। पहले कहा जा चुका है कि इन पौधों में नई रचना का निर्माण करनेवाली धातु कैम्बियम होती है। इस धातु के द्वारा जो वृद्धि पौधों में होती है वह द्वितीया वृद्धि कहलाती है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि द्वितीया वृद्धि से नये कोषाओं का निर्माण तंतु व अंगों के निर्माण से मतलब है जिससे वृक्ष लम्बाई, चौड़ाई व मोटाई में वढ़ता है।

द्वितीया वृद्धि क्रम (Process of the secondary growth)

द्विदलीय पौधों में रसवाहिनी समूहों के वीच केन्द्रियम नामक विभजनशील धातुओं कोषाओं की धातु होती है। इस अवस्था में इनको वर्द्धनशील भाग या फैसीक्यूलर कैम्बियम (Fascicular cambium) कहते हैं।

वृद्धि का क्रम केन्द्रिय धातु की वृद्धि से ही होता है। समूह के दोनों ओर की कैम्बियम कोषायें मध्यवर्ती रश्मियों की ओर बढ़ती हैं। और धीरे-धीरे वढ़ कर एक दूसरे से मिल कर एक वृत्ताकार रचना (Cambium ring) बनाती हैं। इस प्रकार से मध्यवर्ती रश्मियों का स्थान जहां पहले कैम्बियम धातु नहीं थी वहां-वहां भी यह हो जाती हैं। इसको अंतःधातु निर्माणकर कैम्वियम (Interfascicular cambium) कहते हैं। इस प्रकार की रचना हम पुराने वृक्षों में देख पाते हैं।

इस प्रकार की रचना के बाद अब नई धातुओं का बनना प्रारम्भ हो जाता है। केन्द्र के भीतर की ओर की कोषायें ज़ाइलम धातु का निर्माण करती हैं। और वाहर परिधि की ओर की कोषायें मृदु धातु फ्लोयम का निर्माण करती हैं। इस प्रकार अंदर की ओर नया ज़ाइलम (Secondary xylem) और भीतर की ओर नया फ्लोयम (Secondary Phloem) वन जाता है। यही क्रम बना रहता है और कांड की मोटाई बढ़ती रहती है। यही क्रम लगा रहता है।

यदि किसी कांड की कैम्बियम वृत्त की प्रारंभिक स्थिति को ध्यान में रखते हुये बाद में इस कैम्बियम वृत्त को देखें तो यह वृत्त बड़ा और वाहर को हटा हुआ प्रतीत होगा। प्रारंभिक जाइलम के धातुओं से यह दूर हटा हुआ होता है। क्योंकि वीच-वीच में नये ज़ाइलम के तंतु का निर्माण हो चुका होता है और इस प्रकार प्रारंभिक जाइलम तथा प्रारंभिक फ्लोयम एक दूसरे से बहुत पृथक दूर हो जाते हैं।

जाइलम की कोषायें कड़ी व मजबूत दीवार की होती हैं। फ्लोयम् की

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दीवार कोषाभित्ति पतली व मृदु होती है। इसका परिणाम यह होता है कि ज़ाइलम के सूत्र बढ़ कर अधिक से अधिक स्थान घेर लेते हैं। और फ्लोयम धातु बढ़ते रहने पर भी बाहर व अन्दर के दबाव के कारण पिच सी जाती है और उसका एक वृत्त ही चारों ओर दिखाई पड़ता है।

इन दो धातुओं के प्रधान रूप से निर्माण करने के साथ ही कैम्बियम की कोषायें मध्यवर्ति रश्मि के स्थान पर कुछ साधारण पतली भित्ति वाले पैरेंकाइ-मेटस कोषाओं की भी निर्माण करती रहती हैं। जिससे कि इन मध्यवर्त्ति रश्मि-वत् रेखाओं का निर्माण का भाग द्वितीया वृद्धि के बाद भी बना रहता है। इन स्थानों पर बनी रश्मियों को भी अन्य नवनिर्मित धातुओं के समान द्वितीय मज्ज रश्मि रेखा के नाम से पुकारते हैं। कैम्बियम कोषाओं के विभाजन में क्रिया-रूप में एक विशेषता यह होती है कि जाड़ों क मौसम में इनकी क्रिया बन्द हो जाती है या बहुत धीमी हो जाती है। किन्तु वसंत के मौसम में इनकी क्रिया पुनः तीव्रतम हो जाती है। उसका परिणाम यह होता है कि नवोदित जाइलम के भाग में एक प्रत्यक्ष वृत्त अलग मालूम पड़ने लगता है। क्योंकि विभजन की क्रियाशीलता के समय अच्छी व बड़ी कोषाओं का निर्माण होता है। और विभजन की निष्क्रियता के समय पर या तो नये कोषा बनते ही नहीं या छोटे-छोटे बनते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में इस कड़े काष्ठ भाग में एक चक्र तैयार हो जाता है। बड़े और पुराने वृक्षों की आयु का पता इन्हीं वार्षिक वृत्तों को गिनकर लगाया जाता है। जो काण्ड के काष्ठ भाग पर प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

कभी-कभी पुराने वृक्षों के काष्ठ भाग में दो स्पष्ट क्षेत्र दृष्टिगोचर होते हैं। काष्ठ के मध्य भाग की जाइलम कोषायें अपने साधारण रूप का त्याग कर अपने में भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों यथा टैनिन व क्षारोदों का संकलन कर लेते हैं। इनका वर्ण गहरा हो जाता है। और इस हिस्से की कोषायें कठिन व ठोस सी हो जाती हैं। इस केन्द्रिय भाग के क्षेत्र को उसका सार भाग या हार्ड बुड या डुरामेन (Heart wood or Duramen) कहते हैं। बाहर का भाग साधारण रस संचार के काम में रत रहता है। और उसे मृदु काष्ठ या सैपवुड या अल-बरनम (Sapwood or Alburnum) कहते हैं।

त्वचा के बाह्य व आभ्यन्तर भाग की उत्पत्ति
(Formation of cork & Bark)

इस प्रकार जब भीतर वृद्धि होती है तो बाहर के हिस्सों पर अर्थात् त्वचा के बाह्य व आभ्यन्तर भाग पर पर्याप्त दबाव पड़ता है। परिणाम यह होता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है कि बाहर की त्वचा फट जाती है। इस कमी की पूर्ति के लिए बाह्य त्वचा पर एक नयी विभजनशील कोषाओं की उत्पत्ति होती है। यह वृत्ताकार रचना होती है। जिसे द्वितीय विभाजक स्तर या सेकेण्डरी कार्क कैम्बियम (Secondary corkcambium) कहते हैं। यह वृत्त कोरटेक्स के बाहरी हिस्से में उत्पन्न होता है। इन कोषाओं के विभाजन से बाहर त्वचा की ओर नये कोषाओं का निर्माण होता है। यह नयी कोषायें विशिष्ट पदार्थ युक्त होती हैं। और इनको ही कार्क की संज्ञा दी जाती है। इस नये उत्पन्न तन्तु को पेरी डर्म[1] भी कहा जाता है। क्योंकि यह फटी हुई त्वचा की पूर्ति करती है इस तन्तु की बनावट ऐसी होती है कि इसको पार करके जलीय पदार्थ बाहर नहीं जा पाता। परिणाम स्वरूप जो त्वचा इसके क्षेत्र से बाहर की ओर होती है वह मृत हो जाती है। और वृक्ष की पहली त्वचा छूटकर अलग हो जाती है अथवा फट जाती है व नीरस हो जाती है।

इसी नयी त्वचा के द्वारा अन्दर की ओर भी साधारण पतली दीवार वाले कोषाओं की पैरेंकाइमेटस[2] कोषाओं का निर्माण होता है। इस प्रकार त्वचा के बाह्य भाग में नयी वृद्धि होती है। इस प्रकार नये उत्पन्न होने वाले भाग को नवबाह्य त्वगीय भाग या सेकेण्डरी[3] कोरटेक्स कहते हैं। इसका दूसरा नाम फेलो डर्म[4] भी है। वृक्षों के प्रारम्भिक वर्षों में ऐसा होता है कि यह फेलोडर्म का भाग न बने या अल्प मात्रा में बने।

त्वक् की निर्मिति

त्वक् बाह्य त्वचा का वह भाग है जो कि कार्क कैम्बियम के बाहर स्थित हो व मृतप्राय हो। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि पहली त्वचा कौन सी होती है। किसी-किसी वृक्ष में पहली त्वचा ही जीवनपर्यन्त उसके ऊपर चिपकी रहती है। कुछ वृक्षों में द्वितीयक कार्क भी मृत हो जाता है। और त्वक् के रूप में चिपका रहता है किन्तु अधिकांश वृक्षों में प्रथम कार्क कैम्बियम ही मृत हो जाता है। और इसके स्थान में अर्थात् कोरटेक्स के गहरे स्थान पर नयी त्वचा की उत्पत्ति होती है जब यह दूसरा विभजनशील भाग[5] कार्क कैम्बियम बन जाता है तो उसके द्वारा नये कार्क तन्तु का निर्माण हो जाता है और परिणाम यह होता है

1. Periderm
2. Parechymatous cells
3. Secondary cortex
4. Phe!loderm
5. Secondary corkcambium

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कि इस नये कार्क तन्तु के बाहर की ओर के भाग को जलीय पोषक अंश मिलना कम हो जाता है और बाहर का सब भाग मृत होकर छाल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह दूसरी बार का बना भाग मृदु धातु फ्लोयम के समीप ही उत्पन्न होता है अतः पुराने वृक्षों में कठोर काष्ठ के ऊपर मृदु तन्तु की परतें फिर नया कार्क तन्तु और उसके ऊपर का मृतप्राय मोटा भाग दिखाई देता है। कुछ पौधों में यह त्वक् पूर्ण गोलाई में एक सी होती है। इसे मुद्रिकाकार त्वक् या रिंग बार्क[1] कहते हैं। हरे छोटे तने की त्वचा में श्वास आदि की क्रिया के लिये सूक्ष्म छिद्र होते हैं। जब वृक्ष पुराना और कार्क तन्तुयुक्त हो जाता है तब कार्क भाग में कहीं-कहीं कोषायें ढीली हो जाती हैं और वायु आदि के आवागमन में सहायक होती हैं। यह स्थान पुराने वृक्षों में देखने में आते हैं और इनका नाम लेंटीसेल[2] होता है और यह श्वास-प्रश्वास का कार्य करती हैं।

एकदलीय काण्ड की आन्तरिक रचना
(Internal structure of monocot stems)

द्विदलीय वाले काण्डों की रचना से. एकदलीय काण्ड की रचना भिन्न-भिन्न होती है सबसे प्रधान भेद जो दिखाई देता है इस प्रकार के काण्डों में रसवाहिनी समूह के तन्तु कारटेक्स के अन्दर अनियमित रूप में फैले रहते हैं। और अन्दर में केन्द्र तक फैले रहते हैं। अतः पिथ का भाग स्पष्ट नहीं होता। दूसरा भेद यह है कि इसमें कैम्बियम धातु नहीं होती अतः इस प्रकार के तनों में द्वितीया वृद्धि नहीं होती। और उनके काण्डों की मोटाई अधिक नहीं होती। इसमें रसवाहिनी समूह का केन्द्रिय भाग जो नोकदार होता है। सदा केन्द्र की तरफ होता है। और मृदु तन्तु फ्लोयम के कोषा जाईलम के कोषा के बीच में ऊपर की ओर रहते हैं। अतः इनकी नियमित वृद्धि का कोई क्रम नहीं होता। तीसरा भेद पेरी साइकिल का चक्र विशेषतया पूर्ण व स्पष्ट होता है। इस चक्र की कोषायें लिग्निन युक्त स्क्लैनेकाइमा की बनी होती हैं। और काण्ड को विशेष मजबूत बनाती हैं। इसे कोई-कोई धारक तन्तु भी कहते हैं। इन तीन प्रधान भेदों के कारण ही एकदलीय व द्विदलीय काण्डों की रचना में अन्तर किया जाता है।

शखाग्र शुंग की रचना (Stucture of Apical bud)

शीर्ष कली में प्रायः वृद्धि का क्रम लगभग उसी प्रकार होता है जैसा कि हमने द्विदलीय पौधा में देखा है। इसी कारण एकदलीय पौधे प्रायः लम्बे और

1. Ring bark 2, Lenti cells.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पतले होते हैं। शीर्ष स्थान पर की रचना द्विदलीय की ही भाँति होती है। और उसी प्रकार धातु का निर्माण करती हैं।

एकदलीय वर्ग में एक उद्भिद ऐसे भी होते हैं जिनमें कि द्वितीया वृद्धि भी होती है किन्तु यह अपवाद रूप ही मानना चाहिये।

शाखायें

शाखा परिभाषा : कांड से निकलने वाली पतली व मोटी डालियों को शाखा कहते हैं।

पव : कांड में जहाँ से पत्तियाँ या शाखायें निकलती हैं उनके दो उद्गम के स्थान को पर्व या परुस कहते हैं। इंगलिश में इण्टर नोडस् (Inter nodes) कहलाते हैं।

ग्रंथि : कांड से पत्र या शाखा के उदगम के स्थान को जो चारों तरफ उभरा हुआ हो और कठिन हो उसे ग्रंथि या नोड्स (Nodes) कहते हैं। यथा : इक्षु, वंश, नरसल इत्यादि। मोटे वृक्षों में यह ग्रंथि त्वचावृत होने से दिखाई नहीं पड़ती।

पत्रकोण : कांड व पत्र से बने कोण को पत्रकोण या एक्जिल्स (Axils) कहते हैं।

अक्षि[1] : पत्रकोण के बीच बीच के भाग को जो कांड पर होते हैं उन्हें अक्षि, आँख, पर्ण-कलिका या वड (Bud) कहते हैं। यह पर्व व ग्रंथियों पर के दबे हुये अंश होते हैं। जहाँ से नये अंकुर निकलते हैं। यह काण्ड, शिरा, पत्रकोण, मूल व पत्रादि से नये पौधे उत्पन्न करने वाले अंकुर होते हैं। इसमें पर्वग्रंथि व पत्र एकत्र हो कर रहते हैं। इनके प्रधान भेद निम्न होते हैं। यथा :

शुंग या प्रान्तांकुर (Terminal buds) : काण्ड या शाखा के अग्र भाग पर जो अक्षियाँ होती हैं उन्हें शुङ्ग या टरमिनल बड कहते हैं। यथा : वट, पीपल, प्लक्ष आदि।

पत्रकोणोद्भव : जो पत्रकोण से निकलती हैं उन्हें पत्रकोणोद्भव कहते हैं। या आक्जिलरी बड (Oxillary bud)।

---

१. अक्षीणि : पर्वसंधिषु प्ररोहजनन समर्थाः अंकुराः। सु० सू० अ० ४५।१५६।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अनियमिताक्षि : जिनके निकलने का स्थान निश्चित नहीं होता। यह कई प्रकार की होती हैं। अनियमिताक्षि को एडवेंटिशश बड् (Adventitous buds) कहते हैं।

१ स्कन्धोद्भव : जो स्कन्ध के ऊपर होता है। यथा : बट व पीपल।

२ काण्डोद्भव : काण्ड से कटे हुये भाग के समीप रोपण के बाद जो उत्पन्न होती है। यथा : शोभांजन, प्लक्ष, पीपल आदि।

३ : मूलोद्भव : किसी उद्भिद के मूल से जो अक्षियाँ उत्पन्न होती हैं। यथा : कपित्थ।

४ पत्रोद्भव : पत्र के किनारे या पत्र कें दन्तुर भागों के बीच जो अक्षि होती हैं। यथा : पत्थरचूर।

५ अतिरिक्ताक्षि : कुछ पेड़ों के पत्रकोणादि के अतिरिक्त अंश में जो अक्षि होती हैं इन्हें अतिरिक्ताक्षि (Accessory buds) कहते हैं।

६ मांसल अक्षि : पुत्रिकायें जो पत्र.कोण से निकलती हैं किन्तु जनक पौधे से पृथक् होकर नया पौधा बनाती हैं यथा : रसोन, सुरंजान, शूरण। इन्हें मांसल अक्षि (Bulbil) कहते हैं।

यह अक्षि दो प्रकार की होती हैं १ : आच्छादित अक्षि (Scaly Buds)
२ : नग्न अक्षि (Naked bud)

आच्छादित अक्षि : यह पत्र द्वारा या पत्रावशेष शल्क (Scales) द्वारा आवृत रहती हैं।

नग्नाक्षि : यह आवृत नहीं होतीं और स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं।

शाखा-क्रम या ब्राञ्चिङ्ग (Branching)

परिभाषा : काण्ड के ऊपर के शाखा-क्रम की उत्पत्ति-क्रम को शाखा-क्रम कहते हैं।

इसके मुख्य दो प्रकार हैं।
१ : परिपार्श्विक या लैटेरल (Lateral)
२ : उभय पार्श्विक (Dicholomose)

परिपार्श्विक या पार्श्विक : मुख्य काण्ड से जब शाखायें व प्रशाखायें

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एक पार्श्व से निकलती हैं तो उन्हें पार्श्विक कहते हैं। इसके भी दो भेद होते हैं। यथा :

१ : अपरिमित या रेसिमोस (Racemose)

२ : परिमित : या साईमोस (Cymose)

अपरिमित : इस प्रकार की शाखायें काण्ड के चारों ओर निकलती हैं। नीचे की शाखायें मोटी और ऊपर की छोटी होती हैं। और अन्त तक निकलती हैं। इन क्रमोंको एकपादी पादप कहते हैं। या मोनोपोडियल (Monopodial)। क्योंकि काण्ड का रूप इनमें प्रारम्भ से अंत तक होता है। यथा : देवदारु, चीड़, अशोक इत्यादि।

परिमित शाखाक्रम : इनमें मुख्य काण्ड का विकाश तो ठीक होता है किन्तु अंत तक न हो कर कुछ दूर के बाद जाकर विभक्त हो जाता है। और प्रधान शाखाओं का रूप धारण करता है। और उससे शाखायें निकल कर बहुत सी शाखायें देकर घनघोर छाया का रूप बना देते हैं। इसके प्रधान-भेद निम्न हैं : यथा :

१ : एकशाखोद्भेद या यूनीपेरस (Uniperous) : जिन काण्डों में एक ही शाखा मोटी व प्रधान होती है। और दूसरी छोटी व पहले की अपेक्षा पतली होती है। इसके भी दो भेद होते हैं : यथा :

१ : एकभुजी (Helicoid)

२ : वृश्चिकपुच्छी (Scorpioids)

२ द्विशाखोद्भेद : या बाई पेरस : जिसमें काण्ड से दो शाखायें दो दिशा में दो दिशाओं से समान रूप से निकलती हैं। इन्हें द्विशाखोद्भेद (Biperous) कहते हैं।

३ अनेकशाखोद्भेद : या मल्टी पेरस ब्रांचिग (Multiperous branching) :

जिनमें काण्ड के अग्र भाग में कई शाखायें निकल कर विभक्त होती हैं।

उभयपार्श्विक या डाई कोटोमस ब्रांचिग (Di cholomous branchings)

जिनकी अन्तिम काण्ड की विभक्ति दो भागों में होती है और उसमें से प्रत्येक के पुनः दो भाग हो जाते हैं। उन्हें उभयपार्श्विक या द्विपार्श्विक शाखोद्भेद कहते हैं।

संक्षेप में शाखाक्रम निम्न होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शाखाक्रम

- परिपार्श्विक
  - अपरिमित
  - परिमित
    - एकशाखाद्भेद
      - एकभुजी (Helecoid)
      - वृश्चिकभुजी (Scorpioid)
    - द्विशाखोद्भेद
    - अनेकशाखी
- उभयपार्श्विक
  - सत्यशाखी
  - एकद्विशाखी
    - एकभुजी
    - वृश्चिकभुजी

पत्र या लीव्स (Leaves)

पर्याय : पत्र व पर्ण

परिभाषा : जो स्वयं हरा भरा होकर उद्भिद का पालन करता है उसे पत्र कहते हैं। जो पैदा होकर पतित होता है या गिर जाता है उसे भी पत्र कहते हैं। जो पेड़ या पौधा का पालन करता है उसे भी पत्र कहते हैं।

ऊपर की तीन प्रकार की व्युत्पत्ति पत्र की क्रियाओं पर प्रकाश डालती हैं। यह सर्वविदित बात है कि पत्र प्रकाश की सहायता से वृक्ष के लिए खाद्य की तैयारी करता है। श्वास-प्रश्वास के रूप में विशुद्ध वायु लेना और अविशुद्ध वायु का त्याग करना यह पत्र का कार्य है इसके द्वारा यह पत्र में जीवनी शक्ति का सञ्चार करता है। यह मूल द्वारा शोषित अधिक जल को पत्रों की क्रिया से निकाल कर उसकी रक्षा करता है और उसकी रक्षा करता है व हरा-भरा रखता है। अतः इस रूप में पत्र का अर्थ ठीक ही ज्ञात होता है।

आधुनिक मत से पत्र के कई भेद हैं। यथा :

१ : बीजपत्र (Seed leaves)
२ : वास्तविकपत्र (Foliage)
३ : वल्कपत्र (Scale leaves)
४ : उपपत्र (Stipules)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५ : पुष्पच्छद (Bracts)
६ : सबीजकपत्र (Sporophylls)

बीज पत्र : रोपण करने पर बीजों में सर्वप्रथम पत्र के रूप में कहीं एक, कहीं दो जो पत्र निकलते हैं उन्हें बीजपत्र कहते हैं।

वास्तविक पत्र : उद्भिजों में जो बीज पत्र के बाद हरित वर्ण के पत्र निकलते हैं उन्हें पर्ण-पत्र लीव्स या फोलिएज कहते हैं।

वल्कपत्र या स्केल लीव्स : (Scale leaves)

जब पत्र के ऊपर क्रमशः पत्र होते हैं और गिरने पर भी अवशिष्ट भाग रह जाते हैं उन्हें वल्क पत्र कहते हैं। यह पौत्तिक काण्ड अथवा अक्षि पर पाये जाते हैं। इनमें वृन्त नहीं होते या वृन्त आवृत पत्र के रूप में होता है।

उपपत्र : या स्टिप्यूल्स (Stipules)

जब पर्ण वृन्त के मूल से दोनों ओर छोटे-छोटे पत्र निकलते हैं और उनकी आकृति शरपुंख की तरह होती है तो उन्हें उपपत्र या स्टीप्यूल कहते हैं। यह

१२ पत्रधार

चित्र १२

चित्र १३

चित्र १४

प्रायः कली को ढक कर इसकी रक्षा करते हैं। ये पत्र किसी में स्पष्ट किसी में अस्पष्ट होते हैं और कई प्रकार के होते हैं। जैसे ऊपर चित्र में निर्दिष्ट हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्पच्छद : या ब्रैक्ट्स। (Bracts)

पुष्पवृन्त के तल भाग से या पुष्प की पंखड़ियों के नीचे प्रायः हरे रंग के पत्र होते हैं। ये कलिकावस्था में पुष्प को आच्छादित रखते हैं। इन्हें पुष्पच्छद कहते हैं।

सबीजक पत्र : या स्पोरोफिल्स : (Sporophylls)

इन पत्तियों में अलैङ्गिक सन्तानोत्पत्ति के निमित्त बीजक होते हैं। जैसे हंसराज आदि।

पत्र :

पत्र के प्रविभाग : पत्र के प्रायः तीन प्रधान भेद होते हैं :

१ : पर्णतल २ : पर्णवृन्त ३ : पर्णफलक

पत्रप्रविभाग

चित्र १५

पर्णतल : (Base of leaves)

पत्र का वह भाग जो काण्ड, शाखा या ग्रन्थि इत्यादि के साथ लिपटा रहता है उसे पर्णतल कहते हैं. कुछ पत्र ऐसे होते हैं जिनमें वृन्त नहीं होता। वे पत्र के मूल भाग से काण्ड पर सटे रहते हैं। उन्हें काण्डासक्त पत्र या सीथ कहते

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हैं। इनका पर्णतल काण्ड पर फैला होता है। यथा : पलाण्डु, इक्षु यह पूरे काण्ड को एक या अधिक बार आवरित किये रहते हैं। इसे परिवेष्टक या परफोलिएट (perfoliat) या सीथ या लीफ बाक्स कहते हैं।

पर्णवृन्त या पिटियोल या लीफ स्टाक : (Petiole or leaf stalk)

पर्णतल के ऊपर या फलक के नीचे के भाग को पर्णवृन्त, डण्ठल या भेंटी या पिटिओल कहते हैं। जिन पत्रों में वृन्त रहता है वह सवृन्त या पिटियोलेट तथा जिनमें वृन्त नहीं होता उन्हें अवृन्त या सेसाइल (Sessile) कहते हैं।

पर्णवृन्त प्रायः फलक मूल भाग से लगे रहते हैं। किन्तु कुछ वृन्त पत्र के मध्य में उसके पृष्ठ भाग से लगे रहते हैं। उन्हें पत्र मध्य लग्न या पेल्टेट

मध्यलग्नवृन्तव जालिनी क्रम

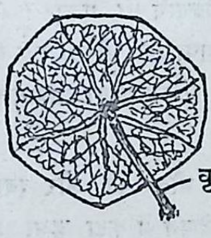

चित्र १६—पद्मिनी पत्राकार (Peltate)

(Peltate) कहते हैं। यथा एरण्ड या कमल के पर्णवृन्त प्रायः गोल, नीचे से संकीर्ण और ऊपर चौड़े होते हैं। जल में रहने वालो में यह वृन्त फूले हुये रहते हैं। इनके भीतर छिद्र होते हैं। जो वायुपूर्ण होते हैं। जिनके सहारे पौधे तैरते रहते हैं। यथा : जलकुम्भी। इनको स्फीत पर्णवृन्त या स्वोलेन (Swollen) कहते हैं।

पर्णफलक : वृन्त के आगे पत्र के चौड़े भाग को फलक लैमिना (Lamina) या लीफ ब्लेड कहते हैं। फलक के मध्य में जो-जो रेखा या शिरा होती है उससे इसके दो भाग हो जाते हैं। यह दोनों पार्श्व कहलाते हैं। पत्राकार की लम्बाई-चौड़ाई पूरे पत्र की लम्बाई-चौड़ाई कहलाती है। यह पत्रफलक पौधों के प्रधान अंग हैं। यह पौधों के लिये खाद्य तैयार करता है। तथा श्वसन व जलत्याग का काम करता है।

पत्रपृष्ठ : पत्र में दो पृष्ठ होते हैं। जो ऊपर की तरफ होता है उसे ऊर्ध्व-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पृष्ठ या अपर सरफेस (Upper surface) तथा नीचे के भाग को अधर पृष्ठ या पत्रोदर या लोअर सरफेस (Lower surface) कहते हैं।

पत्रपृष्ठ जब चमकदार हो या चिकना हो तो इसे भासुर मसृण या ग्लैवरस (Glabrous) कहते हैं। रोयेंदार हो तो लोमस या प्यूबेसेन्ट (Pubescent) और कड़े रोम से व्याप्त हो तो कर्कश, खर या हिसपिड (Hispid) कहते हैं। काँटेदार हो तो कंटकी या स्पाइनस (Spinus) कहते हैं।

फलकमूल : जहाँ फलकमूल से जुड़ा रहता है और जहाँ से किनारे प्रारम्भ होते हैं उस स्थान को पत्रमूल या फलकमूल या लेमिना बेस (Lamina base) कहते हैं।

पत्राग्र : पत्र के अन्त में जहाँ पर दोनों पार्श्व मिलते हैं तथा मध्य शिरा समाप्त होती है उस भाग को पत्राग्र या एपेक्श (Apex) आफ दी लीफ कहते हैं। यदि यह नोकीला हो तो तीक्ष्णाग्र या एक्यूट (Acute) और यदि लम्बा हो और क्रमशः पतला होता गया हो तो लम्बाग्र या एक्यूमिनेट (Acuminate) और नोकदार न हो तो कुण्ठिताग्र या औब्ट्यूज़ (Obtuse) कहते हैं।

पत्राग्र :

यदि पत्राग्र मध्य शिरा पर भीतर की ओर दबा हो तो उसे नताग्र या इमार्जिनेट[1] कहते हैं। यदि यह देखने में कटा हुआ ज्ञात हो तो उसे छिन्नाग्र या[2] ट्रूकेट कहते हैं।

पत्रधार : पत्र के उभय पार्श्व में जो दो किनारे होते हैं उन्हें धारा, धार या मार्जिन कहते हैं। यह कई प्रकार का होता है। यथा :

१ अखण्ड धारा वाले : यदि पत्रधार कहीं कटा न हो, लगातार आदि से अन्त तक चला जाता हो तो उसे अखण्ड या इण्टायर[3] कहते हैं।

२ तरङ्गायित या लहरदार : जब पत्रधार अखण्ड हो परन्तु लहर की तरह ऊपर-नीचे होता हुआ दिखाई देता हो तो उसे लहरदार कहते हैं।

३ दन्तुर : जब धारा आरी की तरह अनीदार हो और छोटे-छोटे दाँत जैसे दिखाई पड़ते हों तो उन्हें दन्तुर या सेरेट[4] कहते हैं।

४ कुण्ठित दन्तुर : जब धार के दाँत तीक्ष्ण न हो करके कुण्ठित होते हैं तो उन्हें कुण्ठित दन्तुर या क्रेनेट[5] कहते हैं।

५ पत्रशिरा : पत्र के पोषणार्थ जो शिरायें रसवाहिनीका की नलिकाकार

---

१. Emarginate. २. Trucate. ३. Entire.
४. Serrate. ५. Crenate.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

फैली हुई होती हैं इन्हें पत्रशिरा कहते हैं। यह शिरायें पत्र के आकार को स्थिर रखती हैं। और कई प्रकार से इनकी रचना होती है। यथा :

१ मध्य शिरा या माढि : पत्र के बीच से होकर अन्त तक जो शिरा जाती है इसे मध्य शिरा कहते हैं। इस पर शिराओं का जाल विभिन्न क्रम में वना होता है। इसको शिरा-रचना कहते हैं।

१ जालिनी : जिसमें मध्य शिरा से छोटी-छोटी शिरायें निकल करके शाखा-प्रशाखा देकर जो जाल सी वना देती हैं। उस रचना को जालिनी रचना कहते हैं। इसके दो प्रधान भेद हैं। (चित्र १६ देखिये)

यथा १ : पक्षाकार २ : करतलाकार

पक्षाकार : इस रचना में मुख्य शिरा एक ही होती है। उससे शाखायें व प्रशाखायें मिल कर पक्ष की तरह फैल जाती हैं उन्हें पत्राकार या यूनी का स्टेट कहते हैं।

पक्षाकार (Unīcōstate; parellel)
चित्र १७

समानान्तर शिराविन्यास
चित्र १८

करतलाकार : इस रचना में पत्रमूल से कई बड़ी बड़ी शिरायें निकलती हैं। और ऊपर की ओर फैल जाती हैं। इसके भी दो प्रधान क्रम हैं। प्रथम में वृन्ताग्र से कई बड़ी बड़ी शिरायें निकल कर ऊपर को जाती हैं और घूम कर आपस में मिल जाती हैं। यथा : बदरीपत्र। द्वितीया में वृंताग्र से कई बड़ी-बड़ी शिरायें निकलती हैं और ऊपर इस प्रकार फैलती हैं कि ऊपर की ओर प्रायः एक दूसरे से पृथक् रहती हैं यथा—एरंडपत्र शिरायें।

समानान्तर शिरा रचना : इस क्रम में मुख्य शिरायें व और उनसे

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

निकलने वाली शिरायें भी समानान्तर फैलती हैं। (यथाचित्र १८) इसके भी दो भेद हैं। यथा :

२ एकपार्श्विक : जब मध्य शिरा से दोनों ओर कई बड़ी-बड़ी शिरायें निकल कर एक दूसरे से समानान्तर फैल कर किनारों की तरफ जाती हैं तो उन्हें एकपार्श्विक कहते हैं।

यथा : केला के पत्र :

बहुपार्श्विक : इस रचना में पत्रमूल से कई बड़ी-बड़ी शिरायें निकल कर पत्र में एक दूसरे के समानान्तर निकलती हैं। इसके दो भेद हैं। यथा :

१ : जिसमें एक तरह की लम्बाई की कई शिरायें पत्राग्र पर मिलती हैं। यथा : बांस का पत्र।

२ : जिसमें पत्रमूल से शिरायें निकल कर पत्रधार की ओर बढ़ती हैं और क्रमशः एक दूसरे से दूर हो जाती हैं। यथा : ताल व खजूर के पत्र की शिरायें।

पत्राकृति : पत्रों की आकृति कई प्रकार की होती हैं इनके आकार के अनुसार संज्ञायें भिन्न भिन्न होती हैं। यथा :

१ सूचिकाकार : जो पत्र पतला नोकीला और सुई की आकृति बनाता है सूचिकाकार[1] कहलाता है। यथा : दूर्वा आदि। चित्र–१९

चित्र १९—सूचिकाकार

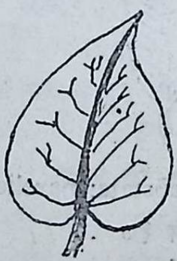

चित्र २०—हृदयाकार (Cordale)

२ हृदयाकार : जो पत्र प्रारम्भ में गोलाकार होकर आगे चल कर पतले हो जाते हैं और वृत्त रूप में संकीर्ण हो जाते हैं उन्हें हृदयाकृति या कोरडेट[2] कहते हैं। चित्र २०

१. Acicular.

२. Cordate.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३ वृक्काकार : जिसकी आकृति वृक्क की तरह हो उसे वृक्काकार या रेनी[1] फार्म कहते हैं। चित्र–२१

४ अंडाकृति : जो पत्र आकार में लम्ब-गोल हो उसे अंडाकृति कहते हैं। यथा जम्बू व गुलाब जामन के पत्र।

५ लंब-गोल : जिसका आकार लम्बाई लिये गोल हो उसे लम्बगोल[2] या आबलांग कहते हैं।

६ वर्तुल : जिसका आकार वृत्ताकृति हो उसे वर्तुल या अर्बीक्यूलर[3] कहते हैं।

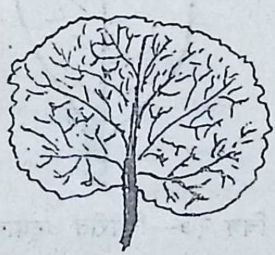

चित्र २१—वृक्काकार

चित्र २२—अण्डाकृति

चित्र २३—रेखाकृति

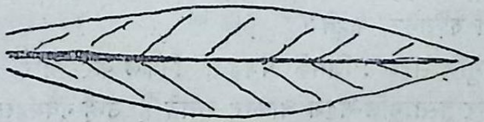

चित्र २४—भल्लाकृति

७ भल्लाकृति : जिसका आकार भाले की तरह हो उसे भल्लाकृति[4] कहते हैं।

८ रेखाकृति : जिसका आकार रेखावत् बहुत पतला हो। पत्रमूल से अंत तक एक समान हो उसे रेखाकृति[5] कहते हैं यह पतले लम्बे होते हैं।

---

१. Reniform. २. Oblong. ३. Orbicular.
४. Lanceolate. ५. Spatulate.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

९ दर्व्याकार : जो पत्रमूल से पतले निकल कर आगे चौड़े हो जाते हैं और आकार दर्वी का बनाते हैं उन्हें दर्व्याकार पत्र कहते हैं। यथा स्नुही व विकंकत के पत्र। चि० २५

१० लट्वाकार : जिस पत्र का आकार प्रारंभ में गोल, चौड़ा और आगे पतला हो जाय उसे लट्वाकार या ओवेट[1] कहते हैं। चि० २६

११ विपरीत लट्वाकार : जिनके पत्र प्रारंभ में संकीर्ण व आगे जाकर चौड़े हो जाते हैं उन्हें विपरीत लट्वाकार[2] कहते हैं। चि० २७

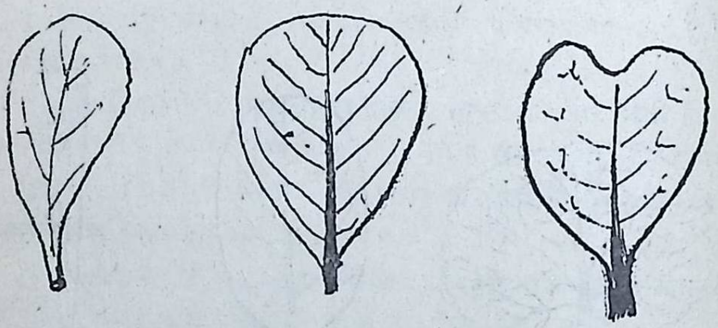

चित्र २५—दर्व्याकृति चित्र २६—लट्वाकार चित्र २७—विपरीत लट्वाकार

१२ विषमाकार : जिन पत्रों का आकार विषम होता है और धारियाँ असमान होती उन्हें विषमाकार या आवलिक कहते हैं।

१३ गोजिह्वाकार : जिस पत्र का आकार गाय की जीभ की तरह हो उसे गोजिह्वाकार या रुन्सिनेट[3] कहते।

१४ हस्तांगुलि सदृश : जिसके पत्रवृन्त निकल कर चार या पांच कोण में विभक्त हो कर हस्तांगुलि-सदृश आकार बनाते हैं उन्हें गंधर्वहस्त या हस्तांगुलि या डिजिटेट[4] कहते हैं। यथा : सेमल।

१५ पक्षिपदानुकारिपत्र : जिस पत्र का आकार पक्षी के पद की तरह अर्थात् एक पत्र में तीन भाग होकर पार्श्व के पत्र आरम्भ में मिले हुये और छोटे हों उसे पेडेट[5] या पक्षिपदानुकारि कहते हैं।

१६ त्रिपर्णी : जिसमें पत्र तीन हो उन्हें त्रिपर्णी या ट्राइफोलियेट[6] कहते हैं।

---

१. Ovate. २. Ovovate. ३. Runcinate.
४. Digitate. ५. Pedate. ६. Trifoliate.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

त्रिकोणाकार : जिस पत्र का आकार त्रिकोण के आकार का हो उसे त्रिकोणाकार या सैंजिटेट[१] कहते हैं। यथा—चि० २८-२९.

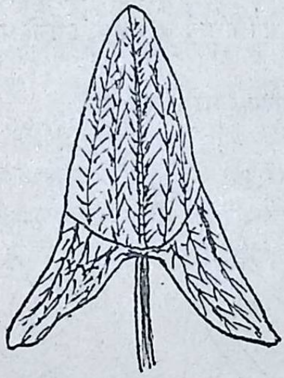

चित्र २८

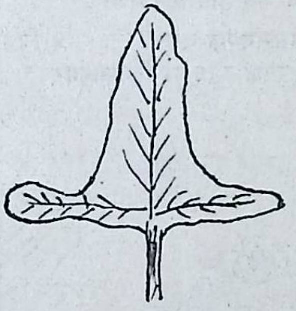

चित्र २९

कर्णपाल्याकार : जिस पत्र का आकार कर्णपाली की तरह हो उसे कर्णपाल्याकार या हेस्टेट[२] कहते हैं।

पर्णभेद : पत्रों के दो भेद होते हैं जो कि उसकी स्थिति के आधार पर किये गये हैं। यथा :

१ एकाकी पत्र या सामान्य पत्र[३]

२ सदल या संयुक्त पत्र या कम्पाउण्ड लीफ[४]

सामान्य पत्र : जिस पत्र की मध्य शिरा अन्त तक जाती है और विभक्त नहीं होती तथा पर्णफलक विभक्त नहीं होते और अन्त तक समान रूप में चले जाते हैं उसे एकाकी पत्र कहते हैं।

संयुक्त पत्र : जिस पत्र में पत्रफलक मध्य शिरा तक जाकर कई स्वतन्त्र दलों में विभक्त हो गया हो उसे संयुक्त पत्र कहते हैं। सदल पत्र में जो पत्र सदृश रेखाओं से विभक्त होते हैं उन्हें दल या लिफलेट[५] कहते हैं।

एकाकी व सदल पत्र में भेद :

१ एकाकी पर्ण के पर्ण कोण में अक्षि होती है।	१ सदल पत्र के किसी दल में अक्षि नहीं होती।
२ एकाकी पर्ण पुंखपत्र युक्त होते हैं।	२ सदल में पुंखपत्र नहीं होता।

---

१. Sagitate. २. Hastate. ३. Simple leaf.
४. Compound leaf. ५. Leaf late.

५ क्रि० औ०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सदल पत्र के दो भेद होते हैं। यथा :

१ पक्षाकार या पिन्नेट[1] २ करतलाकार या पामेट[2]

पक्षाकार सदल पत्र : जिस पर्ण में मध्य शिरा के दोनों ओर धारी या राचीज निकले हों उन्हें पक्षाकार पत्र कहते हैं। यथा : आरग्वध, इमली व बबूल। इसके तीन भेद होते हैं। यथा :

१ समसंख्यक दल २ विषमसंख्यक या विषम दल

३ उपपक्ष युक्त या द्विपक्षाकार

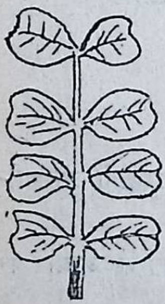

चित्र ३०

चित्र ३१

चित्र ३२

समदल या पेरी पिन्नेट[3] : जिस पत्र में मध्य दण्ड से सम संख्या के पत्र दोनों ओर निकलते हैं उसे समदल पत्र कहते हैं। यथा : अमलतास, कासमर्द। यथा चित्र नं० ३०

चित्र ३३

चित्र ३४

१. Pinnate. २. Palmate. ३. Paripinnate.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विषम दलपत्र : जिस पर्ण के मध्य दण्ड से दोनों ओर के पत्र संख्या में समदल के हों और अन्त में मध्य दण्ड के अग्र पर एक पत्र अधिक हो उसे विषमदल[1] कहते हैं। यथा : गुलाब, अपराजिता। यथा—चित्र ३१-३२-३३-३४

उपपक्षयुक्त दल[2] : जिस पत्र में मध्य दण्ड से कई छोटी शाखायें निकली हों और इन शाखाओं पर भी पत्र की तरह दोनों तरफ दल हों उन्हें उपपक्ष युक्त दल कहते हैं। यथा : गुलमोर, बबूल, लज्जावती के दल।

करतलाकार : जिस सदल पर्ण के वृंताग्र से दल इस प्रकार निकले हों कि उसका आकार करतल की तरह बनता हो तो उसे करतलाकार या पामेट[3] कहते हैं। इसके कई प्रकार हैं। यथा : चित्र ३४क ३५-३६क ३६ख।

चित्र ३४क

चित्र ३५

चित्र ३६क

चित्र ३६ख

१. Imparipinnate. २. Bipinnate.
३. Palmāte.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ शाखाग्र गत[१] : जो कि शाखावों के अग्र भाग से निकला करता है।

२ कक्षा गत[२] : जो कि पत्र के कोण से निकलता है।

पुष्प विन्यास के दो रूप हैं जो कि देखने में आते हैं। यथा :

१ अपरिमित : या अकुंठिताग्र : जब पुष्प अपने निकलने के क्रम में आगे जाकर कुंठित नहीं होता तब इसे अकुंठिताग्र या रेसिमोस[३] कहते हैं।

२ परिमित या कुंठिताग्र : जब पुष्प अपने दंड से निकल कर आगे जाता है और पुष्प दंड आगे जाकर मुड़ जाता है या झुक जाता है तो इसको कुंठिताग्र[४] कहते हैं।

इनके अतिरिक्त एक क्रम और होता है। इसको विशेष क्रम कह सकते हैं। इसमें निकलने का क्रम विशेष क्रम का होता है।

१ इसके क्रम को पुनः दो भागों में बाँटा जा सकता है। यथा :

अधरोत्तर क्रम में : जब कि पुष्प, प्रथम सबसे ऊपर फूलता है और शेष पुष्प क्रमशः उसके नीचे के भाग में शाखा प्रशाखा देकर फूलते हैं। यह क्रम अधरोत्तर[५] क्रम कहलाता है।

केन्द्रिय क्रम[६] : जब कि पुष्प नीचे से शाखावों पर खिलना प्रारंभ करता है और क्रमशः वह ऊपरी शाखावों पर फूलता जाता है। और अंतिम पुष्प अंत में ऊपर जाकर फूलता है। इसके भी तीन प्रमुख रूप दिखाई पड़ते हैं। यथा :

१ जब कि पुष्प की डंडी लंबी होती है।

२ जब कि पुष्प की डंडी छोटी होती है।

३ जब कि पुष्प की डंडी न बनकर वह चपटे या नतोदर के रूप में स्वरूप बनाता है। इनके क्रमों को निम्न रूप में विभागशः कह सकते हैं।

अपरिमत के कई भेद हैं, विशेष कर आठ भेद प्रमुख हैं। यथा, यह दो प्रमुख रूप में दिखाई पड़ते हैं :

१ एकाकी : जब पुष्प शाखाग्र से अकेले या एकाकी निकले, यह एकाकी या सोलिटरी[७] होता है।

२ समूह या कुसुम व्यूह : जब कि पुष्प एक स्थान से कई एक साथ निकलते हैं।

---

१. Terminal. २. Axillary ३. Racimose.
४ Cymose. ५. Acropetal sucsession.
६. Centripetal. ७. Solitary.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिमित के प्रधान आठ भेद हैं यथा :

१ कलंगी के रूप में[1] : जिसमें मुख्य पुष्प दंड पर लम्बा होता है और पुष्प उस पर किनारों से पुष्प लगते हैं। नीचे के पुष्प बड़े-बड़े होते हैं और लम्बे वृंत पर लगते हैं, ऊपर क्रमशः छोटे पुष्प लगते हैं। यथा : मूली, गाजर, राई, गुलमोहर आदि। पुष्प दंड के बड़े वृंत वाले भाग को पुष्प दंडक (पेडांकिल[2]) और छोटे पुष्पदंड को (पेडीकेल[3]) कहते हैं। यह संज्ञायें आधुनिक हैं। जिसमें पुष्प दंड छोटे और बहुत से पुष्पों से युक्त होते हैं और मोटे हो जाते हैं उन्हें पुष्पाधार या रेसेप्टेकल[4] कहते हैं। चि० ४०–४१

चित्र ४०—जपा पुष्प

चित्र ४१—संवृंत कांडज पुष्प

२ मंजरी[5] : पुष्प दंड पर जब पुष्पकलंगी की तरह ही लगे होते हैं परन्तु उनमें पुष्प दंड से शाखा निकल कर पुष्प नहीं लगे होते। पुष्प दण्ड पर ही लगे होते हैं। यथा : अडूसा का पुष्प। इसमें एक पुष्प दंड पर अनेक अवृंत पुष्प लगे होते हैं। चि० ४२

३ विदंडिक[6] या लघुपुष्प मंजरी : अल्प संख्यक फूलों से या एक फूल वाली मंजरियों से पुष्प दंड जब नन्हीं-नन्हीं दंडिकाओं से भरा रहता है और उनसे पुष्प पत्र निकलकर मंजरी का स्वरूप बनाते हैं और उनका रूप कलंगी की तरह बन जाता है तब उसको लघु मंजरी कहते हैं।

---

१. Raceme. २. Pedancle. ३. Pedecel.
४. Receptacle. ५. Spike. ६. Spikelets.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चित्र ४२—मंजरी

४ जटा[1] मंजरी : जब लम्बी लटकती हुई धारी वाली मंजरी जो केवल एक जातीय या लिंग के पुष्प धारण करती हैं उनको जटा मंजरी कहते हैं।

५ ताल मंजरी[2] : यह भी एक प्रकार की मंजरी ही है जब कि पुष्प धारण करने वाली मंजरी मोटी हो और बड़ी और मांसल हो और ताल जटा की तरह मंजरी बनाती हो। यथा : ओक या भूर्जं पत्र आदि।

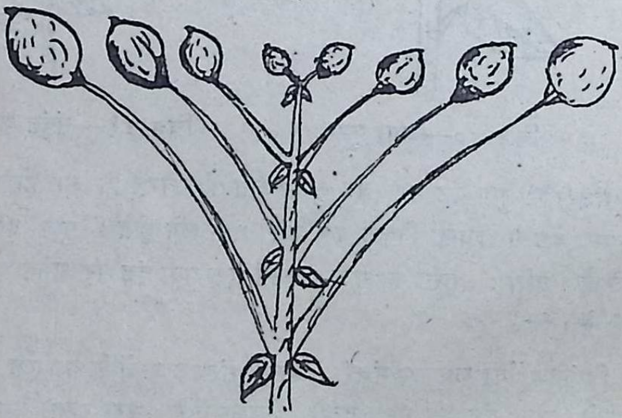

चित्र ४३—गुच्छ सवृंत (Dorpmle)

६ गुच्छ[3] : जिस पुष्पों का आकार गुच्छ की तरह होता है उन्हें गुच्छाकार कहते हैं। चि० ४३

१. Calkm. २. Spadix. ३. Corymbe.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

७ स्तवक[१] : जब वृंताग्र पर अनेक अवृंत पुष्प एक समूह में वृत्ताकार निकलते हैं तो उसको और चौड़ा स्वरूप बनाते हैं तो उन्हें स्तवक या अम्बेल कहते हैं। चि० ४४

८ पुष्प गुच्छ या कैपिचुलम[२] : जब पुष्प एक ही आधार पर कई छोटे-छोटे पुष्पों के समूह को जन्म देते हैं और उनका आकार एक ही स्थान पर गुच्छाकार बन जाता है तब उसको गुच्छ कहते हैं। जैसे : सूर्यमुखी का फूल। चि० ४५

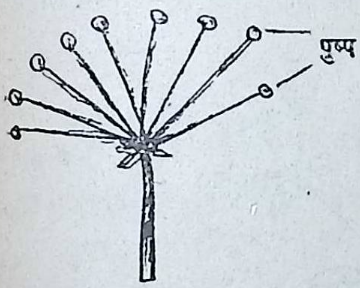

चित्र ४४—स्तवक

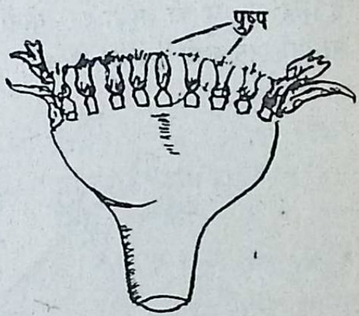

चित्र ४५—पुष्पगुच्छ (Capitulum)

परिमित पुष्प या कुंठिताग्र पुष्प व्यूह : परिभाषा में पहले बतला चुके हैं कि इसमें पुष्प व्यूह में निकल कर अंत में मंजरी नम्र या मुड़ जाती है। इसमें

चित्र ४६—एकपार्श्विक (Uniparous)

१. Umbel. २. Capitulum.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

माथे से पुष्प बैठने लगते हैं और क्रमशः नीचे तक आ जाते हैं। इसके भेद तीन होते हैं। यथा :

१ एक पार्श्विक[१] २ द्विपार्श्विक[२] ३ : बहुपार्श्विक[३]

एक पार्श्विक : जब पुष्प पुष्पदंड पर एक तरफ से आकर कुंठित हो जाता है, उसमें से शाखा पर पुष्प एक पार्श्व से निकलता है। चि० ४६

द्विपार्श्विक : जब पुष्प मुख्य पुष्प दंड पर मे निकल कर कुंठित हो जाता है और उस पर की शाखा पर दोनों पार्श्व से पुष्प निकलते हैं। इसे द्विभुजीय या बाईपेरस कहते हैं। चि० ४७

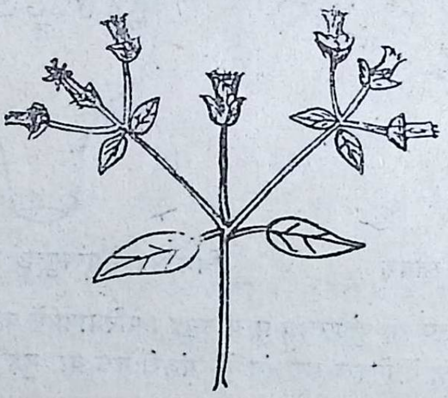

चित्र ४७—द्विपार्श्विक उभयतः पत्राक्षि से निकलने वाले पुष्प (Biparous)

बहुपार्श्विक : जब पुष्प प्रधान दंड पर लगता है और कुंठित होता है और शाखा पर विभिन्न स्थान पर से पुष्प निकलते हैं। यथा : आक का पुष्प।

विशेष प्रकार का पुष्प विन्यास : जब पुष्प किसी क्रम का अनुसरण न कर विशेष प्रकार से व्यूह रचना करता है।

१ चषकाकार[४] : जब पुष्प अपने वाह्य कोष पर अपना स्वरूप एक चषक या प्यालानुमा बनाता है। जब नर व स्त्री पुष्प भिन्न-भिन्न दंड पर बनाकर स्वरूप एक चषक की तरह बना देते हैं। स्त्री पुष्प बड़े-बड़े और पुंकेशर छोटे छोटे उर पर बन जाते हैं।

२ गुम्फित[५] : इसमें पुष्प अपना आकार एक गुच्छ में गुंफित कर बनाते हैं। यथाः तुलसी वर्ग के पुष्प। द्रोण पुष्प, कुवा या अन्य पुष्प। जब पत्र पुष्प के

१. Uniparous. २. Biparous. ३. Multiparous.
४. Cyathium. ५. Verticillaster.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

साथ-साथ आमने-सामने होते हैं और उनका आकार गुच्छ का रूप धारण करता है।

३ निगूढ़ पुष्प[१] : जिसमें पुष्प का आकार बाहर नहीं दिखाई पड़ता। यह पुष्पाधार पर इस प्रकार लगे होते हैं कि उनका मुख भीतर बन्द होता है बाहर से फल की तरह दिखाई पड़ता है। भीतर से यह खोखले होते हैं। भीतर तली में स्त्री पुष्प और ऊपर नर पुष्प होते हैं। इस प्रकार विभिन्न प्रकार से पुष्प अपना आकार बना करके पुष्प दंड पर स्थित होते हैं। यथा—उदुम्बर-वट।

पुष्प परिचय

उद्भिज्जो में एक बहुत बड़ी श्रेणी पुष्पों की है। पुष्पों का परिचय विशेष रूप में होने पर ही मनुष्य उसके विवरण को स्पष्ट लिख सकता है। अतः पुष्प की परिभाषा को यहाँ दिया जा रहा है।

पुष्प : पुष्प उद्भिज्ज का वह विशिष्ट अंग है जिसका वे अपनी संन्तानोत्पत्ति के लिये शाखा व पत्तियों को परिवर्तित रूप में लाकर के एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं। आज विज्ञान के युग में यह सिद्ध किया जा चुका है कि पुष्प शाखा व पत्तियों का परिवर्तित रूप है।

पुष्प की प्रधान जातियाँ : पुष्प की प्रधानतया दो जातियाँ होती हैं। यथा :

१ : आवृत पुष्पधारी (Angeosperms)

२ : नग्न पुष्पधारी (Gymnosperms)

आवृत पुष्पधारी : वह कहलाते हैं जिनमें स्त्रीलिंग व पुंलिंग अंग ढके हुये या आवृत होते हैं।

नग्न पुष्पधारी : वे हैं जिनके स्त्रीलिंग व पुंलिंग अंग खुले हुये या बिना ढके रहते हैं।

पुष्प के प्रधान अंग

एक पुष्प में साधारणतया निम्नलिखित अवयव पाये जाते हैं। यथा :

	चिन्ह
१ : वृंत या पुष्प वृंत (Pedicle)	(K)
२ : पुष्प वाह्य कोष या पुट चक्र (Calyx)	(C)
३ : आभ्यंतर दल चक्र (Corolla)	

१. निगूढ़ Aypanthodium.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४ : पुंलिग या पुं केशर या पुंलिग चक्र (Androecium) (A)
५ : स्त्रीलिंग या स्त्री केशर या स्त्रीलिंग चक्र (Gynoecium) (G)

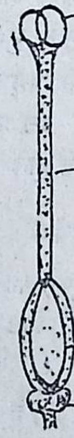

चित्र ४८—स्त्री केशर (Pistil)

इनमें से प्रथम तीन पुष्प के अनावश्यक अंग हैं और शेष दो आवश्यक अंग हैं।

वृंत : पुष्प की स्थिति प्रायः एक वृंत पर होती है। यदि पुष्प अंग एक वृंत पर हों तो उसे सवृंत या पेडीसिलेट (Pedecellate) कहते हैं। जब पुष्प पर वृंत न हो तो उसकी संज्ञा अवृंत या सेसाइल (Sessile) कहते हैं।

पुष्प दंड : जिस पुष्प वृंत पर अनेक दूसरे वृंत शाखा के रूप में निकलें और प्रत्येक शाखा वृंत पर से अनेक शाखा वृंत पर एक-एक पुष्प निकलें और कुसुमोच्चय बनावें तो उसे पुष्प स्तंभ या पुष्प दंड या राचिज़ (Rachis) कहते हैं।

वृंतक : पुष्प समूह में प्रत्येक पुष्प से नीचे जो शाखा होती है उसे वृंतक या पेडांकिल (Pedancle) कहते हैं क्योंकि वृंत को पेडीकिल कहते हैं।

पुष्प ध्वज : जो शाखा, वृंत रहित जो लंम्बा, पुष्प वृंतमूल से निकलता है उसके अग्र भाग पर पुष्प निकलें तो पुष्प ध्वज या स्केप कहते हैं। यथा : घृतकुमारी का।

पुष्पासन : पुष्प वृंत के आगे के भाग को जहाँ से पुष्प का उद्गम होता है उसे पुष्पासन या (Thalamus) थैलमस कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्पच्छद : पुष्प के नीचे पुष्प को आच्छादन करने वाले जो उपपत्राकार अंग पुष्प को ढककर रखता है उसे पुष्पच्छद या ब्रैक्ट[1] कहते हैं।

अत : यदि पुष्पच्छद के साथ में पुष्प हो तो उसे सपुष्पच्छद या ब्रैक्टियेट[2] कहते हैं। यदि पुष्पच्छद न हो तो उसे निःपुष्पच्छद पुष्प या एब्रैक्टियेट कहते हैं। पुष्पच्छद एक साधारण पत्र के समान या उससे मिलते-जुलते रूप में हो सकता है। यह प्रायः छोटे-छोटे पतले और एक छोटे पत्र के समान मालूम पड़ते हैं। कुछ पौधों में यह केवल सूक्ष्म दानों के ही रूप में होते हैं। यह वर्ण में प्रायः हरे रंग के होते हैं परन्तु कभी-कभी रंगीन दलपत्र की तरह भी मिलते हैं। तब इनकी संज्ञा दलपत्रीय पुष्पच्छद या पेटालोयड[3] ब्रेक्ट होती है। कभी-कभी पुष्पवृंत में भी इस प्रकार की रचना मिलती है। इनको लघु पुष्पच्छद या ब्रेक्टियोल्स[4] कहते हैं।

पूर्ण पुष्प : जिसमें पुष्प में वाह्यकोष, आभ्यंतरकोष, पुंकेशर व स्त्री केशर मिलते हैं उन्हें पूर्णपुष्प कहते हैं। किन्तु यदि इनमें से कोई भी अंग नहीं मिलते तो उन्हें अपूर्णपुष्प कहते हैं। जिस पुष्प में पुं केशर व स्त्री केशर के दोनों श्रंग होते हैं उनको उभय लिंगी या हरमाफ्रोडाइट[5] कहते हैं। जिन पुष्पों में इनमें से कोई एक अंग मिलते हैं उन्हें एक लिंगी या यूनी[3] सेक्सुअल कहते हैं। जिसमें पुं केशर हो तो उसे नरपुष्प व जिसमें स्त्री केशर के भाग हो उन्हें स्त्री पुष्प कहते हैं।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि एक ही पेड़ में कभी-कभी नर व मादा दोनों प्रकार के पुष्प लगते हैं और पृथक्-पृथक् लगते हैं तो उनको उभय लिंगीय या मोनोसियस[7] प्लांट कहते हैं और जिनमें नरपुष्प वाले व मादापुष्पवाले वृक्ष अलग-अलग होते हैं उन्हें एक लिंगी या डायोसियसप्लांट[8] कहते हैं।

आकार के अनुसार पुष्प की संज्ञा : पुष्प के वृत्ताकार रचना के अनुसार अर्थात् किसी भी व्यास पर दो समान भागों में विभाज्य रचना के आधार पर उसे वृत्ताकार एक्टिनोमारफिक[9] कहते हैं। और यदि पुष्प एक ही रेखा से दो बराबर भागों में विभाज्य हो जैसे मटर का पुष्प तो उसे जायगो-

---

१. Bract. २. Bractiate. ३. Petaloed Bract.
४. Bractiole. ५. Hermaphrodile. ६. Unisexuale.
७. Monocius plant. ८. Diocious plant.
९. Actinomorphic.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मारफिक[1] कहते हैं। यदि पुष्प के सब अंग एक समान बराबर आकार के हों तो पुष्प को नियमित आकार का पुष्प कहते हैं।

यदि सब अंग समान न हों तो उसे अनियमिताकार कहते हैं।

इस प्रकार यदि पुष्प आकार ऐसा हो या ऐसा न हो तो विशेषता होने पर उसका भी विवरण लिखना चाहिये। यदि वर्गानुकूल सब लक्षण पुष्प में न हों तो उसका भी उल्लेख होना चाहिये।

पुष्पच्छद वलय

यदि वृंताग्र में कलिका के नीचे चन्द्राकार या विभिन्न आकार के पुष्पच्छद लगे होते हैं तो उनको पुष्पच्छद वलय या एपीकेलिक्स[2] कहते हैं।

यह हरे या लाल रंग का होता है। किसी-किसी में यह भिन्न रंग का भी होता है। यह पुष्प कलिका की रक्षा करता है।

पुष्प वाह्यकोष : पुटचक्र[3]।

पुष्प वाह्यकोष : यह पुष्प का वह भाग है जो कि वृंत के पास पुष्प को आच्छादित किये रहता है। यह कई प्रकार का होता है। वर्ण इनका हरा होता है। कभी-कभी यह लाल रंग का या विभिन्न वर्ण का होता है।

पुष्प वाह्यकोष : इसमें दो प्रधान भेद होते हैं। इसमें जो पत्र होते हैं उन्हें दल[4]पत्र कहते हैं। यह पत्र संयुक्त या विभक्त भी पाये जाते हैं।

संयुक्त पत्र : जब दलपत्र पृथक्-पृथक् न होकर सब मिले हुये हों तो उन्हें संयुक्त पत्रीय या गेमोसिपेलस[5] कहते हैं।

विभक्त पत्र : जब दलपत्र पृथक्-पृथक् हों व बहुत हों तो उन्हें विभक्त-पत्रीय या पोली सिपेलस[6] कहते हैं। इनका वर्ण हरा होता है।

आभ्यंतर दलसम पत्र : जब दलपत्र रंगीन होते हैं तो उन्हें आभ्यंतर दलसमपत्र या पेटालोयड कहते हैं।

विवरण लिखते समय इनका दल सम है या विषम है या कैसा है यह लिखना पड़ता है। आकार व प्रकार के अनुसार इनकी संज्ञा भिन्न-भिन्न होती है।

पुच्छाकारकोष[7] : जिनमें एक ओर एक पतली सी नलिका पुच्छाकार निकली हो उसे पुच्छाकार वाह्यकोष कहते हैं।

---

१. Zygo morphic. २. Epicalyx. ३. Calyx.
४. Sepals. ५. Gamosepalous.
६. Poly sepalous. ७. Spūrred.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नलिकाकार[1] : जब सब पत्र मिलकर एक नलिका का आकार बनाते हैं तो नलिकाकार कहते हैं।

पंजाकार[2] : जब यह पत्र मिलकर पंजे की सी सूरत बनाते हैं तब पंजाकार कहते हैं।

घटाकार[3] : जब इनका आकार घट की तरह होता है।

सुराहीदार[4] : जब यह मिलकर एक लम्बे घट के आकार के हो जाते हैं तो सुराहीदार कहलाते हैं।

फणाकार[5] : जिनका आकार सर्प के फण की तरह हो वह फणाकार होता है।

घंटिकाकार[6] : जिसका आकार घंटिका की तरह होता है उन्हें घंटिकाकार या कम्पानुलेट कहते हैं।

गलंतिकाकार[7] : जिनका आकार प्रारंभ में पतला व आगे जाकर चौड़ा हो जाता है वह गलंतिकाकार या फनेल शेप कहलाता है।

स्थायित्व व पतनशील के क्रम से इसके भेद भी होते हैं।

पतनशील : जो वाह्यकोष पुष्प विकाश के साथ गिर जाते हैं उन्हें पतनशील या केडुकस[8] कहते हैं।

पश्चातपाती : बहुत से पुष्पों के वाह्यकोष पुष्प के साथ सूखकर गिरते हैं। उन्हें पश्चातपाती या डेसीडुअस[9] कहते हैं।

स्थायी वाह्यकोष : बहुत से पुष्पों में वाह्यकोष फल को भी आच्छादित करता है। उसे स्थायी या परसिस्टेंट[10] कहते हैं।

पुष्पाभ्यंतर कोष दलचक्र या कोरोला (Corolla)

आभ्यन्तर दलचक्र : इसमें भी कई दल मिले होते हैं। जो मिला रहता है वह संयुक्त[11] दल वाला, जो पृथक हो वह पृथक दल[12] चक्र वाला कहलाता है।

नियमित : जिसमें दल एक समान हो तो उसे नियमित[13] व जो बड़े-छोटे

---

१. Tubular. २. Labiate. ३. Obose.
४. Urceolate. ५. Hooded. ६. Campanulate.
७. Funnelshaped. ८. Caducous. ९. Deciduous.
१०. Persistant. ११. Polypetalous.
१२. Gamo pelalous. १३. Regular.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

या विषम रूप के हों उन्हें अनियमित[1] दल वाले कहते हैं। या विषम दल या जायगो मारफिक[2] कहते हैं। रचना के आधार पर इनकी संज्ञा भिन्न-भिन्न होती हैं। यथा :

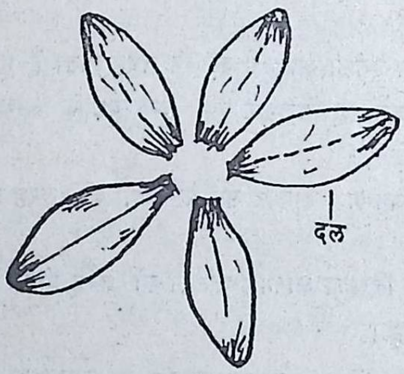

चित्र ४९

नलिकाकार[3] : जहां दलचक्र संयुक्त होकर नलिका का स्वरूप धारण करता है।

कुप्याकार[4] : जहाँ यह मिलकर नीचे से ऊपर को कूपी का आकार बनाता है।

चक्राकार[5] : जब नीचे के भाग में थोड़ा सा मिलकर चारो ओर गोलाई में फैल जाता है और आकार चक्र जैसा बनाता है।

कोटर पुष्पी[6] : जहाँ यह मिले हुए होते हैं और एक समान व्यास की नलिका बनाते हैं अथवा प्रारम्भ में गोलाकार आकृति बनाकर फिर पतला आकार नलिकावत बनाते हैं तो इन्हें कोटर पुष्पी या अन्तः कोटरपुष्पी कहते हैं।

घंटिकाकार[7] : जहां यह मिलकर एक भोंपे की सी सूरत बना लेते हैं।

द्विओष्ठी[8] : जहाँ इसका आकार कुत्ते के खुले मुख की तरह हो।

श्वानमुखी[9] : जहाँ पर मिलकर कुत्ते के खुले हुए मुख की तरह आकृति बनाते हैं। इसी प्रकार जैसा आकार हो उसका नाम भी उसी प्रकार का रख लेना चाहिए।

---

१. Irregular. २. Zygomarphic. ३. Tubular.
४. Infundibuliform. ५. Rotat. ६ Leguate.
७. Companulate. ८. Bilabiate Rengent.
९. Bilabiate personate.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उभय संयुक्त कोष : जब बाह्य व आभ्यंतर दोनों कोष एक ही में मिले होते हैं तो उन्हें उभय संयुक्त कोष कहते हैं।

चक्रों के क्रमानुसार इनका नाम भी कई प्रकार का होता है। आभ्यन्तर कोष में जो वृत्ताकार चक्र होते हैं उन्हें दल चक्र कहते हैं। यदि एक ही चक्र वाला हो तो एक दल चक्र और जब दो चक्र वाला हो तो दो दल चक्र, यदि तीन चक्र वाला हो तो तीन चक्र वाला कोष कहते हैं। इस कोष में जो रंग विरंगे पुष्प दल होते हैं उन्हें पुष्पदल या पेटल्स कहते हैं। बाह्य कोष में के दल का नाम दलपत्र या बाह्य दल होता है। इन्हें सेपल्स कहते हैं।

किसी किसी पुष्प में यह दोनों रचनायें पृथक्-पृथक् नहीं पाई जातीं। इनका आकार ऐसा होता है कि दोनों से मिलता हुआ होता है तो इनको पैरियेंथ[१] कहते हैं। यह रचना प्रायः एकदलीय उद्भिदों में पाई जाती है। जैसे प्याज या पलांडु।

यदि यह आपस में मिले हुए होते हैं तो इन्हें संयुक्त बाह्याभ्यन्तर दलीय या गैमीफाइलस[२] कहते हैं। इस प्रकार जो भी रचना मिलती हो पुष्प के वर्णन के साथ ही करना चाहिए।

पुंल्लिग चक्र या एन्ड्रोसियम (Androecium)

पुंकेशर के प्रधान निम्न भाग होते हैं। इसके संपूर्ण भाग को उसका पुंल्लिग चक्र कहते हैं।

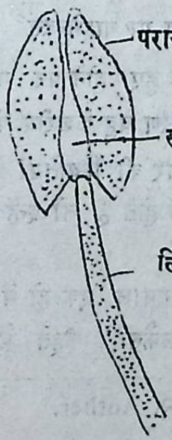

चित्र ५० पुंकेशर-परागकोष-पुष्पलिंग

१. Parienth. २ Gamophyllus.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ : इसके मुख्य भाग ये हैं :

१ : लिंगनाल[1] २ : परागकोष[2] ३ : संयोजक[3]

पुष्प के प्रजनन अंग में पुंकेशर व स्त्रीकेसर होते हैं।

१ लिंगनाल : पुंकेशर के सूत्रवत भाग को लिंगनाल कहते हैं। इसे केशर सूत्र भी कहते हैं।

२ पराग कोष : केशर सूत्र के ऊपर जो वृत्त या त्रिकोणाकार या लम्बगोल भाग होता हैं वह परागकोष कहलाता है।

३ संयोजक : इन दोनों को जो भाग मिलाता है वह संयोजक के नाम से कहा जाता है। परागकोष में साधारणतया दो कोष या एंथर लोब होते हैं और प्रत्येक में दो प्रकोष्ठ होते हैं। इन छोटे कोषों में पराग कण भरे रहते हैं। यह पराग धूलि छोटे-छोटे पराग एक सेलीय कणों से बनती है जिन्हें पराग[4] कण कहते हैं। कहीं कहीं इस प्रकार के पुंकेशर भी मिल जाते हैं जिनमें केवल लिंग नाल या उससे भी सूक्ष्म कोई रचना मिलती है। इनमें पराग नहीं होता अतः इनको निर्लिंग संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार की रचना को पुंकेशरावशेष या स्टेमिनोड्स[5] कहते हैं। कभी कभी पुं केशर पुष्पाशन पर जमने के बजाय आभ्यंतर दलों पर ही जमे हुए रहते हैं। इन्हें पुटपत्री[6] केशर कहते हैं। और पुंकेशरसंयुक्त दलचक्र के ऊपर हो तो इन्हें संयुक्त पत्रीय केशर या एपीफाइलस[7] कहते हैं। कभी कभी पुं केशर स्त्री केशर से चिपके हुए रहते हैं इस स्थिति को संयुक्त स्त्री केशरीय या गाइनेन्ड्रस[8] कहते हैं।

पुं केशरी के आपस में मिले हुए होने पर या पृथक होने के आधार पर इन्हे संयुक्त पुंल्लिग चक्र या साधारण बहु केशरीय पोलियेंड्रस[9] कहा जाता है।

संयुक्त पुं केशरी में कई प्रकार की स्थितियाँ देखी जाती हैं। यदि पुं केशरी के लिगनाल मिली हुई दशा में होते हैं तो इन्हें संयुक्त या एडेलफस[10] कहा जाता है।

यदि सब पुं केशरी के लिंगनाल एक ही में मिले हुए हो तो इस दशा को मिलित नाल या मोनाडेलफैस[11] कहते हैं। और इस प्रकार संयुक्त

---

१. Filament. २. Anther. ३. Connective.
४. Pollen grain. ५. Stami nodes. ६. Epepetalous.
७. Epephyllus. ८. Gynandrous. ९. Polyandrous.
१०. Adalphus. ११. Monadalphus.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाल की एक नलिका सी बन जाती है, जो सूत्री केशर को चारों ओर से घेरे रहती है। यदि लिंगनाल दो विभागों में संयुक्त हो तो द्विदलीय या डाइडेल्फस[1] कहा जाता है। यदि लिंग नाल कई समूहों में संयुक्त हो तो इस दशा को वहुनालीय[2] कहा जाता है। इसके विपरीत कुछ पुष्पों में यह भी देखा जाता है कि उनके लिंगनाल तो पृथक् रहते हैं परंतु परागकोष आपस में चिपके रहते हैं, इस दशा को सिनजेनेशस[3] यासिनेंथ्रस कहा जाता है।

कुछ पुष्पों में पुं केशर छोटे-छोटे वड़े होते हैं। यथा : सर्षप वर्ग में २ छोटे ४ वड़े इस दशा को टेट्राडाइनेमस[4] कहते हैं।

लिंगनाल परागकोष पर कई प्रकार से स्थित होते हैं, यथा : पराग-कोष में कई छोटे छोटे थैलीनुमा भाग होते हैं। इनमें पीले रंग का पराग बनता है। इन्हें पराग प्रकोष्ठ कहते हैं। इनके जोड़ने वाले भाग को संयोजक या कनेक्टिव कहते हैं। पुष्प के खिलने पर पराग कण फट कर बाहर आ जाते हैं। इस अवस्था को परागस्फुटन (Dehiscence of Anther) कहते हैं।

बहिःस्फुटन : जब कोष बाहर की तरफ फटते हैं तो उन्हें बहिःस्फुटन (Extrorse) कहते हैं।

षंढ पुं केशर : यदि पराग कोष में पराग कण न हो तो अथवा होने पर भी पराग कण न उत्पन्न होते हों तो उन्हें षंढ पुंकेशर (Staminode) कहते हैं।

संख्या : पुं केशरों की संख्या सब पुष्पों में समान नहीं होती। यथा : आर्द्रक में एक, जई में दो, गेहूँ में तीन, आवर्तनी में चार, धतूर में पांच, और चावल में ६, और बहुतों में अधिक होते हैं।

पुं केशर प्रायः पृथक पृथक होते हैं। किन्तु कभी कभी एक में मिल भी जाते हैं और गुच्छाकार हो जाते हैं। यदि पुं केशर चार हों या अधिक हों और जोड़ों में हों और समान न होकर छोटे बड़े हों उन्हें विषम युग्म या डाइडिनेमस (Didynamous) कहते हैं। यदि सम हो तो सम कहते हैं।

---

१. Diadelphous. २. Polyadelphous.
३. Syngenesious or syaranthrous.
४. Tetrodynamous.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्त्री केशर : (Pistil)

स्त्री केशर के तीन भाग होते हैं। यथा :

१ : गर्भाशय।

२ : परागवाहिनी या स्टाइल।

३ : परागवाहिनी मुख या स्टिग्मा।

यह तीनों मिलकर एक आकार बनाते हैं, जो सुराही से मिलता जुलता है। देखिए चि० नं० ४८

गर्भाशय : स्त्री केशर के प्रारंभिक चौड़े भाग को कहते हैं जो थैली की तरह पोला होता है इसमें कई प्रकोष्ठ होता है। इन्हें बीज कोष या लोकुलस (Loculus) कहते हैं।

परागवाहिनी : गर्भाशय और मुख के बीच का जो नलिकाकार भाग होता है उसे परागवाहिनी या स्टाइल (Style) कहते हैं।

परागवाहिनी मुख : नलिकाकार भाग के आगे का चौड़ा भाग उसका मुख या स्टिग्मा (Stigma) कहलाता है।

उल्व : गर्भाशय उल्व के जिस भाग पर लगा रहता है और गर्भाशय का पोषण करता है उसे उल्व या प्लैसेंटा कहते हैं।

उल्वनाल : जिस सूत्र से उल्व स्त्री बीज से संलग्न होता है उसे उल्वनाल या बीजनाल कहते हैं।

प्रकोष्ठ : गर्भाशय में एक या अधिक भाग होते हैं। एक कोष हो तो यूनीलोकुलर (Unilocular) एक से अधिक प्रकोष्ठ हो तो पोलीलोकुलर (Polylocular) कोष कहते हैं।

संयुक्त कोष्ठीय : यदि बीज कोष्ठ संयुक्त हो तो संयुक्त गर्भाशय या कम्पाउंड ओभरी (Compound ovary) कहते हैं।

संख्या : स्त्री केशर एक या अनेक हो सकते हैं। एक होने पर इनकी संज्ञा एक कोष्ठीय (Monocarpellary) और यदि अधिक हों तो संयुक्त या बहु कोष्ठीय या पोली कारपेलरी (Poly carpellary) कहते हैं।

परागवाहिनी : स्त्री केशर में गर्भाशय के बाद जो नलिकाकार भाग होता है उसे परागवाहिनी कहते हैं।

परागवाहिनी मुख : पराग नलिका के आगे और स्त्री केशर के अग्र भाग को परागवाहिनी मुख या स्टिग्मा कहते हैं। यह आगे कुछ चौड़ा सछिद्र

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

या फूला हुआ होता है। इसका आकार वृत्ताकृति विभक्त या पक्षाकृति होता है। स्त्री केशर का यह भाग स्त्री शरीर में योनि के स्थान की तरह प्रमुख होता है। यहाँ पर पराग कण आकर संयुक्त होते हैं। जितने प्रकोष्ठ का गर्भाशय होता है उतने ही चिह्न युक्त योनिमुख होता है।

यथा : हुल-हुल में एक त्रिकोणाकार, गोक्षुर में ५ और इसी प्रकार अन्य भी होते हैं।

स्थिति : गर्भाशय पुष्प में ऊपर, नीचे या पार्श्व में होता है। कभी बीच में भी होता है।

ऊर्ध्वस्थ गर्भाशय : जब गर्भाशय वृंताग्र के ऊपर हो और पुष्प बाह्यकोष आभ्यंतर बाह्यकोश तथा पुंकेशर नीचे जुड़े हों तो उसे उर्ध्वस्थगर्भाशय या सुपीरियर ओभरी (Superior ovary) कहते हैं। और अधस्थ कोषीय कहते हैं (Hypogynous) यथा : बैंगन। किन्तु जब पुष्पाशन प्याली की तरह नतोदर हो और गर्भाशय इसके बीच में हो और शेष भाग बाह्य कोष आभ्यंतर कोश तथा पुंकेशर किनारे लगे हों तो उसे परिस्थकोश पेरीगाइनस (Perygynous) कहते हैं।

अधःस्थ गर्भाशय : जब वृंत बढ़कर प्याली का आकार नहीं बनाता और बढ़ जाता है जिसमें गर्भाशय बंद हो जाता है। और शेष भाग बाह्य, आभ्यंतर व पुंकेशर उस गर्भाशय के सिरे से निकलते हैं तो उस पुष्प को अधःस्थ गर्भाशय या एपीगायनस (Epigynous) कहते हैं। और ऊर्ध्वस्थ कोश कहते हैं।

बीजोल्व बीजस्थान या प्लैसेंटा (Placenta)

उल्व : गर्भाशय के भीतर जिस भाग पर आदि बीज ओम्यूल (Ovule) चिपटा रहता है उसे उल्व बीज स्थान या प्लैसेंटा कहते हैं।

बीज क्रम : आदि बीज जिस क्रम में गर्भाशय में स्थित होते हैं उस क्रम को बीज क्रम या प्लैसेंटेशन (Placentation) कहते हैं। यह ६ प्रकार का होता है। यथा :

१ **धारीय :** गर्भाशय में जब एक ही पोल हो और किनारे पर बीज लगे हों और उनकी सीवन किनारे पर हो तो उसे धारीय या प्रान्तीय क्रम कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२ कक्षीय : इस जाति में संयुक्त गर्भाशय कई खंडों में विभक्त होता है। और आदि बीज का धारण करनेवाला स्थान कक्ष में होता है हर एक खंड के कक्ष प्रान्त में होने से यह कक्षीय कहलाता है । यथा : नींबू, नारंगी ।

३ मुक्त केंद्रीय : अत्यंत मृदु गर्भाशियों में खंड, प्रदर्शक भित्ति टूट जाने से वह एक ही दिखाई पड़ता है । बीज़ क्रम इसके चारों तरफ लगता है । अतः बीज उस स्थान के चारों तरफ होते हैं । उन्हें मुक्त केन्द्रीय बीज क्रम कहते हैं । यथा : व्रजदंती ।

४ पार्श्वीय : इस क्रम वालों में गर्भाशय एक ही होता है और गर्भाशय की दीवाल पर आया हुआ होता है । यथा : राजिका, पपीता, पोस्ता ।

५ तलस्थ : इस क्रम में गर्भाशय एक ही खंड की तरह होता है (यूनी-लोक्यूलर) और पुष्पाधार के ऊपर बीज स्थान होता है । और गर्भाशय के तल में एक ही बीज धारण किये होता है तो उसे तलस्थ या बेसल (Basal) कहते हैं । यथा : भृंगराजादि वर्ग में ।

६ उथला क्रम : इसमें गर्भाशय कई खंडों में विभक्त होता है और अक्षीय बीज क्रम की तरह खंड भित्तियों के भीतरी भाग में बीज लगे रहते हैं तो उन्हें उथला क्रम या सुपरफिशियल (Superficial) कहते हैं ।

आदि बीज या ओभ्यूल (Ovule)

बीजनाल : यह एक कोमल सूत्र के द्वारा या दंड के द्वारा आदि बीज बीज स्थान से लगा रहता है । इसे बीजनाल कहते हैं ।

२ नाल चिह्न : गर्भाशय शरीर में जहाँ जहाँ बीजनाल संलग्न होता है उस भाग को नाल चिह्न (Hillum) कहते हैं ।

३ संवरक भाग : आदि बीज का शरीर दो भागों से घिरा रहता है । इस भाग को बीज संलग्न भाग (Nuceillus) कहते हैं । नग्न बीज वाली वनौषधियों में जैसे भृंगराज आदि में एक ही संवरक भाग होता है । चंदन व बांदा जैसे पेड़ों में यह आवरण भाग नहीं होता ।

४ बीज छिद्र (Micropyle) : ऊपर कहे हुए आवरण जब एक साथ जुड़कर एक सूक्ष्म छिद्र बनाते हैं उन्हें बीज छिद्र या माइक्रोपाइल कहते हैं ।

५ आवरणोद्भव स्थान : इन दोनों आवरणों का जहाँ से आरंभ होता है उसे उसका उद्भव स्थान (Chalaza) कहते हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

६ गर्भकोष (Embryo sac) : आदि बीज के ठीक ऊपर बीज छिद्र की तरफ एक बड़ा अंडाकार कोष बन जाता है। इसको गर्भ कोष या गर्भ थैली इम्ब्रियो सैक कहते हैं। इसके नीचे अंकुर का भाग होता है। आदि बीज या अंकुर के रूप बीजों में कई प्रकार के होते हैं। विशेष कर ३ या ४ भेद होते हैं।

१ ऊर्ध्व मुख या अर्था ट्रोपस (Orthotropous) :

इस जाति के बीजों में बीज छिद्र संवरण व उद्भव स्थान एक ही रेखा में होता है। यथा : तांबूल वंर्ग के व पालकी के शाक में।

२ अधर मुख या एनाट्रोपस (Anatropous) : इसमें आदि बीज बीज नाल की तरफ होता है। जहाँ से बीज छिद्रनाल के पास ज्ञात होता है। और बीज छिद्र व उद्भव स्थान एक ही रेखा में होते हैं। इन्हें अधोमुख या विपरीत मुखांकुर कहते हैं।

3 प्रसरित मुख (Amphitropous) : जब अंकुर बीजनाल के ऊपर दोनों तरफ फैला होता है उस क्रम को प्रसरित क्रम कहते हैं।

४ : तिर्यक मुख (Compylotropous) : जब आदि बीज तिर्यक होता है तब उसे तिर्यक मुख कहते हैं। यथा : गुलब्रांस।

गर्भाशय में आदि बीज की स्थिति

गर्भाशय में बीज कई प्रकार से स्थित होते है। यथा :

१ : उत्थित या सीधा जहाँ बीज सीधे हों। (Erect)

२ : अनुलम्बित (Pendulous) जब आदि बीज गर्भाशय के शिखर की तरफ जाकर नीचे पेंडुलम की तरह लम्बायमान हो तो उसे अनुलंबित कहते हैं।

३ : अवलंबित (Suspended) जब आदि बीज गर्भाशय के पास से निकला हो तो उसे अवलम्बित कहते हैं।

४ : समानान्तर (Horizental) आदि बीज जब गर्भाशय के अन्दर पार्श्वों से ऊपर सीधा निकला हो तो समानान्तर कहलाता है।

फल तथा बीज का परिचय

अन्य प्राणियों की तरह वृक्ष व पौधे भी संतानोत्पत्ति के द्वारा वंशपरंपरा को कायम रखते हैं। इस की कई विधियां हैं। पुष्पधारी वृक्षों में पूर्व में हमने देखा है कि उन में संतानोत्पत्तिकर प्रधान अंग स्त्री केशर, पुंकेशर,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होते हैं। इन दोनों अंगों के परिपक्व हो जाने पर पुं केशर में से पराग कण निकल कर स्त्री केशर के योनिछत्र पर जा गिरते हैं। यह क्रिया सेचन[१] क्रिया कहलाती है। उसी पुष्प का परागकण जब उसी पुष्प के योनिछत्र पर जा गिरता है तब इसे स्वयं सेचन[२] की क्रिया कहते हैं। जब अन्य पुष्प का पराग कण किसी अन्य पुष्प के योनि-छत्र पर जा गिरता है तब उसे पर-[३] सेचन की क्रिया कहते हैं। प्रायः पुष्पो में पर सेचन की ही क्रिया अधिक होती है क्योंकि इस प्रकार से अच्छे और दृढ़ फल और दृढ़ बीज की उत्पत्ति होती है। परसेचन की क्रिया सफलतापूर्वक संपादित करने के लिये पुष्प-रचना इस प्रकार की होती है कि यह क्रिया सरलता से हो सके।

इस सेचन के कई माध्यम होते हैं। यथाः वायु, जल, कीट, पतंग आदि जो परागकण के वाहक बन कर कार्य करते हैं। इस क्रिया के बाद पराग-कण योनि-छत्र में एक नलिका का निर्माण करता है, जो योनि-छत्र से योनि नलिका में होकर गर्भाशय तक जाती है और अन्त में यह नलिका एक रजः कण से संपर्क करके गर्भाशय में प्रवेश कर जाती है। परागकण का केन्द्र इस नलिका में से होकर रजःकण के केन्द्र तक जाता है। और अन्त में यह स्त्री व पुं केन्द्र आपस में मिल कर एक हो जाते हैं। यह क्रिया गर्भाधान[४] की क्रिया कहलाती है। गर्भाधान की क्रिया के बाद पुष्प के अन्य अंगों का कार्य समाप्त हो जाता है। केवल गर्भाशय में स्त्री केशर का भाग वृद्धि करता है।

फल व बीज की रचना : जब रजः कण गर्भाशय के भीतर मेल करते हैं तब भीतर की सूक्ष्म रचना के स्वरूप पूरा गर्भाशय या कुछ और आस पास के अंग जो अन्तिम रूप धारण करते हैं वह ही फल बन जाता है। और केवल रजः कण जो अन्तिम रूप धारण करते हैं वह बीज कहलाता है।

उदाहरणार्थ : आम की गुठली के अन्दर का भाग उसके रजःकण का अन्तिम रूप है। मटर या चना आदि के दाने उस के रजःकण के विकसित रूप हैं। अतः यह सब बीज हैं और आम, अनार, मटर की फली उस पुष्प के गर्भाशय के अन्तिम रूप हैं। अतः यह फल हैं।

कुछ पुष्पों में गर्भाशय व रजःकण के अंतिम रूप में कोई विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। यथा : गेहूं, मक्का, जौ, धान आदि। इन

---

१. Pollination. २. Self Pollination.
३. cross Pollination ४. Fertilisation.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दोनों को हम बीज कहते हैं। किन्तु वास्तव में यह सब फल हैं। क्योंकि इनका निर्माण कुल गर्भाशय के द्वारा होता है। न कि केवल रजःकण के द्वारा।

इनमें रजः कण की दीवार और गर्भाशय की दीवार परिपक्व होने पर मिल कर एक हो जाती हैं। अतः यह वास्तव में फल ही हैं।

इस प्रकार देखते हैं कि पुष्प का अन्तिम रूप फल होता है। यही अपने अंगों में विभिन्न प्रकार का खाद्य एकत्र कर लेता है और जीवोपयोगी बन जाता है।

फल व उनका वर्गीकरण।

फलों को उनकी रचना के अनुसार तीन प्रधान भागों में विभक्त किया जा सकता है। यथा :

१ : साधारण फल (Simple fruits)
२ : सामूहिक फल (Aggrigate fruits)
३ : संयुक्त या मिश्रित फल—(Composite fruits)

साधारण फल : यह वह फल है जो कि एक पुष्प के द्वारा बनता है किन्तु उसका स्त्री केशर एक कोष्ठीय (Monocarpillary) होता है यथा : मटर व अहिफेन फल।

२ सामूहिक फल : यह फल एक ही पुष्प के द्वारा बनता है किन्तु उस में वहुत से स्त्री केशर होते हैं। प्रत्येक स्त्री केशर एक फलांश का निर्माण करता है। और इस प्रकार फल छोटे-छोटे फलों का एक समूह होता है। यथाः रसभरी (Berries)।

३ मिश्रित फल : यह फल एक पुष्प के द्वारा नहीं अपितु एक पुष्प शाखा के द्वारा बना होता है। प्रत्येक पुष्प वृद्धि प्राप्त करता है। और एक बड़ा सा बहुपुष्पी फल बन जाता है। यथा : शहतूत।

इन तीनों भेदों को पुनः निरीक्षण करें तो इनमें विशेष रचना और भेद दिखाई पड़ते हैं। इनका विवरण निम्न है :

साधारण फल : साधारण फल प्रधान रूप से दो प्रकार के होते हैं। यथा :

१ : सूखे फल (Dry)
२ : मांसल फल (Fleshy)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ सूखे फल : वे फल हैं जिनके गर्भाशय की दीवाल अन्तिम स्थिति में सूख कर कड़ी हो जाती है।

२ मांसल फल : वे फल हैं जिनके गर्भाशय की दीवाल मांसल या गूदेंदार या रसदार हों जाती है।

सूखे फल के भेद :

सूखे फलों को तीन भागों में बांटा जा सकता है। यथा :

१ : शुष्क जो न फटने वाले हों एक बीजीय (Achinal)

२ : शुष्क फटने वाले बहुबीजीय (Capsular)

३ : शुष्क बहुबीजीय जो एक बीजीय भागों में विभाज्य हों। (Schizo-carpic)

इन तीनों प्रकार के फलों को पुनः प्रधान पाँच भेदों में विभाजित किया गया है। जो निम्न रूप में हैं।

शुष्क न फटने वाले एकबीजीय फल :
(Achinal fruits)

१ : एकीय या एकीन। (Achine)।

जिन की गर्भाशय भित्ति पतली होती है और जो उच्च स्थानीय गर्भाशय से निर्मित होते हैं। फलावरण व पुष्पावरण पृथक् होते हैं। यथा :

अपराजितादि वर्ग (पोलिगोने सी वर्ग) के फल। बहुत से सामूहिक फल भी इसी प्रकार के फलों के समूह से बनें होते हैं।

२ : एकबीजीय या सिप्सेला (Cypsela)

इनमें व एकीय फलों में केवल अन्तर यही होता है कि इनमें गर्भाशय अधः स्थित ओवरी से वना होता है। यथा : शतपत्री वर्ग के फल। यथा : सूरजमुखी बहुत से इस वर्ग के फलों पर रोम भी होता है। इनमें फल कवच व बीज कवच अलग-अलग होते हैं।

३ : सपक्ष बीज या समारा (Samara) : यह भी एकीय जैसे ही होते हैं परन्तु फलावरण चपटा होकर फैल जाता है ताकि बीज उड़कर इधर या उधर फैल सकें।

४ : वर्म फल या नट्स : उसमें फलावरण कड़ा और मज़बूत बन जाता है। जैसे देवदारु, शुष्क स्फोटी-बहुबीजीय फल।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५ : संयुक्त भित्तीय—कैरियोप्सिस (Caryopsis)—यह एकीय के समान ही होते हैं परन्तु इनका फलावरण व बीजावरण आपस में मिल कर एक हो जाता है। यथा—मक्का—गेहूं—जौ। शुष्क फटने वाले वहुबीजीय फल—(Capsular fruits) :—

इन फलों की दीवार परिपक्व होने पर फट जाती है। इस क्रिया से फल निकल कर फैल जा सकता है। इसके पाँच भेद हैं :

१ : अर्द्ध स्फोटी या फोलिकिल : (Follicle)

यह एककोषीय एक स्त्री केशर से उत्पन्न होने वाला फल है जो कि एक ओर से ही फटते हैं। वहुत से सामूहिक फल इस प्रकार के फलों से ही बनते हैं। यथा : स्वर्ण चंपक, बारमासी।

२ : शिम्वी जातीय या लेग्यूम (Legume)

एक स्त्रीकेशर के एक गर्भकोष जो उर्ध्वस्थित गर्भाशय से उत्पन्न होता है। यह परिपक्व होने पर दोनों ओर से फटते हैं। यथा : मटर आदि के फल।

३ : सार्षपी या सिलीक्रुवा : (Seliqua)

इस सर्षप वर्ग का विशिष्ट फल होता है और इसका निर्माण गर्भाशयी स्त्रीकेशर के द्वारा होता है। बीच में एक पतली झिल्लीदार दीवार के द्वारा दो भागों में अलग हो जाता है। परिपक्व होने पर फल के दोनों ओर के हिस्से फट जाते हैं। और बीच की पतली झिल्ली अलग हो जाती है। यह लम्वे गोल आकार की होती है। यथा : सरसों की फली।

४ : चपटी फली : या सिलीकुला : (Silicula)

यह भी बनावट में सार्षपी की ही तरह होती है किन्तु फल छोटा व चपटा होता है। यथा :

५ : फली या कैंपसूल : (Capsule)

इस वर्ग में अन्य प्रकार के फटने वाले सब फल आ जाते है। एक कोष्ठीय या बहुकोष्ठीय। एक या अनेक गर्भाशयों से मिल कर बने होते हैं। यह कभी-कभी, आर्द्र या मांसल भी होते हैं। और इनके फटने की विधि भिन्न-भिन्न होती है। यथा : भिंडी, अफीम आदि।

शुष्क बहुबीजीय एकबीजीय भागों में विभाज्य (Schizocarpic fruits)

यह सूखे हुए बहुबीजीय फल होते हैं। किन्तु परिपक्व होने पर एक बीज वाले हिस्सों में विभक्त हो जाते हैं। एकबीजीय यह भाग पूरे फटते नहीं

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और इन एक बीजीय भागों को एक वीजीवेश्म (मेरी कार्प) कहते हैं। इनके भी पाँच भेद होते हैं। यथा :

१ : अनुप्रस्थ खण्डीय या लोमेंटम (Lomentum)

कुछ शिम्बी व सर्षप वर्ग के बीज इस प्रकार के होते हैं। यह कई बीज वाले फूले हुए मालूम पड़ते हैं। और एक-एक बीजवाला भाग अलग-अलग मालूम पड़ता है। जैसे मूली की फली। मूंगफली।

२ : युगवेश्मीय क्रीमोकार्प (Cremocarp)

यह फल द्विगर्भाशयी व द्विकोष्ठीय स्त्री केशर से बनता। परिपक्व होने पर लम्बाई में फट जाता है। और एक-एक बीज वाला भाग अलग हो जाता है। शतपुष्पादि वर्ग के फल इस प्रकार के होते हैं। यथा : धनिया, सौंफ आदि।

३ : चतुर्वेश्मीय कार्सेरुलस (Carcerulus)

इस जाति में फल का निर्माण द्विगर्भाशयी स्त्री केशर से जो कि ऊर्ध्व स्थित होता है बनता है। इसमें भी बीच में पतलीसी दीवार बन जाने से गर्भाशय चतुष्कोष्ठीय प्रतीत होने लगता है। परिपक्व होने पर चार बीज पृथक् हो जाते हैं। यह तुलसी वर्ग में विशेष रूप से मिलते हैं।

४ : पुटकीय या रेग्मा (Regma) पुनर्विदारी।

इस फल के एकबीजीय भाग फटने वाले होते हैं। यह विशेष कर एक फल में तीन या अधिक प्रकोष्ठ मिल कर बने होते हैं। और परिपक्व होने पर प्रत्येक प्रकोष्ठ फट जाता है। इन प्रकोष्ठों को पुटकीय पुटक या कोकोई कहते हैं। यथा : एरण्ड के बीज।

५ द्विपक्षीय या डबल समारा (Double Samara)—इसमें समारा के समान दो या अधिक फल होते हैं।

साधारण मांसल फल

साधारण फल जो गूदेदार होते हैं विशेष कर तीन प्रकार के होते हैं। यथा :

१ : अष्ठील फल या ड्रूप (Drupe)

२ : रसभरी या वेरिज (Berry)

३ : अधिमांसल या पोम (Pome)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ अष्ठील फल :

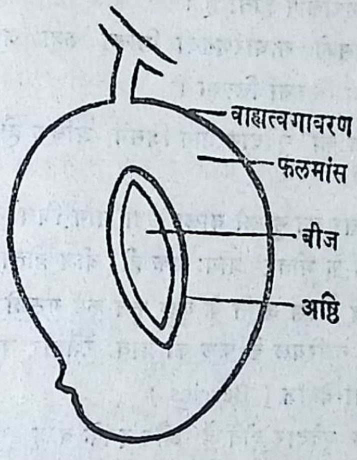

चित्र ५१ अष्ठील फल

इस जाति के फलों को गुठलीदार या अष्ठील फल भी कहा जाता है। क्योंकि इनके बीच गुठली होती है जो कड़ी होती है और बीज को सुरक्षित रखती है। इनका निर्माण उर्ध्वस्थ गर्भाशय से होता है। इसका फलावरण विशेष रूप में तीन भागों में विभाजित होता है।

१ : फल त्वचा (Epicarp)
२ : फल मांस (Mesocarp)
३ : फल अष्ठि (Endocarp)

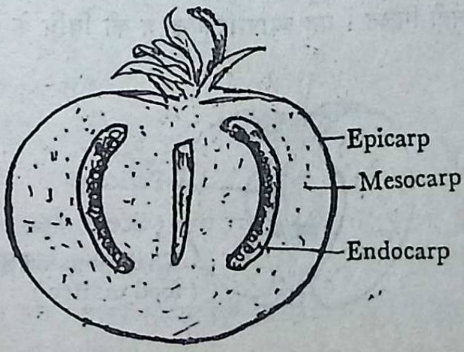

चित्र ५२ मांसल फल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ऊपर के तीनों भाग मिलकर फल की दीवाल का निर्माण करते हैं। इनका नाम सामूहिक रूप में एपीकार्प होता है।

फल त्वचा : इसको साधारणतया छिल्का कहा जाता है। जैसे आम का छिल्का नारियल का चिकना छिल्का।

फल मांस : फल का गूदेदार भाग जिसमें अधिक होता है। जैसे : आम का गूदेदार भाग।

फल अष्ठि : भीतर का गुठली वाला कड़ा भाग जिस में हो। यथा : आम की गुठली। इन फलों के भीतर प्रायः एक ही बीज होता है। यथा : आम, नारियल, वादाम आदि। इस जाति के कुछ फल कई गुठली वाले मिश्रितफल के रूप में भी मिलते हैं। नारियल के फल को प्रायः रेशेदार मांसल फल कहते हैं।

रसाल फल : या वेरीज (Berries)

इस जाति के फल गूदेदार होते हैं और इनके बीज गूदेदार भाग में दबे होते हैं। बीज स्वयं कठोर नहीं होते हैं। इनमें व अष्ठील फल में अन्तर यह होता है कि इनकी गुठली अधिक कड़ी नहीं होती। यद्यपि फल में तीन स्तर देखे जाते हैं। यह फल उर्ध्वस्थ या अधःस्थ गर्भाशय से बनते हैं। यथा : टमाटर, लौकी, कद्दू। खरबूजा। अमरूद, अंगूर, पपीता।

नारंगी भी इसी तरह का एक बहुकोष्ठीय गर्भाशय वाला फल है, जिसका ऊपर का छिल्का त्वचा, भीतर का भाग अन्दर का श्वेत भाग गूदा और फलों के ऊपर झिल्ली इण्डोकार्प होता है। गर्भाशय कोष्ठों के अन्दर बहु-कोष्ठीय रोम होते हैं, जो अपने भीतर रस का संचय करते हैं। खजूर भी इसी प्रकार का फल है। इसके बीच की गुठली वास्तव में बीज है जो कि गूदे में दबी रहती है। केला भी इसी प्रकार का फल है। किन्तु अच्छे जाति के केलोमें बीज ही नहीं मिलते। यह व्यापारिक उपज की विधि के कारणहोता है।

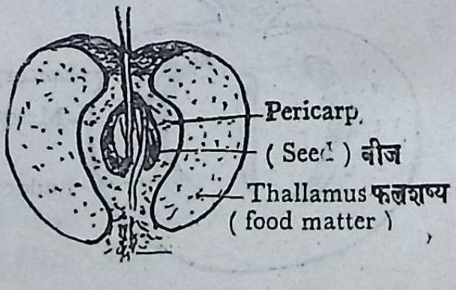

चित्र ५३ गूदेदार फल (Pome)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पोम या मांसल फल : (Pome)

इस वर्ग के फल प्रायः गुलाब जाति के वर्ग में मिलते हैं। यथा : सेव, नासपाती आदि यह फल पाँच या अधिक गर्भाशय युक्त पुष्प के द्वारा बनते हैं। यह गर्भाशय प्रायः मिले हुए होते हैं और फल के वृद्धि करने पर पूर्ण रूप मे आपस में मिल जाते हैं। इनका गूदे वाला भाग गर्भाशय से नहीं अपितु पुष्पासन से बनता है। फल के मध्य में कुछ कड़ा सा भाग होता है। जो कि वास्तव में स्त्री केशर का अन्तिम रूप है। इसी में बीज भी स्थित रहते हैं। प्रायः इन फलों के ऊपरी भाग में पुष्प के अंगों के कुछ अवशेष भी दिखाई पड़ते हैं।

सामूहिक फल (Aggregate)

सामूहिक फल प्रायः बहुत से साधारण फलों के समूह होते। इन फलों में एकीन के समूह फालिकिल्स के समूह या गूदेदार फलों के समूह होते हैं। इनमें पाये जाने वाले फल को प्रायः बीज कहा जाता है। किन्तु वास्तव में यह बीज नहीं फल होते हैं। इन के उदाहरण काफरा आदि हैं। देवकांडर या गंडीर–मोरवेल यथा चि० नं० ५२ व ५३।

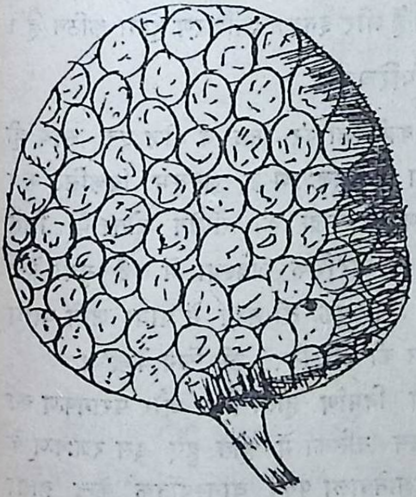

चित्र ५४ सामूहिक फल

चित्र ५५ सामूहिक फल

मिलित फल या ग्रथित फल (Composite)

इनके गिने चुने उदाहरण मिलते हैं। यह एक पृष्प के द्वारा नहीं अपितु एक पुष्प शाखाके द्वारा बने होते हैं। उदाहरणार्थः अंजीर या वट या अश्वत्थके फल।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अंजीर का फल एक ऐसी पुष्पशाखा के द्वारा बनता है जिसका पुष्पाशन का भाग एक प्याला सा बन जाता है और उसके अन्दर छोटे-छोटे पुष्प होते हैं। खाद्य पदार्थ एक पुष्पाशन में एकत्र होता है। अतः सब को एक फल कहते हैं। किन्तु वास्तव में पाये जाने वाले एक-एक बीज युक्त एक-एक फल होते हैं। इस प्रकार के फल वनस्पति वर्ग के होते हैं। यह कभीय फल या साइकोनस (Syconus) कहे जाते हैं।

शहतूत या अनन्नास का एक-एक फल स्पाइक जाति की पुष्पशाखा से बना होता है। इस प्रकार के फलों को सोरोसिस या सरसाक्ष फल (Sorosis) कहते हैं इस प्रकार के फलों की एक जाति और भी होती है जिसे स्ट्रोबिलस (Strobilus) या शंकुफल कहते हैं। इसकी पुष्पशाखा में कुछ झिल्लीदार पत्रक की रचना होती है। और इन पत्रकों के ऊपरी भाग के मूल पर दो स्त्री पुष्प प्रत्येक में होते हैं, जो वास्तव में एकीन जाति के फल का रूप धारण करते हैं। इस प्रकार के फल हाप के द्वीपों में होते हैं।

इन फलों के भेदों के अतिरिक्त अन्य भेद भी हैं जिन को उक्त वर्ग में रखना संदिग्ध सा ज्ञात होता है। इनमें मिश्रित फल के लक्षण होते हैं।

पन्तुर ये फल संख्या में नगण्य से हैं और इनका वर्गीकरण होना कठिन है।

बीज परिचय

फल के भीतर बीज लगते हैं। कहीं-कहीं पर फल व बीज एक साथ ही होते हैं। ये बीज स्त्री जातीय पुष्प के रजःकण के अन्तिम विकसित रूप हैं। गर्भाशय में रजःकण व परागकण के केन्द्रों का संयोग होता है, जिसे गर्भाधान कहा गया है। रजःकण में प्रारंभिक अवस्था में कई सूत्री केन्द्र होते हैं, इनमें से दो केन्द्र प्रमुख होते हैं। एक तो मध्य में पाया जाने वाला स्त्री [1]वानस्पतिक केन्द्र और दूसरा ऊपर की ओर स्थित स्त्री लिंग केन्द्र[2]।

परागकण के द्वारा नलिका का निर्माण होता है। और परागकण का भाग दो भागों में विभक्त होकर इस नलिका में होते हुए इस रजःकण के पास पहुँचते हैं। इन दो केन्द्रों में आनेवाला पुरुष वानस्पतिक[3] केन्द्र होता है। सर्वप्रथम दोनों वानस्पतिक केन्द्र आपस में मिलते हैं। फिर दोनों आपस में संयुक्त हो जाते हैं। अब इस रजःकण का गर्भाशय के साथ विकास होता

---

१. Female Vegelable nucleus. २. F. sez nucleus

३ Female V. nucleus.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। गर्भाशय तो फल का रूप धारण करता है और रजःकण बीज के रूप में परिवर्तित होता है। संयुक्त लिंग के केन्द्रों के द्वारा बीज में पाये जाने वाले भ्रूण का निर्माण होता है। और संयुक्त वानस्पतिक केन्द्रों के द्वारा वीज के अन्य भाग जैसे बीजपत्र, खाद्यकोष आदि का निर्माण होता है। रजः-कण की भित्ति विकसित होकर बीज के आवरण के रूप में परिणत होती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कभी-कभी विकास के क्रम में रजःकण व गर्भाशय की दीवारें मिल जाती हैं और एक मिश्रित आवरण रह जाता है। यह रचना फल है किन्तु साधारणतया लोग इन्हें बीज के ही नाम से पुकारते हैं। यथा : गोघूम व यव आदि।

पुष्पधारी पौधों में के दो भेद पहले कहे गये हैं। इनमें प्रारंभ से अन्त तक रचना में अन्तर होता है। इनके भेदों को जानने के लिये निम्न तालिका से काम चला सकते हैं। यथा :

क्रम	अंग	द्विपत्री पौधे	एक पत्री पौधे
१	मूल	साधारण मूसलाकार जड़जिनका निर्माण बीज के आदि मूल द्वारा स्थूल होता है।	मूल फखड़ेदार होती है और इनका निर्माण आदि मूल से नहीं होता।
२	कांड	मोटा व वायु के साथ बढ़ने-वाला होता है।	कांड पतला लम्बा आयु के अनुसार मोटा नहीं होता।
३	पत्र	पत्र शिरा जालीदार होती है।	पत्रशिरा सदा समानान्तर होती है।
४	पुष्प	पुष्प अंग २, ४, ५ या अधिक संख्या में होते हैं।	सदा तीन तीन की संख्या में।
५	बीज	द्विपत्रीय	एक पत्रीय होता है।

द्विपत्रीय पौधों के उदाहरण हैं : आम्र, जम्बु, चणक, मटर, शिम्बी आदि एकपत्री बीज वाले गोधूम, धान, नारिकेल, प्याज, वंश रसोन आदि परीक्षा के अभ्यास के लिये इनके पौधों को लेकर बहुशः परीक्षा करना चाहिए।

द्विपत्रीय बीज : इनके अध्ययन के लिये पहले ही अंकुरोद्भेद में विवरण दे चुके हैं। यथा : एक सेम या लोबिया के बीज ले लीजिये। इसमें निम्न बातें अवलोकन करिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ : बीज़ के ऊपर का सफेद चिह्न यह नाभि नाल है। इसी स्थान पर बीज फली की दीवाल से लगा रहता है। दोनों का संयोजक एक वृंत होता है वह इसका ही चिह्न है पकने पर यहाँ से पृथक हो जाता है। इसके पास ही दबा हुआ एक छिद्र दिखाई देगा यह नाभि छिद्र या माइक्रोपाइल है। इसी छिद्र से अंकुर बाहर आता है। ऊपर का कड़ा आवरण इसका वाह्यावरण या टेस्टा है। इसके नीचे श्वेत वर्ण का भाग दिखाई पड़ता है। यह दो टुकड़ों में बना हुआ है। यह प्रत्येकबीजपत्र हैं। यह दोनों आपस में एक बिंदु पर मिले होते हैं। ध्यान से देखने पर एक नोकदार भाग दोनों के संगम पर दिखाई देगा। यह अंकुर या भ्रूण है। यही बीज के जमने पर उसके मूल का आकारधारण करताहै। इस अंकुर व बीजपत्र के संयोजन के स्थान को मध्य-संयोजक या हाइपोकोटाइल कहते हैं। इसके ऊपर भ्रूण का अवशिष्ट भाग बीज का प्रांकुर रहता है। इसे प्रांकुर या प्यूमूल कहते हैं। यह भाग आगे जाकर पौधे का कांड का भाग निर्माण करता है। भ्रूण बीज में जीवित अवस्था में सदा पड़ा रहता है। किन्तु जब अनुकूल अवस्था पाता है तभी ही यह क्षेत्र-वायु-जल-ताप पाकर वृद्धि करता है।

खाद्य पदार्थ एकत्र करने की विधि :

बीज अपने बीजपत्रों के रचना, आकार व अंकुरण के आधार पर कई विभिन्न संज्ञायें प्राप्त करता है। यथा :

बीज पत्र : जब बीज पहले बार निकल कर हरे रंग के पत्र का स्वरूप धारण करता है तो इसका नाम वीजपत्र या एपीजियल[१] होता है।

२ : अधःस्थ पत्र : जब बीज पत्र पृथ्वी के अंदर ही रहे आते हैं तो इनकी संज्ञा अधःस्थ पत्र या हाइपोजियल[२] होती है। इनमें पर्याप्त भोजन होने के कारण बीज पत्र को पत्र की तरह कार्य करने की आवश्यकता नहीं होती।

कुछ बीजों में खाद्य पदार्थ उनके द्विदल में ही होते हैं कुछ में पृथक भी होते हैं। यथा : मटर, सेम व चने में दल के साथ ही खाद्य पदार्थ रहता है और एरंड, तुवरक व जैपाल में दल पृथक होता है और जिनमें खाद्य पदार्थ अलग रहता है उनको एलब्युमिनस[३] या इंडोस्परमिक बीज कहते हैं। जिनमें खाद्य पदार्थ बीज पत्र में ही रहता है उनको परिपुष्ट बीज या एक्स अलब्युमिनस[४] बीज कहते हैं।

१—Epegeal. २—Hypogeal, ३—Albuminous or Endospe-
rmic, ४—Exalbuminous.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एकपत्रीय बीज : एकपत्रीय बीजों में मक्का सब से सरल उदाहरण है। इनमें खाद्य पदार्थ सदैव बीज पत्र से पृथक ही एकत्र होता है। इनमें भ्रूण व बीज पत्र की स्थिति सदा विशेष होती है। शेष भाग खाद्य पदार्थ से भरा रहता है। मक्का के एक बीज का अनुलम्ब च्छेद लें तो रचना साफ दिखाई पड़ती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मूल व कंद के विषय की आवश्यक जानकारी

मूल को परीक्षार्थ तैयार करने की विधि।

औषधि के निमित्त जो कंद या मूल मिलते हैं वे प्रायः शुष्क, कठिन और झुर्रीदार सिकुड़े हुये मिलते हैं। इनसे ठीक द्रव्य की स्थिति का पता नहीं चलता अतः उसे परीक्षोपयोगी बनाना पड़ता है। क्योंकि बहुत मे बाज़ारू द्रव्य रंगे हुए या व्यापारिक विधि से तैयार किये जाते हैं क्योंकि वैसा न होने पर व्यापारी वर्ग नहीं लेता। अस्तु जो भी मूल मिलते हैं वह इस प्रकार बनाये जाते हैं कि वे स्थायी रक्खे जा सकें। और बाजार में बेंचे जा सकें। अतः उनको उपयोगी बनाकर परीक्षा की जाती है। इसकी सामान्य विधि यह है जैसा कि नीचे दिया जा रहा है।

१ : यदि कंद या मूल बाजार में लिया गया है तो शुष्क व आर्द्र दोनों प्रकार का मिलता है। आर्द्र में तो कोई बात नहीं होती, काट कर भीतर के तत्त्व देखे जा सकते हैं। शुष्क होने पर उसे कम से कम १२ घंटे पानी में रखकर फूल जाने देना चाहिये। ताकि उसके च्छेद लिये जा सकें।

२ : मूल यदि कंद है तो वह सरलता से फूल जाता है, यदि कठिन है यथा पुनर्नवा आदि तो उसे २४ घंटे पानी में डुबा कर रखना चाहिये ताकि वह मृदु हो जाय और कार्य के योग्य हो सके और उसके व्यतस्त व लम्बाई में च्छेद लेकर भीतर की परीक्षा की जा सके।

३ : तंतु कठिन सूत्र वालों का अलकोहल या अम्ल मिश्रित द्रव में डाल कर कई दिन भिगोते हैं और तब वह मृदु बनता है नहीं तो उसे अम्ल द्रव में रख कर उबाल लेते हैं और तंतु को मृदु बनाते हैं।

४ : च्छेद लेने के बाद उसका चित्र जैसा दिखाई देता है वैसा बनाकर उसका चित्रण करते हैं और क्रियात्मक की पुस्तिका में इस का सैंपल भी रख लेते हैं। ड्राइंग पेपर पर इसका चित्र बनाकर के रखते हैं ताकि परीक्षक या निरीक्षक देखते समय देखकर उसकी सचाई जान सकें।

५ : पहले पहल असली द्रव्य का चित्रण करना चाहिये और फिर उसके खंड का।

६ : रचना में विशेष कोई वस्तु दिखाई पड़े और उसका संबंध औषधि से हो तो उसका विवरण देना आवश्यक होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

७ : कभी-कभी विशेष रचना को चित्रित करने के लिये उसको केशरिया रंग या अन्य रंगों में रंगना पड़ता है। अतः इसका भी ध्यान रखना चाहिये।

८ : उसके आकृति का विवरण व रस, गंध, वर्ण का भी विवरण देना उचित है।

९ : विभिन्न प्रकार की परीक्षा के लिये जहां पर आवश्यकता हो उसे वहाँ पर करके देखना भी चाहिये। जैसे : पिष्ट या स्टार्च की परीक्षा, तैल की परीक्षा, सुगंधित तैल या अन्य वस्तु की परीक्षा आदि।

इस प्रकार आदि से अंत तक का विवरण अच्छी तरह विवरण पत्र में आ जाना चाहिये।

हरिद्रा का कंद कुरकुमाह्राइज़ोमा।
(CURCUMA RHIZOMA)

नाम : हरिद्रा निशा, रजनी।

वर्ग : आर्द्रकादि।

गण : चरक : कुष्ठघ्न, लेखनीय, कंडूघ्न, विषघ्न, शिरोविरेचन, तिक्त स्कंध।

सुश्रुत : हरिद्रादि, मुस्तादि, श्लेष्म संशमन।

प्राप्ति : बाजार से हरिद्रा के सूखे हुए कंद मिलते हैं। यह द्रव्य भारत में, मलाया से खेती करके प्राप्त होता है। इसका नाम कुरकुमा डोमिस्टिका भी है। क्योंकि अधिकतर यह घरों में मसाले के रूप में काम आती है। भारत में इसका औषधि के लिये भी प्रयोग होता है।

संग्रह : इसकी पुत्रिकायें शीत ऋतु में बो दी जाती हैं। धीरे-धीरे पौधा निकल आता है और कुछ काल के बाद यह बढ़ कर मूल में कंद की आकृति का परिवर्तित मूल देता है जो कि कांड का रूपान्तर होता है। पुष्ट होने पर इसे निकाल लेते हैं और मूल रहने देते हैं। इस मूल से पुनः दूसरा कंद निकल आता है और पहले वाले से पतला होता है। इसको उबाल कर सुखा देते है। व्यापारी इसमें पुनः हल्दी का पीला रंग करके बाजार में रखते हैं।

आकृति : प्राथमिक कंद मोटा और स्थूल होता है (यथा–चित्र ५६)। द्वितीय कंद पतला और लम्बा नोकीला होता है। (चित्र ५७) जब यह आर्द्र होता है तब ठीक आर्द्रक कंद की तरह दिखाई पड़ता है। इसका वर्ण पीला चमकदार भूरे रंग का होता है। कंद के ऊपर कई गोल-गोल धारियां चौड़ाई की दिशा में होती हैं। जो पत्र के चिह्न के अवशिष्ट रूप में होती हैं। जब पत्रावरण इससे पृथक किया जाता है तब बन जाती हैं। इस पर छोटे-छोटे कंद के उभार

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दिखाई देते हैं जो प्रारम्भ में मोटे आगे जाकर पतले हो जाते हैं। इसके ऊपर की त्वचा को हटाने पर नीचे से कुंकुम की तरह का वर्ण दिखाई पड़ता है। इन कंदों की लम्बाई ४ से ७ सेंटीमीटर, मोटाई एक से दो सेंटीमीटर होती है।

चित्र ५६ प्राथमिक हरिद्रा

चित्र ५.७ द्वितीयक कंद

इसमें एक प्रकार की सुगंध आती है। जो आम्र गंधी होती है और कर्पूर से मिलती-जुलती होती है। सूखने पर यह हरित पीत वर्ण के दिखाई देते हैं। बाहर की त्वचा सूखने के कारण सिकुड़ जाती है। स्पर्श में खुरदरी लगती है। इसका च्छेद लेने पर निम्न रूप दिखाई पड़ता है।

व्यतस्तछेच्छदन : वाह्य त्वचा का एक आवरण चारों सरफ रहता है जो आर्द्र में पतला और बादामी रंग का होता है। सूखे हुए में यह पीत वर्ण का दिखाई देता है। द्वितीय स्तर : यह मोटा और पीले केशरी रंग का होता है। इसके बाद तृतीय स्तर : भीतर का घन भाग और सौत्रिक रचना से युक्त होता है।

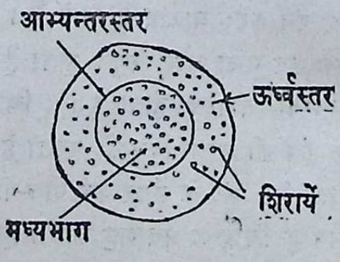

चित्र ५८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिमाण : एक कंद का परिमाण करीब दो-सौनब्बे ग्रेन होता है। आयाम दो इंच और चौड़ाई पौन इंच होती है। इसका परिणाह ढाई इंच होता है।

वर्ण विज्ञान : आर्द्रकंद का बादामी वर्ण का। सूखे का पीत वर्ण का। कषे, पीत। भंगे, पीत। चूर्ण, पीत। क्वाथ, पीत। तेल व घृत : पीत हरित वर्ण।

विलेयता : यह वारि, तैल व घृत में पर्याप्त घुलनशील है।

रस परीक्षा : स्वाद में तिक्त कटु।

गंध परीक्षा : मृदु व मनोहारि आर्द्र कंद में। शुष्क में एक विशिष्ट गंध।

स्पर्श : शीत, श्लक्ष्ण, कठिन, गुरु।

शब्द परीक्षा : भग्न कालीनचट। ज्वलनकालीन चटचट।

वर्ग : प्रायशः कटु व तिक्त होने से तैजस वर्ग का है।

गंधपलाशी : हेडिचियमस्पीकेटम्।

नाम : गंधपलाशी, (Hedechiam spicatum)

वर्ग : आर्द्रकादि : स्किटेमिनेसी(Scetaminaceae)

चरक : श्वासहर, हिक्का निग्रहण।

आकृति विज्ञान : यह गंधपलाशी का मूल है जो कांड का रुपांतरित स्वरूप है। उसका आकार आर्द्रक के कंद की तरह होता है। बाजारों में यह छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में मिलता है। सूखा हुआ श्वेत वर्ण का दिखाई पड़ता है। इसके ऊपर हल्के श्वेत पीत वर्ण का एक आवरण रहता है। नीचे इसके कंद का भाग होता है। इसके ऊपर यत्रतत्र उपमूल के चिह्न दिखाई देते हैं। शुष्क कटे हुए खंडों में ऊपर की त्वचा खुरदरी लाल वर्ण की भूरे वर्णयुक्त होती है। पूरे कंद पर दो-तीन गांठें दिखाई पड़ती हैं। इस पर गोलाकार चिह्न, पत्र वृंत के आवरण के दिखाई देते हैं। भीतर कंद का भाग श्वेत वर्ण का होता है। आर्द्र कंद काटने पर भीतर से श्वेत भाग दिखाई देता है।

च्छेदन विवरण : व्यत्यस्त च्छेद लेने पर इसमें दो भाग दिखाई पड़ते हैं।

वाह्य भाग : यह घूसर सा भाग है जो चारों ओर किनारों पर व्याप्त है।

मध्य भाग : यह श्वेत तथा अधिक भागों में व्याप्त है।

परिमाण : आयाम आधा इंच, विस्तार डेढ़ इंच, मोटाई चौथाई इंच।

वर्ण : प्राकृत वर्ण श्वेत। कषेव भंगेश्वेत, चूर्ण, श्वेत भूरा।

क्वाथ, धूसर।

तैल, घूसर पीताभ।

घृत, पीताभ धूसर। ज्वाला, रक्त पीत।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत् विलेय।

रसविज्ञान : प्रधान रस तिक्त, अनुरस कटु।

गंध विज्ञान : उग्र सुगंध।

स्पर्श विज्ञान : कठिन, खर, रुक्ष, गुरु।

शब्द परीक्षा : अभंगुर। भग्नकालीन शब्द, चट्।

वर्गविनिर्णय : प्रायशः तिक्त व कटु होने से यह तैजस वर्ग का है।

कटुकी परिचय : (Gen-tiana Lutea.)

प्राप्तिस्थान : कटुकी यह कटुकी के क्षुप 'जेंशियाना ल्यूटिया' नामक का मूल होता है। यह बहुवर्षीय क्षुप के रूप में अधिक से अधिक ३ फीट तक ऊँचा होता है। वास्तव में यह मूल, काण्ड के परिवर्तित रूप होते हैं। सात हजार से अधिक ऊँचाई के हिमालय की चोटियों पर तथा चीन तिब्बत दक्षिणी यूरोप में तथा एशिया माइनर में पाया जाता है। हिमालय के आसपास के स्थलों में तथा देवबंद के ऊपर अधिक पाया जाता है। यूरोप में पायरेलिस, जूटा व ओसजिस में अधिक मिलता है।

संग्रह : इसके पौधे जब दो से पाँच वर्ष तक के आयु के होते हैं, तो इनके जड़ों को खोद कर संग्रह करते हैं।

इसके संग्रह करने का समय मई से अक्टूबर तक होता है। बाद में भी इसका संग्रह किया जाता है किन्तु भूमि के कड़ी हो जाने से खोदना कठिन होता है। यह दो प्रकार का होता है। श्वेत तथा पीत।

कटुकी :

भेद : श्वेत वर्ण का मूल उखाड़ने के बाद सुखा देने पर प्राप्त होता है। दूसरा बाजारों में लाल या पीले रंग का मिलता है। यह कृत्रिम रूप से तैयार किया जाता है यथा :

विधि : पहले कटुकी के मूल और शाखाओं को एकत्र करके एक बहुत बड़ा ढेर कर लेते हैं। इसके ऊपर चारों तरफ मिट्टी डाल कर एक परता-सा बना देते हैं और कुछ समय तक छोड़ देते हैं। जब यह अपनी गरमी से पक कर लाल या पीले वर्ण का हो जाता है तब इसकी मिट्टी हटा कर इच्छानुसार छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं। पहले इसे खुली हवा में रखते हैं पश्चात् गृह छाया में सूखने देते हैं। इस प्रकार सुखा देने से यह पहले से गहरे रंग की हो जाती है। इसकी तिक्तता कुछ कम हो जाती है। और इसमें से एक विशेष प्रकार

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

की गन्ध आने लगती है। कुछ भारतीय चिकित्सकों को छोड़कर यह शुद्ध कटुकी सबको लभ्य नहीं है। यूरोप में तो श्वेत कटुकी के नाम से कोई जानता तक नहीं।

भारतीय कटुकी पिकरोहिजा कुर्रोभी इसी प्रकार से तैयार होती है। किन्तु इसकी शाखायें पतली होती हैं। वर्ण पीला होता है।

ऐतिहासिक विवरण : कटुकी का ज्ञान भारतवर्ष को ईस्वीय सन् से २००० वर्ष पूर्व हो चुका था। आयुर्वेद की सर्वप्राचीन पुस्तक चरक में भेदनीय, दीपनीय, लेखनीय, स्तन्यशोधन व तिक्त स्कंध में तथा सुश्रुत ने पटोलादि, पिप्पल्यादि व मुस्तादि गण में पाठ किया है तथा चिकित्सा में ६० या ७० स्थानों पर इसका पाठ किया है। इसी प्रकार सुश्रुत, चरक और वाग्भट्ट ने भी चिकित्सा में बार-बार इसका पाठ किया है। भारतीय निघंटुओं में भी इसका पाठ बार-बार आया है। कटुकी का ज्ञान संभवतः डिस्कारोइड्स और प्लीनी को भी नहीं था। यूरोप में इसका ज्ञान मध्ययुग में हुआ है। क्योंकि इनके लिखे हरबल में इसका प्रयोग नहीं मिलता। भारतीयनिघंटु धन्वन्तरिनिघंटु, राजनिघंटु, मदनपालनिघंटु, भावप्रकाश तथा अन्य निघंटुओं में इसका गुण व दोष सब वर्णन किया हुआ पाते हैं।

परिचय : कटुकी के कांड ही मूल रूप में परिवर्तित हो कर कटुकी कन्द या ह्राइजोम का स्वरूप धारण करते हैं।

यह पतले, गोल और चार सेंटीमीटर के व्यास के होते हैं। इसके मूल का व्यास एक सेंटीमीटर का होता है। प्रारम्भिक प्रधान मूल से ३ या ४ वायवीय कांड निकलते हैं। यही कालान्तर में मूल का रूपान्तर प्राप्त करते हैं। ताजी कटुकी का मूल श्वेत, मांसल और गन्धहीन होता है। व्यापारिक कटुकी में इसकी पतली शाखायें होती हैं जिनको छोटे-छोटे टुकड़ी में जो १० से २० सेंटीमीटर लम्बे १ से ३ व्यास के होते हैं काट करके बनाते हैं। बाहरी स्तर पीले भूरे वर्ण का होता है। मूल से काण्ड बड़े और कुछ स्थूल होते हैं। इन पर पत्रों के आवरण के अवशिष्ट चिह्न वृत्ताकार बने रहते हैं। सुखाने पर यह झुर्रीदार हो जाते हैं। पूर्ण रूप से सुखाने पर यह भंगुर तैयार हो जाता है। किन्तु बाद में वातावरण की आर्द्रता पाकर यह कुछ दृढ़-सा हो जाता है। उस समय इसका स्वाद मधुर और सुगंध अच्छी आ जाती है। पश्चात् इसका स्वाद तिक्त हो जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सूक्ष्म परीक्षण : इसके कांड की चौड़ाई में च्छेदन करके देखें तो ज्ञात होगा कि नारंगी वर्ण का भूरा त्वक् दिखाई पड़ता है। नीचे के भाग में छिद्र दिखाई पड़ते हैं। इसके बाद का भाग निःसार होता है। केवल बीच में मूल का सारभाग मिलता है। ध्यानपूर्वक देखने पर इसमें ४ से ६ पक्तियां पतले स्तर से कार्क सेल के दिखाई देते हैं। जिन के बीच-बीच कांड का कैम्बीयम मोटा दिखाई पड़ता है। तैल ग्रन्थियां और सूक्ष्म कैलसियम आक्ज़लेट के सूच्याकार सेल दिखाई पड़ते हैं। इसमें कोमल फ्लोयम के भाग भी दिखाई पड़ते हैं।

संगठन : इसमें तिक्त पदार्थ बिटर ग्लुकोसाइड, शर्करा, एक पीला कणदार, अम्लजेंशियनिक एसिड, स्निग्ध-द्रव्य, पेक्टिन, कैलशियम आक्ज़लेट और कुछ स्टार्च का भाग होता है।

टारनेट के मत से १९०५ ताजी कुटकी में दानेदार ग्लूकोसाइड जिन्हें जेंशियोपेक्रिन, जेंशियन, एमारफस ग्लूकोसाइड और जेंशियामेरिन मिलता है। ब्रिन्डेल १९२० के अनुसार शुष्क करने और फरमेंट करने पर इसमें का जेंशियोपेक्रिन अदृश्य हो जाता है। इनका मत है कि सुखाते समय हेक्साट्रियोज, जेंशियोनोज और सुक्रोज कम या अदृश्य हो जाते है। इसके सूखने पर शर्करा जातीय द्रव्य रहते है :

अतः जब कटुकी को एकत्र करके आसुत करते हैं इसमें का शर्करीय भाग अलकोहल व कार्बनडाइक्साइड में बदल जाता है। सावधानी से तैयार करने पर कटुकी से ४० प्रतिशत जल का घुलनशील तत्त्व मिलते हैं। किन्तु अधिक फरमेंट होने पर ये तत्त्व कम हो जाते है।

अन्य जातियाँ : कटुकी के जाति के और भी कई पोधे पाये जाते हैं। यथा :

१ : जेंशियन परप्यूरिया। जें० पेनोनिका। जें० पैंकटाटा। इनमें भी वही तत्त्व पाये जाते हैं किन्तु कम और देखने में इनका आकार पतला होता है। भारतीय कटुकी जेनशियाना कुर्रो पिक्करोहिजाकुर्रो की कटुकी के बदले लेते हैं।

मिश्रण : यद्यपि यह सब जातियां पृथक्-पृथक् होती हैं फिर भी असावधानी से इनका मिश्रण हो जाना सम्भव है। इसमें रुमेक्स अल्पाइनस का मिश्रण सम्भव है। क्योंकि यह स्वाद लेने में ऐसा ही तिक्त होता है। कभी-कभी वेराट्रम अल्बम का मूल जो एक खतरनाक द्रव्य है इसका मूल मिला दिया जाता है। इसे सरलता से पहचाना जा सकता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कटुकी Gentiana Lutea.

कटुकी : कुटकी या कट्वी।
गण, चरक : भेदनीय, लेखनीय, स्तन्य शोधन, तिक्तस्कंध।
सुश्रुत : पटोलादि, पिप्पल्यादि, मुस्तकादि।
प्रा० गण : तिक्ताकुल स्क्रोफुलेरियेसी।

आकृति विज्ञान : कटुकी का कांड परिवर्तित होकर मूल के रूप में बाजार में आता है। इसे कटुकी का मूल कहते हैं। इसका आकार वर्तुल नलिकाकार धूसर वर्ण का होता है। यह कुछ कठिन व भंगुर होता है। इसका कांड मूल से निकल कर कुछ दूर भूमि में समानान्तर चल कर फिर ऊपर को उठता है। इसके कांड पर ही पत्र निकलते हैं जो कांड को आवेष्ठित करके रहते हैं। इसके अवशेष कांड पर दिखाई पड़ते हैं। इस पर कई पत्र चिह्न दिखाई पड़ते हैं। पत्र कोण से या अक्षि भाग से पुष्पदण्ड निकलता है। कांड के साथ इसके अवशेष भी पाये जाते हैं। ऊपर से स्पर्श में यह रूक्ष होती है इसका वर्णं पीत, भूरे रंग का होता है। किसी-किसी में यह कृष्णता लिये भी दिखाई पड़ता है। इसमें एक प्रकार की सुगन्ध भी पाई जाती है।

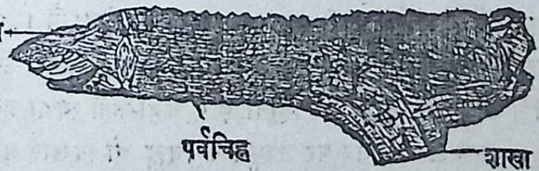

चित्र ५९

व्यतस्त च्छेद : च्छेद देने पर बाहर से भीतर की तरफ निम्न भाग दिखाई पड़ते हैं :

१ : बाह्य त्वक् : यह श्याव धूसर वर्ण का १ मिली मी० मोटा होता है।

२ : आभ्यंतर त्वक् : गहरे भूरे वर्ण का २ से ४ मि० मी० होता है।

३ : काष्ठ भाग : यह श्वेत वर्ण का होता है इसमें श्याव वर्ण की पाँच रेखायें दिखाई पड़ती हैं जो चौड़ाई में साइकिल के तीली की तरह होती हैं।

४ : आभ्यंतर भाग : मज्जा का भाग जो बीच में होता है गहरे भूरे वर्ण का श्यावाभ दिखाई देता है।

अनुलम्ब भाग : इसमें भी वही अंश दिखाई पड़ते हैं परन्तु उनका रुख भिन्न होता है यथा : बाह्य त्वक्, अभ्यंतर त्वक्, काष्ठ भाग, मज्जा भाग।

001882

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण : घूसर, श्याव वर्ण। कषे व भंगे:—कृष्ण। चूर्ण, श्यावाभ। क्वाथ व तैल में रक्त वर्ण। घृत में पीत। ज्वाला में रक्त।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषद्विलेय।

रस परीक्षा : अति तिक्त।

गन्ध : मृदु सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : लघु, कठिन, खर, रुक्ष।

शब्द परीक्षा : भग्न काल के कुट शब्द। भंगुर।

वर्ग निर्णय : अति तिक्त होने से तैजस द्रव्य है।

कर्चूर बनाम गंधपलासी (Curcuma Zedoaria)

नाम : कुरकुमा ज़ेड़ोरा।

वर्ग : आर्द्रकादि (Scetaminaceae)

भावप्रकाश—कर्पूरादि वर्ग।

आकृति विज्ञान : यह आर्द्रक जातीय कर्चूर भूमिगत कन्द होता है। जो वाजारों में कटे हुए सूखे टुकड़ों के रूप में मिलता है। यह देखने में गोल व चिपटे होते हैं। इसका ऊपरी भाग कुछ खुरदरा होता है। यह खुरदरापन अनियमित गर्त व धारियों के कारण होता है। कहीं-कहीं ऊपरी त्वचा के सिकुड़ जाने से झुर्रियां दृष्टिगोचर होती हैं। कहीं-कहीं त्वचा हटी हुई दिखाई पड़ती है। इसके ऊपरी सतह पर उपमूल के चिह्न भी दिखाई पड़ते हैं। इसके ऊपर की त्वचा धूसर वर्ण की होती है। कई स्थानों पर त्वचा के हट जाने से नीचे का भाग स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

इसका कटा हुआ भाग समतल है। दोनों पृष्ठ समतल हैं कहीं पर एक पृष्ठ उठा हुआ है।

अनुप्रस्थ च्छेद : चौड़ाई में काटने पर इसमें ३ भाग दिखाई पड़ते हैं।

१ : बाह्य त्वक् : बहुत पतला छिल्का की तरह है। इसका वर्ण धूसर है।

२ : आभ्यंतर भाग : पतली त्वचा के नीचे अधिक विस्तृत व मांसल भाग है। इसका भी वर्ण धूसर-सा है।

३ : मध्य भाग : यह बीच का कठिन भाग है। इनका भी वर्ण धूसर-सा ही है। यह अधिक भाग पर व्याप्त है। यह उपर्युक्त भागों से कठिन भाग है। आर्द्र कन्द में यह भाग कुछ मृदु होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिमाण :

वर्ण : प्राकृत वर्ण पीताभ धूसर। कषे : श्वेत धूसर। भंगे : धूसर पीत। चूर्णे : धूसर। क्वाथे : पीताभ। तैले : पीताभ। घृते : पीत। ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : यह वारि, तैल व घृत में विलेय है।

रस : प्रधान रस तिक्त। अनुरस : कटु।

गन्ध : शुष्क : सुगन्ध, मृदु, हृद्य। आर्द्र : सुगन्ध। धूपन : मृदु सुगन्ध।

स्पर्श : कठिन, खर, रूक्ष, गुरू।

शब्द : भग्नकालीन : चट।

गण विनिश्चय : प्रायशः तिक्त, कटु रसत्वात आग्नेय वर्ग।

जटामांसी नारडोसटेचीज जटामांसी (Nordostachys Jatamansi.)

नाम : जटामांसी, भूतजटा, भूतकेशी।

वर्ग : तगरादि वर्ग। (Valerianaceae)

चरक : संज्ञास्थापन।

आकृति विज्ञान : जटामांसी का बाजार में मिलने वाला द्रव्य जटामांसी के कांड का परिवर्तित मूल है। यह लम्बा शिफाकृति, घूसर वर्ण एवं रोमावृत्त होता है। आभ्यन्तर रचना में यह सुषिर नलिकाकार प्रतीत होता है। यह वर्ण में ईषत्पांडु वर्ण का होता है। इस पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर चक्राकार आवर्त दिखाई पड़ते हैं। जो पत्रवृन्तावरण के चिह्नावशेष के प्रतिरूप हैं। इस प्रकार इसमें छोटे-छोटे पर्व बनते गये हैं। पत्रवृन्तविशेष लगे रहने से यह स्थूल होता जाता है। जैसे-जैसे यह आगे-आगे बढ़ता जाता है आगे को पतला बनता जाता है। इसके चारों तरफ घने रोमावरण लगे होते हैं। ये लोम घने मोटे केश के आकार के होते हैं इस कारण भूतकेशी या जटामांसी कहते हैं। रोम मृदु, रुक्ष व बहु संख्या में हैं।

यांत्रिक परीक्षा : कांड पर से लोमाकृति रचना को पृथक् करने पर उसका कांड मिलता है जो कि क्रमशः प्रारंभ से आगे को पतला है। ऊपर कांड पर पत्रावशेष के चिह्न हैं। व्यतस्त च्छेद लेने पर ऊपर पीला आवरण मिलता है उसके बाद कुछ मज्ज भाग होता है। आगे को सुषिरता रहती है। इसका प्राकृत वर्ण पीत धूम्राभ है। भग्न करने पर पीताभ दिखाई पड़ता है।

परिमाण : भार ७ गुञ्जा, दैर्घ्य ढ़ाई इंच, परिणाह एक इंच।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण बाहर से धूसर वर्ण। अन्तः घूसर व पिंगल।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कषे : घूसर। भंगे : अरुणाभ। चूर्ण : श्यामपीत। क्वाथे : ईषत् श्याव रक्ताभ। तैले : श्याववर्ण। घृते : ईषत् श्याव वर्ण। ज्वाला-पीता।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत् विलेय।

गन्ध परीक्षा : शुष्क : मृदु गन्ध, सुगन्ध हृद्य। धूपन में : मृदु सुगन्ध व हृद्य।

रस परीक्षा : तिक्त।

स्पर्श परीक्षा : रुक्ष, लघु, खर।

शब्द परीक्षा : अभंगुर। ज्वलनकालीन : अतिमंद चरचराहट।

गण विनिश्चय : तिक्त रस प्रधान होने से यह द्रव्य तैजस वर्ग का है।

हिरण्तुत्थ या सुरंजान।

कोलचिकम् ल्यूटियम् (Colchicum Luteum)

नाम : सुरंजान।

वर्ग : सेवती वर्ग। (Libiaceae)

परिचय : यह एक प्रकार का कंद है जो पलांडु की तरह होता है। इसके तीन भेद होते हैं। श्वेत, पीत व कृष्ण।

श्वेत सुरंजान स्वाद में मधुर और श्रृङ्गाटक की तरह होता है। अतः इसे मधुर सुरंजन या सुरंजान शीरीं कहते हैं। पीत सुरंजान कुछ आकार में छोटा तिक्त स्वादयुक्त होता है। इसे सुरंजाने तल्ख़ कहते हैं। कृष्ण सुरंजान आकार में पूर्ववत् किन्तु वर्ण में काला होता है। यह विषाक्त होता है। हकीम लोग मधुर सुरंजान को ही भीतर प्रयोग के लिए लेते हैं। कटु का प्रयोग बाह्य ही होता है। अधिक लोग कटु का ही भीतरी प्रयोग करते हैं क्योंकि यह अधिक गुणकारी होता है।

प्रयोगार्ह : प्रयोग में इसका प्राचीन कंद ही लाभप्रद होता है। एक वर्षीय कंद अधिक लाभप्रद नहीं होता।

स्थान : काश्मीर, पंजाब, अफ़ानिस्तान, पश्चिमोत्तर प्रदेश व हिमालय के शीत प्रदेश में भारतीय सुरंजान होता है। मीठा सुरंजान ईरान से आता है। मध्य व दक्षिणी यूरोप, आयरलैंड, इटली व मिश्र में इसकी दूसरी जाति पाई जाती है। इसे कोलचिकम आर्मनेल (Colchicum Armnel) कहते हैं। कोल्चिकम ल्यूटियम भारतीय या देशी सुरंजान है।

क्रियात्मक शिक्षायें : सुरंजान का कंद कठिन आवरण युक्त होता है। इसे ग्रीष्म ऋतु में संग्रह किया जाता है। इसके छोटे कंद का आकार सिंघाड़े की

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तरह अर्ध वृत्ताकार होता है। बड़ा कंद अर्ध वृत्ताकार होता है। इसके ऊपर भूरे रंग के पतले आवरण आवरित किये रहते हैं। यह मूल में मोटा और ऊपर

चित्र ६० कंद

चित्र ६१ पुष्पदंड

चित्र ६२ पत्र व पुष्प

को पतला होता जाता है। अधो भाग में चौड़ा और नीचे मूल की सूक्ष्म जड़ें होती हैं। पुष्प दंड इसके बीच से निकलता है।

क्रियात्मक शिक्षायें।

१ : सुरींजान के एक कंद की आकृति खींच कर उसके ऊपर की पतली स्तरों के आवरण व पुष्प दंड का अध्ययन कीजिये।

२ : भूरे रंग के वाह्य आवरण को हटाइये और लंबाकृति में एक च्छेद लीजिए।

३ : नवीन व प्राचीन कंदों को आमने-सामने रख कर तुलना करिए।

४ : चौड़ाई में एक च्छेद लेकर इसमें उपत्वक् अन्य त्वगावरण सौत्रिक मंडल उभार का प्रदर्शन करिये।

सुरंजान कोल्चिकम (Colchicum)

नाम : सुरंजान, हिरण्य तुत्थ।

वर्ग : सेवती वर्ग।

विवरण : बाजारों में सुरंजान का शुष्क कटा हुआ कंद का टुकड़ा मिलता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। जो आकार में वृत्ताकार होता है। इसके स्तर ऊपर की तरफ उन्नतोदर पीत-श्वेत वर्ण का आवरणरहित स्निग्ध होता है। बाह्य स्तर पर आवरण का कुछ अंश शेष रहता है। जो भूरे वर्ण होता है। ऊपर से यह रक्त-पीत वर्ण का कठिन व शुष्क दिखाई पड़ता है। भीतर ईषत् श्वेत पीत वर्ण के अर्ध वृत्ताकार स्तरों से युक्त खंड मिलते हैं। नीचे मूल में जड़ों के निकलने के चिह्न अवशिष्ट हैं। जो कुछ दबे हुए कृष्णाभ वर्ण के हैं। सबसे ऊपर का स्तर स्थूल और क्रमशः नीचे पतला होता जाता है। यह श्वेतसार युक्त जान पड़ते हैं।

लम्बच्छेद तथा व्यस्तच्छेद : लम्बाई में च्छेद लेने पर इसमें लम्बाई में तथा व्यत्यस्तछेद लेने पर चौड़ाई में लगे स्तर दिखाई पड़ते हैं।

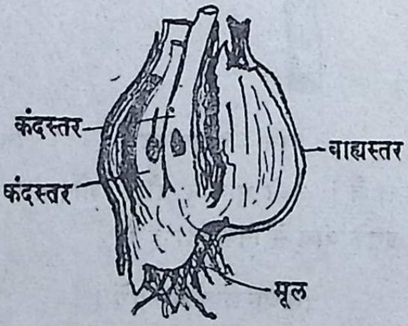

चित्र ६३ च्छेदित सुरंजान

भार : १०५ रत्ती, दैर्घ्य १.५ इंच आयाम : १.७५ इंच। उत्सेध : ७ इंच।
वर्ण : शुष्क, बाहर से श्वेत। चूर्ण : गुलाबी वर्ण। क्वाथ : आरक्त धूम्र वर्ण।
घृत व तैल : पीत। ज्वाला : पीतवर्ण।
विलेयता : वारि में ईषत्।
गंध : मृदु गंध।
रस : व्यक्त रस तिक्त। अनुरस : ईषत्कटु व मधुर जिह्वा पर कंडूयन।
स्पर्श परिज्ञान : कठिन, खर, रूक्ष।
शब्द परीक्षा : भंगुर। भग्न काल में कट् शब्द।
वर्ग परिज्ञान : कटु व तिक्त रसप्रधान होने से यह तैजस वर्ण का है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शतावरी।

एसपैरेगस रेसिमोसस (Asparagus Raeemosus)

नाम : शतावरी।

वर्ग : रसोन कुल (Liliaceae)

गण : चरक : वय : स्थापन, बल्य, मधुरस्कंध।

सुश्रुत : विदारिगंधादि, कंटक पंचमूल, पित्त प्रशमन।

आकृति विज्ञान : प्रस्तुत परीक्ष्य द्रव्य शतावरी कंद है। यह श्वेत घूसर वर्ण का वल्कल युक्त सीधे लम्बे कनिष्ठिका मूल की तरह मोटे कंद होते हैं। शुष्क हो जाने पर इसमें ऊपर झुर्रियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। लम्बाई में इस पर धारियाँ होती हैं। इनके नीचे सीतायें होती हैं। ऊपरी भाग पर गेंहुए वर्ण के आवरण होते हैं। नीचे श्वेत वर्ण का मांसल भाग रहता है। इसके केन्द्र में एक श्वेत पीताम सूत्र पाया जाता है। आर्द्रावस्था में त्वचा, मज्जा और सूत्र तीनों अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। इसके वाह्य भाग पर सूक्ष्म उपमूलों का चिह्न दिखाई देता है। आर्द्रावस्था में इसकी त्वचा सरलता से हटाने पर अलग हो जाती है।

यांत्रिक परीक्षा : अनुलम्ब च्छेद लेने पर पहले ऊपर की त्वचा बाद में मज्जा का भाग और भीतर सूत्र का भाग दिखाई पड़ता है।

परिमाण : भार ५० रत्ती। दैर्घ्यं। ३ से ६ इंच तक। व्यास : ·५ इंच।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण : बाहर से धूसर भीतर श्वेत। कषे : श्वेत धूसर। भंगे : श्वेत धूसर। चूर्ण : रक्ताभ श्वेत। क्वाथ : रक्ताभ पीत। तैल व घृत : रक्ताभ ईषत्पीत। ज्वाला : पीत।

विलेयता : वारि-तैल व घृत में अविलेय।

गंध : आर्द्र सुगंध। धूपन : किंचित दुर्गन्ध।

रस परीक्षा : प्रधान मधुर, अनुरस तिक्त।

स्पर्श परीक्षा, शुष्क, कठिन, रूक्ष, लघु।

आर्द्र : मृदु, रूक्ष, शीत, स्निग्ध, पिच्छिल व गुरु।

शब्द परीक्षा : शुष्क भंगुर, आर्द्र अभंगुर।

गण विनिश्चय : मधुररसप्रधान होने से यह पार्थिव गण का होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वत्सनाभ

एकोनाइटम् टयूबर (Aconitum Tuber)

नाम : वत्सनाभ, विष, अमृत ।

स्थान : औषधि में प्रयुक्त होनेवाला वत्सनाभ, वत्सनाभ के सूखे हुये मूल को संग्रह कर बाजार में विक्रयार्थ भेजते हैं। इसकी खेती भी की जाती है और यह जंगलों में भी पाया जाता है। भारतवर्ष, जर्मनी, हंगरी, स्वीट्जरलैंड में यह जंगलों से इकट्ठा किया जाता है। किन्तु इंगलिश वत्सनाभ खेती करके ही अधिक संग्रहीत होता है। भारतवर्ष में यह कुमायूं, अलमोड़ा व देवबंद की ऊँची शिखरों पर पाया जाता है।

द्रव्य का परिचय : इसकी ६० जातियाँ पाई जाती हैं। इनमें एकोनाइटम नेपेलस की खेती इङ्गलैंड की वाटिकाओं में होती है। यह बहुवार्षिक पौधे हैं। एक जड़ से कई तत्सम कई छोटी-छोटी पुत्रिकायें जिन्हें डाटर रूट कहते हैं, निकलती हैं। इन्हें पृथक लगा देने पर पुनः वैसा ही पौधा तैयार हो जाता है। जंगली जातियों में अधिक वर्ष तक रह जाने में कंद से छोटे-छोटे कई कंद निकलते हैं। पुनः नये पौधे निकल कर बड़े कंद देते हैं। इनके खोदने का समय वसंत ऋतु तक ही है। इसके कांड ४० से ४५ सें० मीटर ऊंचे होते हैं। रोपित वत्सनाभ ३ से ४ फीट तक ऊंचा होता है। प्रारम्भ में ही पौधों से हरी पत्तियाँ निकलती हैं। यह बड़ी, चौड़ी और करतलाकार होती हैं। प्रत्येक में कई खण्ड होते हैं। प्रारम्भ में ५ से ७ खण्ड और ऊपर जाकर पत्तियाँ ३ या ४ खण्डों में विभाजित रहती हैं। नीचे के पत्र हरे रहते हैं बाद में ये पीले रंग के हो जाते हैं। कांड के ऊपर मंजरी लगती है। इसमें पुष्प लाल और बैंजनी रंग के (भोलेटाइल) ब्ल्यू रंग के लगते हैं। यह एक सप्ताह से १५ दिन में मुर्झा जाते हैं और उनके स्थान में शिम्बी लग जाती है।

इतिहास : भारतीय चिकित्सकों ने औषधि की तरह उपयोग, ईस्वी सन् से १००० वर्ष पूर्व ही इनका उपयोग किया था। भारतीय चिकित्सक इसे अच्छी तरह जानते थे। इसके देने के बाद विष के आठ वेगों का अध्ययन किया था। आधुनिक चिकित्सक इसे मध्ययुग में जान पाये और १८ वीं शताब्दी में इसका ज्ञान प्राप्त कर पाये। चिकित्सा में प्रथमबार १७६२ में स्टोर्क ने वियना में प्रथमबार प्रयोग किया था। किन्तु इससे बहुत पूर्व भारतीय जंगली जातियाँ भी इससे पूर्ण परिचित थीं वे इसे विष की तरह अपने तीरों में लगातीं और जानवरों का शिकार करती थीं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

संग्रह : भारतवर्ष में पर्वतीय जंगलों की शिखरों से वत्सनाभ व शृङ्गीक के पौधे मिलते थे। व्यापारी उन्हें संग्रह करके बाजार में भेजते थे। भारतीय

चित्र ६४

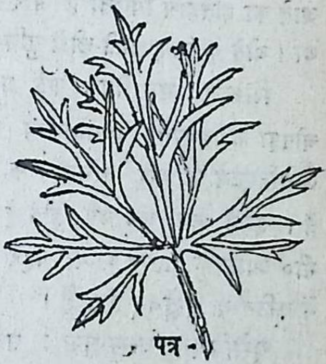

चित्र ६५

चित्र ६६

भूमि में जंगल अधिक होने से पर्याप्त मात्रा में इसकी प्राप्ति होती थी। आज भी यही क्रम है। भारत में खेती बहुत कम होती है और अधिकांश भाग जंगलों से

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राप्त हो रहा है। इंगलिश व्यापारियों ने इसकी जाति उन्नत करने के लिये अब रोपण करना प्रारम्भ किया है। होम के कथनानुसार १९२३ में इसकी खेती करने की तरफ ध्यान प्रथमबार गया था। १८९८ में बृटिश फार्माकोपिया में आने का इतिहास मिलता है और इसका संग्रह पतझड़ में करने का निर्देश हुआ था। बोने के लिए छोटी-छोटी पुत्रिकायें बीज के रूप में प्रयुक्त होती हैं।

मिश्रण : भारतीय : कई प्रकार के कंद बाजार में मिलते हैं। कर्नल चोपड़ा के अनुसार एकोनाइटम डाइनोरेजम व एको० स्पिकेटम व एको० लैसिनिएटम के कंद वत्सनाभ के कंद के साथ मिले हुए बाजार में मिलते हैं। इनमें नये मूल लगे होते हैं जो १५ सेंटीमीटर से लम्बे और ४ सें० मी० व्यास के होते हैं। यह गहरे भूरे रंग के व झुर्रीदार होते हैं। यह स्पर्श में कठिन व श्रृङ्गवत् होते हैं।

यूरोपियन वत्सनाभ : सन् १९२४ के नमूनों में एकोनाइटम कैमेरम, एकोनाइटम वेरिगेटम, एकोनाइटम पेनिकुलेटम की तीनों जातियों के पुष्प बैंजनी रंग के और जड़ें एकोना० नैपेलस से मिलती-जुलती होती हैं। कैमेरम व वेरिगेटम में प्रधान कंद व निकलने वाले कंद की लम्बाई छोटी होती है और वह प्रधान कंद में चिड़िया के शिर की तरह सटी रहती है।

एकोनाइटम स्टोरकिएनम आल्पस पर्वत में मिलता है। इसमें ३ या ४ जड़ें होती हैं। एको० लाइकोकटोन व एको० एंथस पीत पुष्प के होते हैं। कंद मिलते-जुलते होते हैं।

जापानी वत्सनाभ : यूरोपीय बाजार में जो जापानी वत्सनाभ आता है, वह एको० स्पिकेटम की जाति का होता है। इसकी जड़ें छोटी होती हैं। रंग डार्क ग्रे ब्राउनिश होता है। लम्बाई में झुर्रियाँ होती हैं। पुराने कंद पर झुर्रियाँ अधिक होती हैं। नया कंद लम्बाई में चिकना होता है। तोड़ने पर कड़ा, श्वेत वर्ण श्रृङ्गवत कड़ा होता है।

सोवियेट वत्सनाभ : १९३९ में सबसे पहले व्यापार में रूसी वत्सनाभ बाजार में आया था। इसके कंद कोणीय व तीन-चार कंद सम्मिलित रूप में अन्दर के कंद की तरह मिले थे। यह ३ सें० मी० लम्बे व डेढ़ सें० मी० चौड़े थे। इनमें अल्कलाइड की मात्रा १.४१ से १.५८ प्रतिशत था। हंगेरियन वत्सनाभ के टिंकचर में अधिक क्रियात्मक शक्ति थी।

प्रयोग : ज्वरघ्न के रूप में भीतर और वेदनाशामक के रूपमें बाहर वातव्याधि और आमवात में इसका प्रयोग होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आयुर्वेद में इसका कितना प्रयोग हुआ है, यह पृथक् से अवलोकन करिए। वास्तव में संहिताकाल से अधिक प्रयोग रसचिकित्सा के समय किया गया है।

वत्सनाभ : एकोनाइटी ट्यूबर (Aconiti tuber)।

नाम : वत्सनाभ, वच्छनाग, विष।

वर्ग : चरक व सुश्रुत : स्थावर विष।

प्राकृ० वर्ग : वत्सनाभादि : रेनन कुलेसी (Ranun culaceae)।

आकृति विज्ञान : यह पर्वतीय देश में पाया जाने वाला एक क्षुप का कंद होता है। जो ऊपर से झुर्रीदार सिकुड़न सहित काले वर्ण का होता है। ऊपर से मोटा और नीचे क्रमशः पतला होता जाता है। इसके गात्र पर छोटी-छोटी उपमूलों का अंश या चिह्न दिखलाई पड़ता है। कभी-कभी प्रधान मूल से दूसरी मूलें भी लगी हुई मिलती हैं। बाजार में मिलने वाला वत्सनाभ सूखे कंद के रूप में काले रंग के मिलते हैं जो कि रंगे हुए होते हैं। यह दो प्रकार का होता है परन्तु बाजार में काला ही मिलता है और वैद्यगण भी इसे ही पसन्द करते हैं। ऊपर का रंग भूरा काला होता है, इसके नीचे का भाग श्वेत पीताभ होता है। त्वचा बहुत पतली होती है। नीचे कंद का त्वक भाग कुछ मोटा रहता है। चक्राकार बनावट इसके इस अंश को पृथक करती है। नीचे कठिन रचना का पिष्ठमय स्टार्च का भाग होता है। श्वेत वत्सनाभ में त्वचा श्वेत ईतषपीत होती है और नीचे श्वेत वर्ण का भाग होता है।

छेद : चौड़ाई में छेद लेने पर ऊपर पतली त्वचा और नीचे उसका मोटा भाग होता है। इसके पश्चात् कंद का मुख्य भाग होता है।

लम्बच्छेद : इसमें भी वही रचना होती है।

विलेयता : यह पानी में अघिक व तेल, घृत में अघुलनशील होता है।

वर्ण : ऊपर का प्राकृतिक वर्ण भूरा काला होता है। कषे भंगे यह श्वेत पीताभ, चूर्णः धूसर होता है। क्वाथ : श्वेताभ। घृत-तेल : पीत। ज्वाला : रक्ताभ।

रस : इसमें व्यक्त रस शीघ्र नहीं ज्ञात होता। जिह्वा पर रखने पर यह चिमचिमायन करता है और बाद में शून्यता आ जाती है। अतः इसे कटु व मधुर रस वाला मानते हैं।

गन्ध : सामान्य मृदु। धूपन में ग्लानिकर गंध।

स्पर्श : कठिन, खर, रूक्ष, गुरु होता है। भंग में मसृण शृङ्गाभ कठिन।

वर्ग : प्रायशः कटु व अनुरस मधुर रहने से यह तैजस वर्ग में आता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लांगली : ग्लोरिओसा सुपर्वा (Gloriosa superba)।
प्रा : रसोनकुल (Laliaceae)।
आकृति विज्ञान : गण—उपविष।

कन्द : यह कन्दजातीय द्रव्य है। शुष्क अथवा आर्द्र दोनों अवस्थाओं में देखने पर यह द्रव्य स्निग्ध और आप्यांशपूर्ण दिखाई देता है। शुष्कावस्था में यह सिकुड़ जाता है। इस पर विषम सलवटें बनी रहती हैं। स्थानविशेष में गड़े रहने से वहाँ की मृत्तिका के संघात से नाना प्रकार की आकृति हो जाती है। वाह्य त्वचा अत्यन्त मृदु होने से स्वल्प नखक्षत से दूर हो जाती है। इस मृदाभ

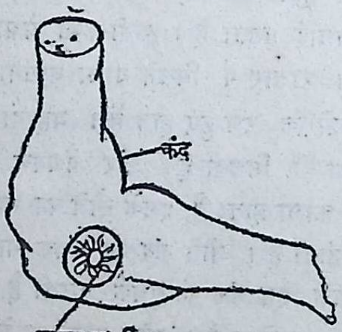

चित्र ६७

चित्र ६८

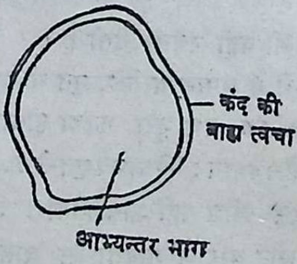

चित्र ६९

अवदात धूम वर्ण की त्वचा पर कपिश वर्ण की सलवेंट पड़ी रहती हैं। मध्य भाग धूसर वर्ण वाला श्लक्ष्ण संघातमात्र है। यह सरलता से चूर्णित हो जाता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। इसका चूर्ण भी मंदुश्लक्ष्ण होता है इसमें लगे हुए अन्य उपमूलों के चिह्न भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। बड़े कन्द के साथ एक छोटा-सा उभार भी लगा रहता है।

छेदन के बाद : वाह्य त्वचा के स्तर की अति सूक्ष्म झिल्ली के बाद मध्य से बिन्दुओं के संयुक्त भाग दिखाई देता है प्ररोहांकुर उभार के चारों तरफ विषम जाली-सी बनी त्वचा विषम उच्चावच स्थिति में निम्न भाग कपिश, उर्द्ध भाग धूसर दिखाई देता है। बिना काटे हुए भाग में रेखायें स्पष्ट होती हैं।

वर्ण : प्राकृत धूसर व कपिश होता है।

कषे—धूसर : भंगे धूसर : क्वाथ : घूसर।

चूर्ण : पाण्डु मलिन।

तेल : पीताभ

घृत : धूसर।

विलेयता : जल, तेल व घृत में ईषत् विलेय।

गन्ध : शुष्क : मन्द गंध।

आर्द्र : अम्ल गन्ध।

रस : कषायाधिक व कटु।

शब्द : भंगुर : भग्नकालीन : कटु।

प्रायस : कषाय व कटु होने से वाय्वाग्नेय ज्ञात होता है।

पुष्करमूल (Inula Racemosa)

वर्ग : भृङ्गराजादि (Cempozitae)।

गण—चरक—श्वासहर—हिक्का निग्रहण।

आकृति विज्ञान : यह पुष्करमूल नामक प्रसिद्ध वनौषधि "इनूला रेसिमोसा" नामक पौधे की जड़ का अंश है। यह पाण्डु एवं कपिश वर्ण की त्वग् युक्त मूल है। यह स्पर्श में रूक्ष, स्थूल, कठिन तथा सुगंधयुक्त मूल है। सूखने के बाद ऊपर त्वचा पर सलवटें पड़ी हुई दिखाई पड़ती हैं। किसी-किसी टुकड़े में यह ऊपर से नीचे उतरती हुई दिखाई पड़ती है तथा इनकी मध्यवर्ती परिखा भी सिकुड़न से बनी हुई साफ दिखाई पड़ती है। यह अधोगामी तथा क्रमशः ऊपर मोटा नीचे पतला होती गयी है। प्रधान मूल पर अन्य मूल प्ररोहों के चिन्ह भी दिखाई पड़ते हैं। कहीं पर मूल का परिसरीय भाग तनु और अधोभाग स्थूल होता गया है। कहीं पर तंतु भी निकले हुए दिखाई पड़ते हैं। आर्द्रावस्था में यह फूलकर पूर्वापेक्षा स्थूल दिखाई देता है। त्वचा के सलवटों में अति न्यूनता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दृष्टिगोचर होती है। ऊपर त्वचा का भाग उससे नीचे कठिन काष्ट भाग है। यह सच्छिद्र तथा आभ्यन्तर श्वेत धूम्र वर्ण का मध्यतः धूम्र वर्ण का है। किसी-किसी टुकड़े का मध्यभाग पाण्डु वर्ण का है। इसमें की छिद्र-रचना वर्तुलाकृति होती है। इन छिद्रों में टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं द्वारा परस्पर संबंध स्पष्ट होता है। मध्य बिन्दु से परिधि की तरफ रेखायें प्रसरित हैं तथा कहीं-कहीं पर छिद्र भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। आर्द्रावस्था में शिराओं के छिद्र दिखाई पड़ते हैं।

यांत्रिक रचना : व्यत्यस्त च्छेद लेने पर प्रथम ऊपर की त्वचा का भाग पश्चात् मध्य भाग दिखाई पड़ता है। त्वचा मोटी धूसर वर्ण की, रचना चक्राकार होती है। मध्य भाग से रेडियेशन बाहर की तरफ दिखाई पड़ता है।

वर्ण : प्राकृत : धूसर : कषे : श्वेत धूम्राभ।

भंगे : धूम्र पाण्डुर।

चूर्ण : मलिन श्वेत।

क्वाथ : रक्तपीत : तैल व घृत : रक्तपीत कृष्णवर्ण।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत्।

गंध : शुष्क ऊग्रगंध।

रस : प्रायशः तिक्त व कटु कषाय।

स्पर्श : कठिन, रूक्ष, कर्कश, लघु।

शब्द : अभंगुर—भग्नकालीन : कट।

गण विनिश्चय : प्रायशः तिक्त, कटु व ईषत् कषाय होने से यह आग्नेय द्रव्य है।

उशीर परीक्षा (Veteveria Zzianioidis)

प्रा०—वर्ग—यवकुल (Graminae)

परिचय : यह गोधूम वर्ग की वेरिया जायजेनियोडिस नामक उशीर के क्षुप से प्राप्त होने वाली मूलजाति की औषधि है। यह पतली-पतली दीर्घ सूत्रवत् मूल होती है। यह बाहर से पतली त्वचा द्वारा आवरित होती है। यह त्वचा पीले वर्ण की कुछ शिथिलता से भीतरी सीसक पर चढ़ी होती है। वर्ण में श्याव, पाण्डु व बादामी वर्ण की दिखाई पड़ती है। ये सूत्र क्षुप के मूल से निकले होते हैं। प्रधान मूल मोटी गांठदार और कई काण्डावरणों से आवरित होती है। आवरण हटा देने पर यह श्वेत, कठिन, स्थूल दिखाई पड़ता है। मूल त्वचा के हटाने पर भीतर पतला-सा ईषत् पीत वर्ण का सूत्रवत भाग रहता है इसमें एक

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रकार की सुगंध पाई जाती है। यह टेढ़ा-मेढ़ा अधोगामी होता है। इस पर यत्र-तत्र सूक्ष्म सूत्र भी लगे पाये जाते हैं।

यांत्रिक परीक्षा : व्यत्यस्त च्छेद लेने पर सबसे ऊपर पीले वर्ण का आवरण दिखाई पड़ता है। यह बाहर से पीत वर्ण का रूक्ष, भीतर से मसृण, ईषत् श्वेत वर्ण का होता है। ऊपर का भाग तनुकला से आवरित होता है। त्वचा में सूक्ष्म दानेदार भाग दिखाई देता है। संभवतः यह त्वगीय शिरामुख प्रतीत होते हैं। इसके नीचे का भाग काष्ठीयसूत्र कृत होता है। इसके भीतर छिद्र होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण पाण्डु, श्याव, ईषत् रक्ताभ बादामी।

कषेन : पाण्डु।

भंगेन : ईषत् श्वेत।

चूर्ण : पाण्डु श्याव :: दाहे : कृष्ण।

क्वाथ : पाण्डु।

तैल : रक्ताभ पाण्डु।

घृत : रक्ताभ पाण्डु। ज्वाला : पीत।

विलेयता : वारि, तैल, घृत में ईषत् विलेय।

गंध : सुगंध। पानी में भिगोने पर विशेष स्पष्ट सुगंधित।

रस : तिक्त।

स्पर्श : रूक्ष, लघु, मृदु, शीत।

शब्द परीक्षा : जलाने पर कदाचित चिट-चिट शब्द।

वर्ग : प्रायशः तिक्त होने के कारण तैजस् वर्ग का है।

नोट—उशीर के कई प्रभेद प्राप्त होते हैं। उशीर मोटे मेल का होता है तथा लामज्जक पतली नल का बहुशः सूक्ष्म उपमूलों से आवरित होता है।

२ : लामज्जक जल डालने के साथ सुगंधी फैलता है किन्तु उशीर अच्छी तरह फूल जाने पर अपनी गंध बिखेरता है।

३ : उशीर स्पर्श में कड़ा, किन्तु लामज्जक स्पर्श-मृदु होता है।

४ : उशीर और लामज्जक भिन्न-भिन्न जाति के पौधे से पाये जाते हैं।

५ : निघन्टुकारों ने अलग-अलग वर्णन किया है।

जलापाहरड़ या जैलप (Ipomoea Radix)

परिचय : जलापा यह एक आइपोमिया परगा नामक लता की कंद से प्राप्त होने वाली औषधीय त्रिवृत वर्ग की औषधि है। यह अमेरिका के मेक्सिको प्रान्त में पाई जाती है। इसका वर्ग कनभोल्भुलेसी है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्थान : यह मेक्सिको और भारतवर्ष दोनों स्थानों में पाई जाती है।

आकृति विज्ञान : यह पूरे कंद और टुकड़ों के रूप में बाज़ार में पाई जाती है। पूरे कंद को सामने रख कर के आकृति का प्रदर्शन करें तो ज्ञात होगा कि इसका रंग काला भूरा है। ऊपर से झुर्रीदार ऊंचा-नीचा, गोलाकार, बीच में मोटा दोनों सिरों पर नोकदार हरड़ की आकृति का एक कंद है। छोटे कंद ठीक हरड़ की आकृति से मिलते-जुलते होते हैं। बड़े कंद का आकार भी बड़े हरड़ की आकृति की तरह ही होता है। यह इतना कड़ा होता है कि इसके च्छेद लेने के लिए ४८ घंटे पानी में भिगोना पड़ता है। तब इसका सेक्सन लेना सरल होता है।

आकार : यह ३ से १५ सेंटीमीटर लम्बा और ३ से आठ सें० मी० चौड़ा होता है। यह नियमित लम्बगोल, पतला दोनों छोर पर नोकदार होता है।

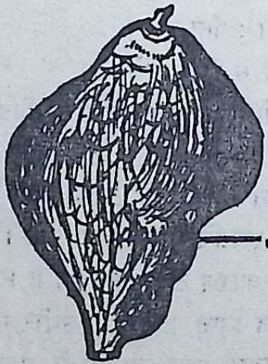

चित्र ७०

सतह : लम्बाई इस पर झुर्रियाँ पड़ी हुई होती हैं। चौड़ाई में इस पर छोटे-छोटे उभार दिखाई पड़ते हैं।

वर्ण : गहरा काला भूरा होता है।

च्छेद : चौड़ाई में छेद लेने पर इसमें पतला कार्क का भाग, फ्लोयम का छोटे झुण्ड, वृत्ताकार, कैम्बियम संकुचित केन्द्रयुक्त तथा बहुसंख्यक रालजातीय सेल दिखाई पड़ते हैं।

गंध : मृदु गन्ध से युक्त धूम्रगन्धी होता है।

रस : पहले मधुर पश्चात् तिक्त होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पोषक तत्त्व : शर्करा और स्टार्च का भाग।

विशेषता : असंख्य रालजातीय सेल का मिलना और तीसरी कैम्बियम की प्राप्ति।

संगठन : इसमें राल, मैनीटोल, शर्करा, स्टार्च और कैल्सियम आक्सलेट के भाग मिलते हैं।

अणुवीक्षण रूप : १ : व्यत्यस्त च्छेद भियोये हुये कंद का लीजिए। इन द्रव्यों में मिश्रित करिए :

१ : ग्लिसरिन : ग्लिसरिन में डुबोने पर उसमें आए पीले भूरे सेलों को देखिए। यह क्लोरल हाइड्रेट में घुल जाते हैं।

२ : लैक्टो फेनोल : साफ करने के लिए इसके द्रव में भिगोइए।

३ : फ्लोरोग्लुसिन व लवणाम्ल : उसके सूत्रों को रंगने के लिए।

४ : टिंकचर आफ अलकाना : राल को लाल रंगने के लिए।

परीक्षा : अणुवीक्षण यंत्र में देखिए :

देखकर उसका एक चित्र बनाइए। आकार साथ के दिए चित्र की तरह होगा।

जैलप या जलापी कंद

नाम : जलापा, जैलप, जुलाफा हरड़। (Ipomaea Purga)

वर्ग : त्रिवृत वर्ग। (Convolvulaceaece)

आकृति विज्ञान : यह एक लता जिसका नाम आइपोमिया परगा है, उसका कंद है। यह इस देश में नहीं होता। अमेरिका के मेक्सिको प्रान्त में पाया जाता है। भारतवर्ष के भी पहाड़ी अन्य प्रांतों में मिलता है। यह बाजार में पूरे कंद या टुकड़ों में कटा हुआ मिलता है। यह तीन से १५ सें० मी० लम्बा और ३ से ८ सें० मी० चौड़ा और मोटा होता है। आकार में अनियमित यव के आकार का हरड़ की तरह बीच में मोटा और किनारों पर पतला नोकदार हो जाता है। इसमें लम्बाई पर झुरियां पड़ी रहती हैं। इसका वर्ण गहरा काला व भूरा होता है। यह स्पर्श में कठिन और खुरदरा होता है। चौड़ाई में इस पर उभार दिखाई पड़ते हैं।

छेदन पर : च्छेद लेने पर बाह्य त्वक् पतली मिलती है इसके बाद कठिन जालीदार कार्क का भाग मिलता है। नीचे वृत्ताकार रचना मिलती है जो कि कैम्बियम का भाग होता है। बीच-बीच में झुन्ड में वृत्त समूह दिखाई पड़ता है

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और राल का अंश मिलता है वृत्ताकार रचना के बाद कंद का भाग रहता है। लंब च्छेद में भी यही दिखाई पड़ता है।

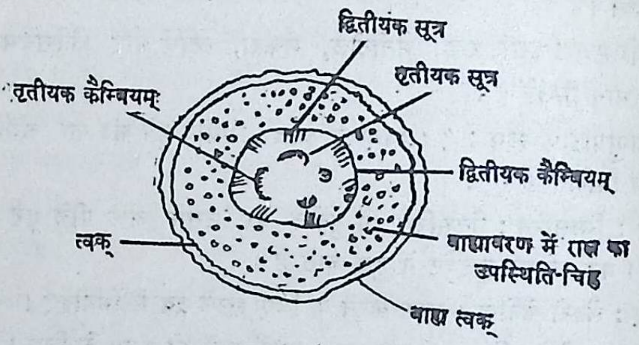

चित्र ७१

वर्ण : ऊपर से गहरा भूरा काला। भंगे : भूरा के भूरा। क्वाथ : भूरा लाल। तैल : पीत। घृत में पीत। चूर्ण : भूरा काला।

विलेयता : वारि व तैल में किंचित।

रस : कषाय कटु। पहले मधुर फिर तिक्त कटु।

गंध : मृदु गंध, धूम्रगंधी।

स्पर्श : स्पर्श में कठिन, खर, रूक्ष, गुरू।

गण : प्रायशः कटु तिक्त व अनुरस में कषाय होने से तैजस है।

भद्रमुस्ता का विवरण (Cyperus Rotundes)।

नाम : नागरमुस्ता, भद्रमुस्ता।

गण : चरक : तृप्तिघ्न, तृष्णानिग्रह, लेखनीयगण, कंडूघ्नगण, स्तन्य शोधनगण।

सुश्रुत : मुस्तादि गण, बचादि गण।

प्राकृ० गण : मुस्तादि साईपेरेसी। (Cyperaceae)

आकृति विज्ञान : यह एक प्रकार का जल में होने वाला एक क्षुप-जातीय बनौषधि है, जिसकी मूल औषधि में प्रयुक्त होती है। इसका कांड परिवर्तित होकर मूल का रूप धारण करता है। यह लम्बा, नलिकाकार, वर्तुल और लोमश होता है। इसका वर्ण कृष्ण होता है। यह दूर तक मिट्टी के नीचे समानान्तर रूप में फैला हुआ होता है। यह आकार में मोटा, ग्रंथिल और पर्वों से युक्त होता है। जिनकी संख्या अधिक होती है। कुछ पर्वों के बाद पर्व

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पर एक-एक अक्षि निकलती है। वहां से एक कांड निकल कर ऊपर की तरफ बढ़ जाता है।

पुनः वह अंश समानान्तर बढ़ता जाता है और इसी प्रकार मूल देता जाता है। कांड भी ऊपर निकलते जाते हैं। प्रत्येक पर्व पर चारों तरफ पत्र का आवरण रहता है। यह गलता जाता है और लोमवत आवरण छोड़ता जाता है। प्रधान मूल से अनेकों मूलें निकलती हैं। उनका अवशिष्ट भाग प्रधान मूल पर दिखाई पड़ता है।

शुष्कावस्था में यह रुक्ष वृत्ताकार चिन्हों से युक्त स्पर्श कठिन होता जाता है। जहां से अक्षि निकलतीं हैं वहां पर ग्रंथिल उत्सेधयुक्त ऊंचा उठा हुआ होता है। पत्रावशिष्ठ भाग सरलता से नाखून से हटाया जा सकता है।

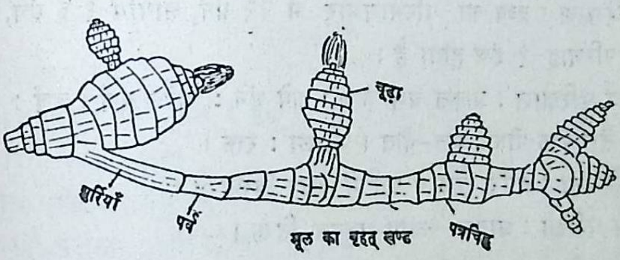

चित्र ७२

चित्र ७३

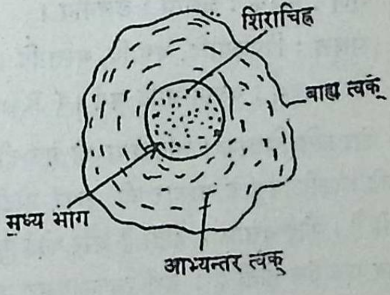

चित्र ७४

व्यत्यस्त च्छेद : व्यत्यस्त च्छेद लेने पर इसमें तीन भाग दिखाई देते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ : बाह्य त्वक् : यह कृष्णवर्ण की पतली व रोमश होती है।

२ : आभ्यंतर त्वक् : यह भूरे वर्ण की लगभग दो मिलीमीटर मोटी पिष्ट-मय सौत्रिक रचना होती है।

३ : मध्य का काष्ठीय भाग : यह बीच में होता है। इसमें स्रोतसों के मुख दिखाई पड़ते हैं। सूत्र श्वेत वर्ण के व काष्ठीय भाग घूसर वर्ण का होता है।

अनुलम्ब काट : इसमें भी यही तीन रचनायें होती है। यथा :

१ : कृष्ण वर्ण की रोमश रचना।

२ : आभ्यंतर त्वक् : कपिल वर्ण की होती है।

३ : काष्ठ भाग : बीच का घूसर भाग जो सौत्रिब रचना वाला होता है। इसमें सूत्र दिखाई पड़ते हैं।

परिमाण : द्रव्य का परिमाणभार में २२ ग्रेन, आयाम १.६ इंच, मोटाई ४ इंच, परिणाह १ इंच होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण कृष्ण। कषे भंगे : कपिल वर्ण। चूर्ण : धूसर। क्वाथ : तैल रक्त पीत : घृत–पीत। ज्वाला : रक्त।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में अल्प विलेय है।

रस परीक्षा : प्रायशः कषाय अनुरस तिक्त।

गंध परीक्षा : मृदु सुगंध। कर्पूर गंधी। स्पर्श : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : अभंगुर। वर्ग : प्रायशः कषाय होने से वायवीय है।

अतिविषा (Aconitum Heterophyllum)

नाम : अतीस।

गण : चरक : अर्शोघ्न। लेखनीय।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि, वचादि, मुस्तादि।

नैस० वर्ग : वत्सनाभादि वर्ग। (Ranun culacece)

आकृति विज्ञान : अतिविषा की मूल ही औषधि के रूप में ली जाती है। इसकी आकृति शंकु के आकार की ऊपर मोटी और नीचे क्रमशः पतली होती जाती है। कोई वृत्ताकार होती है और कोई कुछ चपटी होती है। इसकी लम्बाई करीब एक इंच होती है। वर्ण इसका धूसर वर्ण का होता है। इस पर उप-मूल के चिह्न भी पाये जाते हैं।

स्थिति : यह शुष्कावस्था में पाई जाने वाली दवा है। त्वक् पतली कुछ अरुणाभ होती है। इसके हटाने पर नीचे श्वेत भाग पिष्ठमय मिलता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसका क्रम अधोगामी होता है।

छेदन : व्यत्यस्त छेद लेने पर बाहर पतली त्वचा का भाग दिखाई देता है। भीतर का भाग श्वेत वर्ण का होता है। किसी में भीतरी भाग श्यावाभ भी है। इसमें चार छिद्र दिखाई देते हैं, जो शिराओं के हैं। काली वर्ण वाली में कहीं-कहीं ५ व ७ तक छिद्र दिखाई पड़ते हैं।

अनुलंब छेद : प्रायशः वही भाग दिखाई पड़ते हैं परन्तु जहां शिरायें थीं वहाँ पर नलिकाकार रचना पाई जाती है।

वर्ण परिज्ञान : शुष्क ऊपर से धूसर अरुणाभ भीतर, श्वेत। कषे : श्वेत, श्याव।

भंगे : श्वेत, श्याव। चूर्ण : श्वेत। क्वाथ : मंडवत। तैल : पीत। घृत : श्वेत।

ज्वाला : रक्त।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में : कुछ विलेय है।

रस परीक्षा : तिक्त।

गंध परीक्षा : मृदु सुगन्ध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रुक्ष, गुरु।

शब्द परीक्षा : भग्नकालीन : कट। भंगुर।

वर्ग : तिक्त प्रधान रस होने से तैजस वर्ग का है।

रास्ना मूल। (Pluchia Lanceolata)

नाम : रास्ना।

गण : चरक : वातहर।

सुश्रुत :

नैस० वर्ग : सहदेव्यादि वर्ग कम्पोजिटी। (Compositeae)

आकृति विज्ञान : रास्ना एक प्रकार का संदिग्ध द्रव्य है। पर जिसे रास्ना कह कर यहां पर प्रयोग किया है वह पत्र रास्ना है। इसे इंगलिश में प्लूचिया लैंसोलाटा कहते हैं। इसके मूल का प्रयोग औषधियों में होता है। वर्ण इसका कृष्ण होता है यह मूल गुच्छ में एक ही स्थान से निकली रहती है। इसका आकार वर्तुल नलिकाकार होता है। मूल के ऊपर एक मिली मीटर मोटी त्वचा रहती है। इस पर अनुलम्ब रूप में कई अनियमित रेखायें पड़ी रहती हैं। संभवतः यह मूल के शुष्क हो जाने पर बनी हुई हैं। मूल में उपमूल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

के चिह्न भी दिखाई पड़ते हैं। कृष्णवर्ण की त्वचा के हटाने पर प्रथम धूसर वर्ण की आभ्यंतर त्वचा दिखाई देती है। उसके नीचे श्वेत वर्ण का काष्ठ का भाग दिखाई देता है। इस मूल का वृद्धिगत क्रम अधोगामी है। मूल से कांड पर भी अनुलंब रेखायें दिखाई पड़ती हैं। जो समानान्तर होती हैं। इस पर ग्रंथिया भी दिखाई पड़ती हैं। इसका वर्ण पीत होता है। मूल सरलता से टूट जाता है। मूल कांडापेक्षा भंगुर है।

व्यवच्छेद : व्यत्यस्त छेद लेने पर बाहर से भीतर की ओर निम्न रचना दिखाई देती है।

१ : बाह्य त्वक् कृष्ण वर्ण की पतली होती है।

२ : आभ्यंतर त्वक् घूसर वर्ण की तथा लगभग २ मिली मी० मोटी होती है। इसमें पिष्ठमय पदार्थ अधिक होता है।

३ : काष्ठ भाग : सौत्रिक रचना का बना हुआ सच्छिद्रयुक्त होता है। वर्ण ईषत् पीत होता है।

वर्ण परिज्ञान : रास्ना मूल वर्ण कृष्ण वर्ण का होता है। कषे : श्याव घूसर। भंगे : धूसर। चूर्ण : घूसर। क्वाथ : रक्ताभ। तैल : रक्त पीत। घृत : रक्ताभ पीत। ज्वाला : रक्त वर्ण।

विलेयता : यह जल, घृत व तैल में अल्प विलेय है।

रस परीक्षा : स्वाद में कटु व तिक्त है।

गंध : इसमें उग्र गंध पाई जाती है जो कि सुगंध होती है। घूपन पर उग्र गंध। पश्चात् पीत वर्ण का घूम्र निकलता है।

स्पर्श परीक्षा : मूल में कठिन, खर, रुक्ष व लघु गुण हैं।

शब्द परीक्षा : भग्न करने पर कट, भंगुर।

वर्ग : स्वाद में प्रायशः कटु तिक्त होने से यह तैजस वर्ग का है।

सर्पगन्धा रावोल्फिया सरपेंटाइना (Rauwalfia sarpentina)

वर्ग : एपोसाइनेसी

चरक :

सुश्रुत : एकसरवर्ग

निघंटु :

आकृत विज्ञान : सर्पगन्धा मूल छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में मिलता है। यह प्रायः ४ से ५ इंच के लम्बे दुकडो के नलिकाकार क्वचित वक्र क्वचित सीधे-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मोटे मूल के खण्डों के रूप में मिलते हैं। ऊपर मोटे क्रमशः पतले आकार में कहीं-कहीं पर उपमूल से युक्त होते हैं। बाह्य त्वचा में लम्बाई में कहीं खात व उभार युक्त होते हैं। कहीं पर धारियां भी ऊपर से नीचे उभरी हुई दिखाई पड़ती हैं। बाहर का वर्ण बादामी पीत वर्ण दिखाई पड़ता है। बाह्य त्वचा स्फुटित शल्की किन्तु स्पर्श में मृदु होती है। मूल की त्वचा स्थूल व मांसल तथा खरोचने पर सरलता से हट जाती है। भीतर का काष्ठ पीत वर्ण का कठिन होता है, बीच का सार भाग मृदु होता है।

मूल के दो भाग हो सकते हैं।

१ : त्वगीय भाग। २ : काष्ठीय भाग।

त्वक् : इसके भी दो भाग होते हैं।

१ : अधित्वक भाग। २ : अंतस्त्वक् भाग।

चित्र ७५ सर्पगन्धामूल

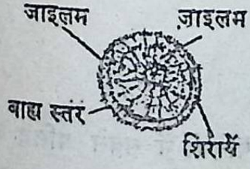

चित्र ७६

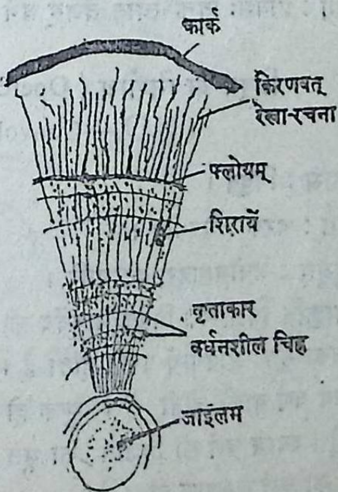

चित्र ७७

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अधित्वक् : मृदु और सरलता से पृथक हो जाती है। अंतस्त्वक अपेक्षाकृत कठिन होती है। यह आभ्यन्तर काष्ठ से पृथक हो जाती है। अर्द्रावस्था में सरलता से पृथक हो जाती है।

काष्ठांश : यह अपेक्षाकृत कठिन होती है। इसमें मुद्रिकाकार स्तर होते हैं। बीच-बीच में काष्ठ का मज्ज भाग होता है। रचना संगठन में यह इस प्रकार होते हैं कि काष्ठ के सेल मिल कर एक विकीर्ण रेखा केन्द्र से प्रान्त की तरफ बनती हुई दिखाई देती है। इसका बाह्य भाग कठिन ईषत् श्वेत पीत वर्ण का तथा मज्ज भाग, बीच का गाढ़े पीत वर्ण का दिखाई पड़ता है।

अनुलम्बच्छेद : प्रथम तनु त्वचा पश्चात् स्थूल त्वचा। बाद में काष्ठ का भाग रेडिएशन व बीच में सारभाग।

व्यस्तच्छेद : त्वचा, बाद में काष्ठ भाग पश्चात् सारभाग।

वर्ण : कषे : पीत। भंगे : पीत। चूर्ण : पीत। तैल : पीत। घृत : पीत रक्ताभ। ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : वारि, तैल, घृत, में ईषत्,।

रस : अति तिक्त।

गन्ध : उग्र गन्ध।

स्पर्श : ऊपर से मृदु, श्लक्ष्ण, लघु।

शब्द : अभंगुर। भग्नकालीन : चट।

वर्ग : प्रायशः तिक्त त्वात तैजस् वर्ग।

त्रिवृत या निशोथ (Operculina Turpethum)
(N.O.—Convolvulaceae)

नाम : त्रिवृत।

वर्ग : चरक : भेदनीय।

सुश्रुत : अधोभागहर, श्यामादि।

आकृति विज्ञान : त्रिवृत आयुर्वेद की औषधियों में सबसे प्रसिद्ध औषधि है। इसका मूल औषधार्थ प्रयोग होता है। हरित मूल बाहर से गहरे भूरे वर्ण की श्याव वर्ण वाली होती है। शुष्क हो जाने पर इसका वर्ण श्यावाभ हो जाता है। श्याम वर्ण की निशोथ का मूल श्याव वर्ण का व श्वेत वर्ण की निशोथ का वर्ण अरुणाभ होता है।

इसका आकार अंगुष्ठाभ मोटा होता है। यह कुछ ऐंठी हुई होती है। स्पर्श

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

में यह कठिन होती है। शुष्क हो जाने पर यह स्पर्श में रुक्ष और कठिन होती है। आर्द्र दशा में इसमें दुग्ध निकलता है। जो गाढ़ा चिपचिपा होता है। सूखने पर यह राल की तरह जम कर बन जाता है। शुष्क मूल कठिन और रुक्ष होती है गात्र पर इसके उपमूल के चिह्न पाये जाते हैं। त्वचा पतली और आर्द्रावस्था में सरलता से पृथक हो जाती है। नीचे का भाग त्वचा का मोटा होता है। इसके बीच में सींक की तरह कड़ी ईषिका का भाग रहता है जो कि सूत्रमय व कठिन होता है। अतः इसका नाम एकेषिका भी होता है। इसके बीच में शिराओं के छिद्र होते हैं जिनमें दुग्ध एकत्र होता है।

व्यत्यस्तच्छेद : यदि मूल का चौड़ाई में च्छेद लें तो निम्न बातें दिखाई पड़ती हैं। यथा :

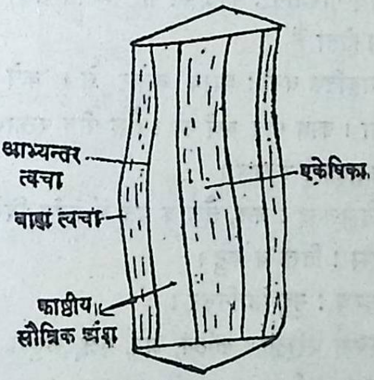

चित्र ७८

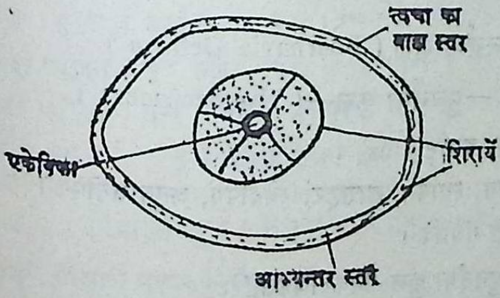

चित्र ७९

१ : वाह्य त्वचा : बाह्य त्वचा पतली व सरलता से पृथक हो जाती है। इसका ऊपरी वर्ण श्याव वर्ण का होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२ : आभ्यन्तर त्वचा : यह मोटी व शिरा बहुल होती है। यह भाग मांसल व मोटा होता है। क्षीर आर्द्रावस्था में इसमें अधिक होता है।

३ : काष्ठमय भाग : यह भाग अधिक सौत्रिक व कठिन सूत्रों से बना होता है। इसमें भी शिरा जाल होते हैं। पुराने मूलों में यह शिरा जाल भिन्न-भिन्न झुंडों में पाया जाता है। यह तीन भाग वृत्त रूप में पाये जाने से इसे त्रिवृत कहते हैं।

लम्ब च्छेद : इसमें भी वही भाग मिलते हैं। परन्तु कुछ आकार में भेद होता है।

यथा : त्वचा का बाह्य भाग आभ्यन्तर भाग काष्ठमय भाग। शिरावों का भाग नलिकाकृति होता है।

वर्ण परिज्ञान : कांड का भी व्यस्त तथा अनुलम्ब छेद चित्र निम्नांकित रूप का होता हैं।

प्राकृतिक वर्ण : श्याव बाहर से। कषे व भंगे पीत वर्ण। चूर्ण धूसर वर्ण का। क्वाथ पीत वर्ण का। तैल पीत रक्ताभ। घृत श्वेतपीत।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : जल, तैल व घृत में इषंत् विलेय है।

रस : तिक्त व कटु।

गन्ध : मृदु ग्लानिकर।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : भग्न में कट।

वर्ग : स्वाद में तिक्त कटु होने से तैजस वर्ग का है।

पुनर्नवा मूल (Boerhavia Deffusa)

No.—पुनर्नवा कुल—(Nyctegenaceae)

नाम : पुनर्नवा, वर्षाभू।

वर्ग चरक : वयः स्थापन, कासहर, स्वेदोपग, अनुवासनोपग।

सुश्रुत : विदारी गंधादि।

प्राकृत वर्ग : पुनर्नवा कुल 'निकटेजिनेसी'।

आकृति विज्ञान : इसके मूल की आकृति नलिकाकार, गोल, लम्बी, विषम व क्वचित बक्र भी होती है। इस पर उपमूल के चिह्न भी दिखाई देते हैं। इसके ऊपर की त्वचा गहरे मटियाले वर्ण की होती है। इस पर हल्की पतली

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रेखायें दिखाई पड़ती हैं। धारी की तरह ऊपर से नीचे को यह होती हैं। यह ऊपर मोटी व नीचे पतली होती है। बाजार में इसकी जड़ें २ से चार इंच तक लम्बी पाई जाती हैं। ऊपर का भाग पतला व नीचे का श्वेत व मांसल होता है। आर्द्र त्वचा का वर्ण भूरा होता है। स्पर्श में रुक्ष व खुरदरा होता है।

च्छेद : चौड़ाई में च्छेद लेने पर इसमें निम्न भाग दिखाई पड़ते हैं। यथा :

१ : बाह्य स्तर : पतला होता है।

२ : आभ्यन्तर स्तर : बाह्य त्वक् के बाद आभ्यन्तर त्वक् होती है। इसका भाग श्वेत होता है। इसके बाद वृत्ताकार रचना दिखाई पड़ती है। यह शिराओं के द्वारा बनते हैं।

३ : मध्य का काष्ठमय भाग : यह काष्ठ सूत्रमय रचना वाला तथा पिष्ठमय पदार्थों से भरा रहता है। किसी-किसी में यह भाग छिद्रमय दिखाई देता है। नवीन मूल मृदु व अल्प सूत्र वाली तथा पुरानी अधिक सौत्रिक होती है। काष्ठमय भाग के बीच मज्ज भाग होता है।

लम्ब च्छेद : इसमें भी वही भाग होते हैं। सिराओं के स्थान पर नलिकायें दिखाई देती हैं। यह रेखायें काष्ठ भाग पर दिखाई पड़ती हैं।

परिमाण :

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण श्वेत घूसर वर्ण। कषे व भंगे श्वेत। चूर्ण : श्वेत घूसर। क्वाथ : ईषत् पीत। तैल : ईषत पीताभ। घृत : श्वेत। ज्वाला : रक्त।

रस : कटु व तिक्त।

गन्ध : शुष्क व आर्द्र में मृदु गन्ध। धूपन में उग्र।

स्पर्श परीक्षा : मूल कठिन, खर, रूक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : भग्न में कट। अभंगुर।

वर्ग : कटु व तिक्त होने से यह तैजस द्रव्य है।

पिप्पली मूल (Root of Piperlongum)

नाम : पिप्पली मूल। पिपरा मूल।

वर्ग प्राकृतिक : पाइपरेसी। (Piparaceae)

प्राचीन चरक : दीपनीय, शूलप्रशमन, हिक्कानिग्रहण।

सुश्रुत : उर्ध्व भागहर।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आकृति विज्ञान : पीपल का मूल शुष्क गांठदार, उपमूल के चिह्नों से युक्त होता है। इसका आकार वर्तुल नलिकाकार ग्रंथिल छोटे टुकड़ों में विभक्त पाया जाता है। इसकी त्वचा धूसर वर्ण की होती है। खुरचने पर श्वेत वर्ण नीचे दिखाई पड़ता है। इसके गात्र पर ऊँचे-नीचे उभार से दिखाई पड़ते हैं। यह अधोगामी मूल होता है। इसके ऊपर की त्वचा मोटी होती है, दो गाँठों के बीच दबा हुआ भाग होता है। स्पर्श में यह रूक्ष है।

च्छेदन : इसमें च्छेद लेने पर निम्न रचनायें दिखाई पड़ती हैं :

१ : बाह्य त्वचा : बादामी या धूसर वर्ण की पतली होती है।

२ : आभ्यन्तर स्वचा : यह करीब २ मिली मी० मोटाई वाली होती है। पिष्ठमय भाग उसमें मिला होता है।

३ : काष्ठमय भाग : यह पीतवर्ण का पाँच दलों में विभक्त-सा दिखाई पड़ता है।

अनुलंब काट :

१ : बाह्य त्वचा।

२ : आभ्यन्तर त्वचा।

३ : काष्ठ भाग।

विशेष : बाजार में पिप्पली मूल में उसके कांड की मिली हुई गांठें होती हैं। कांड के टुकड़े भी मिलते हैं। अतः कांड में निम्नलिखित रचना मिलती है :

१ : बाह्य स्तर पर अनुलंब रेखायें मिलती हैं। जब कि मूल में इस प्रकार की रेखा नहीं होती। मूल पर गांठें व उपमूल के चिह्न होते हैं।

२ : व्यतस्त काट में भी प्रथम त्वचा पतली व काष्ठ का भाग व बीच में पिथ का भाग होता है।

रचना निम्न होती है।

वर्ण : प्राकृतिक : बादामी। कषे भंगे : श्वेत। क्वाथ : पीत : रक्त। तैल : पीत। घृत : पीत। ज्वाला : रक्त।

रस : कटु व तिक्त।

गन्ध : मृदु सुगन्ध।

स्पर्श : कठिन, खर, रूक्ष।

शब्द : भग्नकालीन कट।

वर्ग : प्रायश : कटु व तिक्त होने से तैजस वर्ग का है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अनन्त मूल हेमी डिसमस इंडिकस
(Hemedecmus Indicus)

नाम : अनन्त मूल, कपूरी, उत्पल सारिवा ।

वर्ग : अर्कादि एसक्लेपिडियेसी (Asclepidiaceae)

चरक : स्तन्य शोधन, पुरीष संग्रहण, ज्वरहर, दाह प्रशमन, मधुर स्कंध ।

सुश्रुत : सारिवादि, विदारिगन्धादि, वल्ली पंचमूल ।

आकृति विज्ञान : सारिवा का मूल नलिकाकार पतला लगभग २ इंच लम्बा और श्याम भूरे रंग की त्वचा वाली होती है । इसमें उपमूल के चिह्न लगे होते हैं। यह टेढ़ी-मेढ़ी होती है इस पर अनुलंब उभरी हुई रेखायें भी दिखाई पड़ती हैं । थोड़ी-थोड़ी दूर पर सूखने से दरारें पड़ गई हैं। और रचना पर्वाकार दिखाई पड़ती है । आकृति वर्तुल नलिकाकार होती है ।

स्थिति : बाजार में शुष्क मूल मिलती है । ऊपर का वर्ण भूरे रंग का तथा विभिन्न स्थलों पर फटा हुआ होता है। इसको हटाने पर भीतर धूसर वर्ण की मोटी त्वचा मिलती है। इसके नीचे पीत वर्ण का भाग दिखाई देता है ।

उपमूल : इसमें उपमूल भी लगे होते हैं। मूल क्रम अधोगामी होता है ।

छेदन : छेद लेने पर तीन मुख्य स्तर दिखाई पड़ते हैं ।

१ : बाह्य त्वचा : जो पतली व श्याव भूरे वर्ण की होती है ।

२ : आभ्यंतर त्वचा : स्थूल होती है तथा पिष्ठमय भाग लगा रहता है ।

३ : काष्ठ भाग : यह कठिन सौत्रिक रचनायुक्त होता है। बीच-बीच में कुछ पिष्ठमय भाग दिखाई देता है ।

अनुलंब काट : इसमें भी वही भाग दिखाई पड़ते हैं। यथा :

१ : बाह्य त्वचा : श्यावारुण वर्ण ।

२ : आभ्यन्तर त्वचा : धूसर वर्ण की मोटी ।

३ : काष्ठमय भाग : इसमें स्रोत नीचे से ऊपर जाते दिखाई पड़ते हैं ।

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण : भूरा ऊपर से। कषे भंगे : पीत धूसर । चूर्ण : धूसर । क्वाथ : पीत रक्त । तैल, घृत : पीत । ज्वाला : रक्त वर्ण की ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत् ।

रस : प्रधान रस मधुर : अनुरस कषाय व तिक्त होता है ।

गंध : सामान्य सुगंध । कर्पूर गन्धी । उग्र ।

स्पर्श परीक्षा : लघु, रूक्ष, कठिन, खर ।

शब्द परीक्षा : भग्नकालीन : कट । अभंगुर ।

वर्ग : प्रायश : मधुर व तिक्त होने से यह पार्थिव वर्ग में आता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आर्द्रक : जिंजिबेर आफिस नेलिस
(Gingibe officinale)

नाम : आर्द्रक, शृंगबेर।

गण : चरक : तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, दीपनीय, शूल प्रशमन। तृष्णानिग्रहण।

सुश्रुत : पिपल्यादि त्रिकटु।

प्राकृतिक गण : हरिद्रादिगण।

आकृति विवरण : आर्द्रक का कन्द उसके कांड का परिवर्तित स्वरूप है। यह बोने के बाद धीरे-धीरे खाद्य द्रव्य को संग्रह करके मोटे कन्द का स्वरूप ग्रहण करता है। प्रारम्भ में मोटा-पतला आगे जाकर मोटा हो जाता है

चित्र ८०

चित्र ८१ अफ्रिका का आर्द्रक

चित्र ८२ कोचीन का आर्द्रक

और आगे के भाग में गोल वेर के आकार का शृंग बनाता है। अतः इसको शृंगबेर के नाम से कहते हैं। धीरे-धीरे कन्द बढ़ता जाता है और उस पर पत्रावशिष्ठ भाग रह जाते हैं। इसमें अक्षियाँ निकलती हैं और उस स्थान पर नये कांड का उद्गम होता है इस प्रकार आगे-आगे बढ़ता जाता है और कन्द

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

का रूप धारण करता है। अतः एक कंद में कई छोटे-छोटे उभार से वन जाते हैं। इसके ऊपर का वर्ण आर्द्रावस्था में पीत बादामी रंग का होता है। स्पर्श में यह श्लक्ष्ण होता है ऊपर धारियाँ दिखाई पड़ती हैं। जो कुछ दूरी पर वृत्ताकार रहती हैं। यह पत्र सन्निवेश का चिह्न है। यह त्वगीय भाग बहुत पतला होता है और सरलता से हट जाता है। इसके नीचे श्वेत पीत भाग का दिखाई पड़ता है। इस पर छोटी-छोटी ग्रन्थिल शाखायें लग जाती हैं अतः यह गांठदार दिखाई पड़ता है। प्रत्येक शाखा पर वैसे ही वृत्ताकार चिह्न दिखाई पड़ते हैं। इसका व्यत्वस्त च्छेद लें तो नीचे निम्न रूप दिखाई पड़ता है।

१ : ऊपर का तनुत्वक् : जो स्पर्श में मसृण व बादामी वर्ण का होता है।

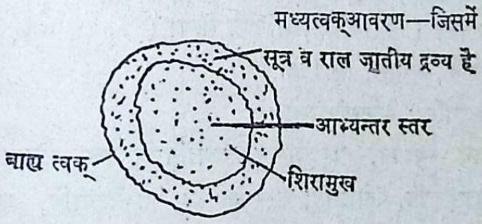

चित्र ८३

२ : अन्तस्त्वक् : इसके वाद नीचे का मांसल अन्तस्त्वक् का मोटा भाग रहता है। जो श्वेत पीत वर्ण का मोटा होता है।

३ : अन्तस्थ भाग : यह भाग बीच का केन्द्रिय होता है इसमें सौत्रिक भाग अधिक होता है और पिष्ठांशयुक्त होता है। इसमें तैल ग्रन्थियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं और इसमें सुगन्ध का भाग होता है।

अनुलस्व च्छेद : इसमें भी रचना वही होती है परन्तु स्थितिवशात् भिन्नता पाई जाती है। यथा : १—तनु त्वक्; २—पश्चात्, मोटा भाग; ३—केन्द्रिय भाग ; इसमें सूत्र लम्बाई में दिखाई पड़ते हैं।

परिमाण : इसका भार २ से ३ तोले तक होता है। लम्बाई २ से ३ इंच तक, चौड़ाई १ इंच, मोटाई आधे से पौन इंच तक होती है।

वर्ण : बाह्य त्वक् बादामी वर्ण का होता है। आभ्यन्तर श्वेत पीत, जल में पकाने पर हरित पीत व तैल में मृदु पीत व घृत तथा दुग्ध में हरित।

विलेयता : जल, तैल, घृत में ईषत् विलेय।

रस : कटु तिक्त।

गंध : सुगधित व हृद्य।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्पर्श : कठिन, स्निग्धश्लक्ष्ण, गुरु ।

शब्द : जलाने पर चिर-चिर शब्द ।

वर्ग : प्रायश : कटु तिक्त होने से यह आग्नेय वर्ग का है ।

कांड परीक्षा विज्ञान

ज्ञातव्य : शुष्क कांड वाले द्रव्यों की जब परीक्षा करना होता है तब उसके ठीक ज्ञानार्थ परीक्षा से पहले १८ घंटे पूर्व उनको जल में भिगो कर रखना होता है। जब वे अच्छी तरह से भीग जाते हैं तब उनको परीक्षार्थ रखते हैं। इस प्रकार वे द्रव्य निरीक्षण करने में स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं और चित्रादि बनाने में सुगमता होती है।

गुडूची का कांड । टिनास्पोरा कार्डिफो लिया (Tinospra Cordifolia)

नाम : गुडूची, अमृता, छिन्नरुहा ।

वर्ग : गुडूच्यादि : मेनिस्परमेसी ।

चरक : वयः स्थापन, दाहप्रशमन, तृष्णानिग्रह, स्तन्यशोधन, तृप्तिघ्न ।

सुश्रुत : गुडूच्यादि, पटोलादि, आरग्वधादि, काकोल्यादि, बल्लीपंचमूल ।

आकृति विज्ञान : परीक्ष्य, दव्य गुडूची का कांड है। इसका आकार वृत्त नलिकाकार होता है। ऊपर की त्वचा भूरे वर्ण की होती है जोकि कहीं कहीं कटकर अलग हो गई है। कांड के वाहरी भाग पर छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ हैं जो अकार में छोटी-बड़ी हैं। इसके ऊपर का भाग जो ऊभारदार है वह भी स्फुटित और रूक्ष है। ऊपरी त्वक फटने व गांठदार होने से विषम दिखाई पड़ता है। इसका वर्ण हरित व भूरे वर्ण का है।

ऊपरी त्वक् सरलता से पृथक् हो जाता है और नीचे की त्वचा का हरित वर्ण निकल आता है और ग्रन्थियों के स्थान पर अवशिष्ट चिह्न दिखाई पड़ते हैं। ध्यान से देखने पर त्वक् में सूत्रों की रचना लम्बाई में दिखाई पड़ती है।

ऊपरी त्वक् का वर्ण भूरा मटमैला, तथा भीतर से हल्के बादामी वर्ण का दिखाई पड़ता है।

कांड च्छेद : कांड की चौड़ाई की दिशा में छेद लेने पर इसमें तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं।

१ : त्वगीय स्तर : यह दो भागों में विभक्त दिखाई पड़ता है। प्रथम सबसे ऊपर पतला भूरे रंग का स्तर दिखाई देता है। यह सरलता से पृथक् हो जाता है। वर्ण घूसर और स्पर्श में रुक्ष वनाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२ : त्वगीय स्तर भीतरी : यह हरे वर्ण का कांड से दृढ़ संसक्त होता है। यह स्निग्ध और मृदु है।

द्वितीय स्तर : यह कांड का सबसे अधिक घन संसृष्ठ भाग है।

तृतीय भाग : यह स्तर कई भागों में विभक्त होता हुआ चक्राकार दिखाई पड़ता है। अतः इसकी संज्ञा चक्राकार कही जाती है। इस भाग में १८ से २० चक्रांग पाये जाते हैं। ऊपर का भाग कुछ वृत्ताकार मोटा और नीचे का भाग पतला और संकीर्ण होता जाता है। इसमें बहुत से सूक्ष्म छिद्र होते हैं। केन्द्रिय भाग सब भागों से मिलने से घना हो जाता है। बीच में एक मृदु भाग है। यह सूखने पर एक छिद्र की भाँति दिखाई पड़ता है।

परिमाण : भिन्न-भिन्न काण्ड के खण्डों का आकार-प्रकार भिन्न-भिन्न परिमाण का होता है।

वर्ण परिज्ञान : बाह्य त्वक् धूसर। नीचे का हरित।

शुष्क कांड : धूसर मटमैला। चूर्ण : धूसर मटमैला।

क्वाथ : हरित श्वेत वर्ण का। तैल : पीताभ। घृत : कृष्ण पीत।

विलेयता : वारि में अधिक व तैल-घृत में ईषद् विलेय है।

गंध परिज्ञान : आर्द्र मृदु गन्ध। शुष्क मृदु गन्ध। अग्नि में जलाने पर मृदु गन्ध।

रस परिज्ञान : व्यक्त रस तिक्त। अनुरस कषाय व मधुर।

स्पर्श परिज्ञान : यह स्पर्श में कठिन, खर, व लघु है।

शब्द परीक्षा : अभंगुर, आर्द्र। जलने पर चट-चट शब्द करता है। शुष्क शब्द-रहित जलता है।

गणविनिश्चय : प्रायश तिक्त व अनुरस कषा य होने से वायव्य है।

काण्ड वाले द्रव्यों की परीक्षा

कृष्ण सारिवा : क्रिष्टोलेपिस बुचनानी (Creptolapis Buchnani)

आकृति विज्ञान :

वर्ग : एसक्लेपिडिएसी : (Asclepidiacaee)

चरक : स्तन्य शोधन, पुरीष संग्रहणीय। ज्वरहर, दाह प्रशमन व मधुरस्कंध।

सुश्रुत : सारिवादि, विदारिकंदादि, बल्लीपंचमूल।

१ : कृष्ण सारिवा के परीक्षण में हाथ में ले कर उसके कांड को ध्यान से देखिए। बाहरी बनावट में त्वचा के ऊपर छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ दिखाई पड़ेंगी। इन्हें चित्र में चित्रित करिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२ : आर्द्र त्वचा को ध्यान से देखिए। इसमें तीन स्तर मिलेंगे।

३ : नीचे के काष्ठ भाग का अवलोकन करिए। भीतरी रचना में बहु-संख्यक छिद्र दिखाई पड़ेंगे।

४ : इसके वर्ण, गन्ध व रस को नोट करिये।

आकृति विज्ञान : यह एक दक्षिणावर्तिनी लता है। इसका कांड औषधार्थ प्रयोग में आता है। इसका बाह्य वर्ण रक्ताभ कृष्ण वर्ण का होता है। स्पर्श में यह कठिन रूक्ष है। त्वचा के ऊपर छोटी-छोटी ग्रंथियाँ दिखाई पड़ती हैं। अतः स्पर्श श्लक्ष्ण होते हुए भी यह रूक्ष-सा ज्ञात होता है। ऊपर की त्वचा कृष्ण वर्ण की पतली होती है। इसके हटाने पर नीचे रक्ताभ मीठी त्वचा दिखाई पड़ती है। यदि उसे भी हटा दिया जाय तो नीचे श्वेताभ पीत वर्ण का काष्ठ का भाग दिखाई पड़ता है। इसका आकार नलिकाकार वृत्त होता है।

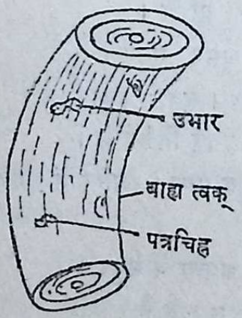

चित्र ८४

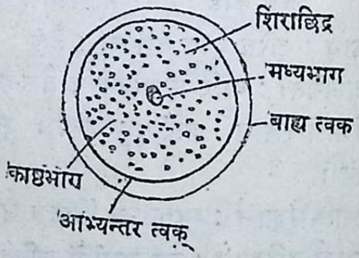

चित्र ८५

चित्र ८६

छेदन अनुप्रस्थ छेद : यदि इसका चौड़ाई में छेदन करें तो दो प्रधान भाग दिखाई पड़ते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ : त्वगीय भाग।

२ : काष्ठीय भाग।

त्वगीय भाग : इस में तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं :

१ : प्रथम स्तर : यह ऊपर का कृष्णाभ त्वगीय तनुस्तर।

२ : रक्त वर्ण की त्वचा का स्तर।

३ : आभ्यन्तर त्वगीय स्तर : श्वेत धूसर वर्ण का।

काष्ठ भाग में :

१ : श्वेत पीताभ काष्ठ भाग।

२ : मध्य का शुषिर भाग।

अनुलम्ब च्छेद : इसमें भी क्रमशः त्वगीय भाग व काष्ठ का भाग दिखाई पड़ता है। लम्बाई में काष्ठ भाग में नलिकाकार रचना मिलती है।

परिमाण :

वर्ण : प्राकृत वर्ण बाहर से कृष्ण रक्ताभ। चूर्ण : पीताभ श्वेत। क्वाथ : रक्ताभ श्वेत। तैल व घृत में घुलनशीलता। जल, तेल व घृत में ईषत् घुलनशील। रस प्रायशः तिक्त व कषाय।

वर्ग : प्रायशः तिक्त व कषाय होने से वायव्य वर्ग का है।

सुधा या स्नुही कांड परीक्षा

इयूफोरबिया नेरिफोलिया (Euphorbia Narifolia)

नाम : स्नूही या सुधा।

वर्ग : स्नूही वर्ग। इयूफोरबिएसी (Euphorbeaceae)

चरक : विरेचन वर्ग व मूलिनी।

सुश्रुत : अधोभागहर, श्यामादि।

आकृति विज्ञान : स्नूही का कांड गोल या लम्बगोल होता है। इसमें काँटे होते हैं। कांड का ऊपरी वर्ण हरे रंग का होता है। काँटे दो-दो की संख्या में कांड के ऊपर बने हुए होते हैं। ये उभार कांड के ऊपर बने हुए होते हैं और इन कंटकों का वर्ण लाल भूरे रंग का होता है। बलपूर्वक इन्हें कांड से पृथक् किया जाय तो यह उससे अलग हो जाते हैं। कांड पर ये उभार, ५ इंच की ऊंचाई लेकर उठे हुए होते हैं। कंटक कठिन, दृढ़ व श्याम रक्त वर्ण के होते हैं। कंटकों के नीचे पत्र लगते हैं। कहीं-कहीं पर कंटकों के बीच पत्र गिर जाने के चिह्न होते हैं इन कंटकों का मुख विपरीत दो दिशाओं में होता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। काण्ड में सर्वत्र काटने पर क्षीर निकलता है। कांड का छेद लेने पर निम्नलिखित स्तर पाये जाते हैं। यथा :

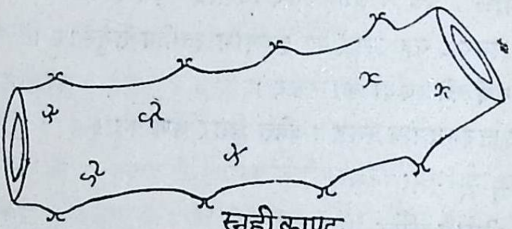

चित्र ८७

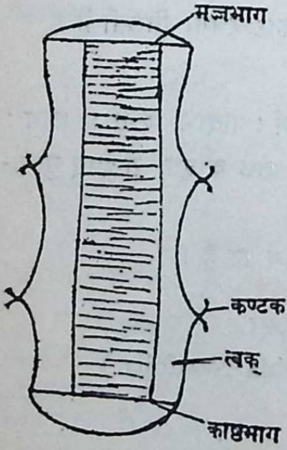

चित्र ८८

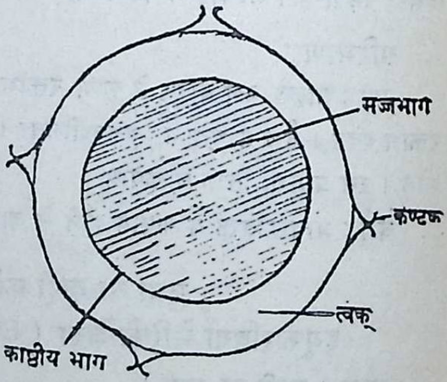

चित्र ८९

१ : बाहर का घना हरा भाग।

२ : नीचे का कठिन भाग।

३ : आभ्यन्तर का भाग।

बाह्य स्तर : यह अधिक रसमय होता है। इसे छेदन करने पर क्षीर श्वेत वर्ण का निकलता है। इस पर ही कांटे होते हैं।

कठिन स्तर : त्वक् के नीचे और मृदु भाग के ऊपर यह कठिन भाग होता है। यह दृढ़ होता है। स्पर्श में यह मसृण होता है।

आभ्यन्तर का मृदु भाग : यह सारमय तथा स्पर्श में मृदु होता है। बीच-बीच में स्रोतसों का भाग भी दिखाई पड़ता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिमाण : यह स्नूही कांड भार में ६ औंस और आयाम २ से ३ इंच, चौड़ाई में डेढ़ इंच, मोटाई में एक इंच होता है।

वर्ण : बाह्य हरित वर्ण का भीतर बीच का मज्जा भाग श्वेत।

रस परीक्षा : कटुतिक्त व कषाय।

गंध परीक्षा : मृदु ग्लानिकर।

स्पर्श : मृदु श्लक्ष्ण स्निग्ध पिच्छिल दारुण व लघु।

शब्द परीक्षा : यह अभंगुर है कांड में कोई शब्द नहीं मिलता।

गुण विनिश्चय : कटुतिक्त प्रधान होने से यह आग्नेय गुण का है।

गांगेरुकी कांड परीक्षा : ग्रेविया पोपुलीफोलिया। (Gravia Populifolia)

नाम : गांगेरुकी। गंजेटी।

वर्ग : परुषकादि। टिलिएसी। (Tilaceae)

भाव मिश्र : बलादि वर्ग।

आकृति विज्ञान : गांगेरुकी का कांड नये पौधों में हरित वर्ण का तथा पुराने पेड़ों में कृष्णाभ रक्त वर्ण का होता है। इसका एक बहुवर्षायु क्षुप होता है जिसकी ऊंचाई ३ से ६ फीट तक होती है। इसके कांड मूल से ही कई निकल कर एक गुल्म का सा स्वरूप बना लेते हैं। पत्र एकांतरित और प्रायशः दन्तुर होते हैं। स्पर्श में कर्कश होते हैं। मूल हल्के श्याम वर्ण की होती है जिसकी मोटाई हाथ जितनी मोटी होती है। मूल से कई उपमूल निकलती हैं।

कांड का छेद : कांड का छेद लेने लेने पर इसमें ३ स्तर दिखई पड़ते हैं। इसके कांड का ऊपरी वर्ण हरे भूरे रंग का नये में तथा पुराने कांड में कृष्णाभ रक्त वर्ण का, स्पर्श में रुक्ष तथा कठिन होता है। इस पर यत्र-तत्र श्वेत व वर्ण के चिह्न दिखाई देते हैं। त्वगीय भाग सरलता से पृथक् किया जा सकता है। कांड पर पत्र निकलेने के चिह्न मिलते हैं। छेदन पर तीन स्तर दिखाई देते हैं, यथा :

बाह्य स्तर : अत्यन्त पतला हरे भूरे वर्ण का स्पर्श में रुक्ष होता है।

द्वितीय स्तर : हरित व पतला होता है इसकी रचना सौत्रिक होती है।

तृतीय स्तर : इसमें काष्ठ का भाग होता है, जो श्वेत वर्ण का होता है। यह कठिन और दृढ़ सूत्रों का बना होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिमाण : कांड के टुकड़े छोटे-बड़े होने से लम्बाई, चौड़ई और मोटाई भिन्न-भिन्न होती है।

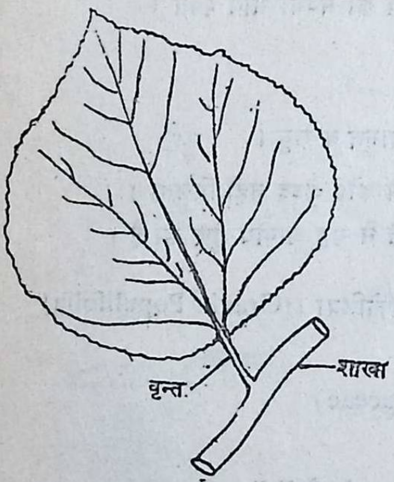

चित्र ९०

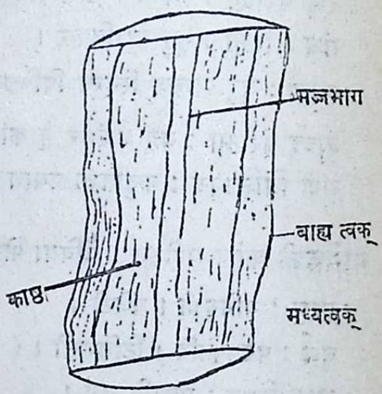

चित्र ९१

रस विज्ञान : प्रायशः मधुर और कषाय होता है।

गंध : मृदु व सुगन्धित होता है।

मूर्तगुण : कठिन, खर और लघु होती है।

शब्द परीक्षा : भंग होने पर चर्र शब्द होता है।

वर्ग विनिश्चय : प्रायशः मधुर और ईषत् कषाय होने से यह पार्थिव वर्ग की औषधि है।

मंज़िष्ठा : रुबिया कार्डिफोलिया : (Rubia Cardifolia)

नाम : मंजिष्ठा।

वर्ग : मंजिष्ठादि : (Rubeaceae)

चरक : वर्ण्य, विषघ्न, ज्वरहर वर्ग।

सुश्रुत : प्रियंग्वादि पित्तसंशमन।

ऐतिहासिक विवरण : मंजिष्ठादि कषाय का यह प्रसिद्ध द्रव्य है। भारतवर्ष में इसका प्रयोग ईस्वीय सन् से दो हजार वर्ष पूर्व से होता चला आ रहा है। इसका प्रयोग ईस्वी सन् से २००० वर्ष पूर्व के चरक व सुश्रुत के साहित्य में मिलता है। चरक इसे विषघ्न, वर्ण्य तथा ज्वरहर वर्ग में तथा सुश्रुत में प्रियंग्वादि वर्ग तथा पित्तसंशमन वर्ग में तथा ईस्वी सन् के बाद के धन्वन्तरि

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

निघंटु, राज निघंटु, मदनपाल निघंटु, भावप्रकाश निघंटु आदि में सबमें मिलता है। इसका प्रयोग औषधि व रंजन कर्म के लिए व्यापारियों द्वारा सदा से होता चला आ रहा है। पूर्वकाल में रक्त वर्ण का वस्त्र रंजन इसी के साथ होता था।

विवरण : यह लताजातीय औषधि है, जो कि पर्वतीय प्रदेशों में होती है। भारतवर्ष, यूरोप, दक्षिण अफ्रिका में भी पाई जाती है। यह बहुवर्षीय आरोहिणी लता होती है। इसका मूल लम्वा लचकदार और ऊपर की मूल त्वचा हल्की रक्त वर्ण की होती है।

काण्ड : वह बहुत लम्बी होने से योजनवल्ली कहलाती है। यह स्पर्श में रुक्ष कहीं-कहीं पर ऊभारदार कम काष्ठांशयुक्त होती है। शुष्कावस्था में इसका काण्ड ऊपर से झुर्रीदार व विषम होता है। ऊपर का वर्ण श्वेताभ रक्त त्वचा मोटी और काष्ठ का भाग अल्प होता है, जो पीत रक्त वर्ण का होता है। काण्ड की त्वचा का वर्ण गहरे रक्त वर्ण का होता है। काष्ठ मध्यम जो हल्के लाल वर्ण की होती है। शाखायें उमयपूर्ब में से मानांतर होती है। उपशाखायें भी बहुत निकलती हैं।

पत्र : पत्र का आकार हृदयाकार होता है। पत्र वृंत्त लम्बेचतुष्कोण रोमदार होने से खुरदरे और कंटकित होते हैं। पत्र हरित चमकदार ३ से ९ सेंटी मीटर लम्बे और डेढ़ से साढ़े तीन सें० मीटर चौड़े होते हैं और चार पत्र के गुच्छे एक स्थान से निकलते हैं। पहले दो के पत्र व वृन्त बड़े दूसरे दो के छोटे होते हैं और आमने-सामने एक चक्र में होते हैं। नीचे के पत्र बड़े और ऊपर के छोटे होते हैं। पत्र पृष्ठ और सिरायें भरी हुई लोमश व रुक्ष होती हैं। पत्राग्र तीक्ष्ण या नोकदार होते हैं।

पुष्प : पत्र कोण से पुष्प की मंजरी निकलती है, जो त्रिकोणाकार होती है। वाह्य पुष्प कोश ६ मिलीमीटर लम्बा गोल नलिकाकार का मसृण होता है।

आभ्यन्तर कोष : हरे वर्ण का तीन मिलीमीटर लम्बा ५ पुष्प पत्र युक्त वृत्त तीक्ष्णाग्र मसृण होता है। स्त्री केशर दो होते हैं।

फल : चार से ६ मिलीमीटर व्यास के गोल, चिकने, चमकदार, रक्त कृष्ण वर्ण के होते हैं।

मंजिष्ठा काण्ड परीक्षा : रुबिया कार्डी फोलिया

नाम : मंजिष्ठा कांड।

वर्ग : मंजिष्ठादि।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चरक : वर्ग । विषघ्न । ज्वरहर ।

सुश्रुत : प्रियंग्वादि, पित्तसंशमन ।

आकृति विज्ञान : यह मंजिष्ठा का कांड इसकी लता का शुष्क कांड है। बाहर से देखने में यह हल्के रक्त वर्ण की गोलाकार स्पर्श में कठिन रुक्ष ऊपर से नीचे तक सिकुड़ी हुई झुर्रीदार व आकार में नलिकाकार है। ऊपर की त्वचा पर झुर्रियाँ हैं बीच-बीच में गांठदार प्रशाखा चिह्न युक्त कुछ ऐंठी हुई होती हैं। झुर्रियों के बीच सीतायें बनी हुई हैं। स्पर्श में यह कड़ी, नरम, खर व लघु हैं इसके कांड को भिगो कर आर्द्र करने पर यह पर्याप्त मोटी हो जाती हैं।

च्छेदन : शुष्क मंजिष्ठा की चौड़ाई में छेदन करने पर इसमें तीन भाग दिखाई पड़ते हैं।

१ : प्रथम स्तर : यह त्वचा का भाग है जो कि ऊपर होता है। इसमें ऊपर की पतली त्वचा श्वेतारुण वर्ण की तनुचमकदार होती है। इसके नीचे की मोटी त्वचा गहरे लाल वर्ण की मोटी होती है।

२ : द्वितीय स्तर : कृष्ण प्रधान ईषत् पीत श्वेत वर्ण की स्पर्श में कठिन है।

३ : तृतीय स्तर : काष्ठमय भाग के भीतर मज्ज भाग रक्त वर्ण का दिखाई देता है।

आर्द्र मंजिष्ठा : इसका भी अनुलम्ब छेद लें तो वही तीन भाग दिखाई पड़ते हैं। प्रथम भाग में त्वचा ऊपर यत्रतत्र फटी हुई, नीचे मंजिष्ठ वर्ण का त्वगीय भाग दिखाई पड़ता है। द्वितीय भाग काष्ठमय पीत श्वेत वर्ण का तथा नीचे मज्ज भाग रहता है।

परिमाण : कांड १ या २ इंच के टुकड़ों में दो से तीन सेंटीमीटर मोटा।

विलेयता : वारि में अधिक और तैल, घृत में कम विलेय है।

रस परिज्ञान : प्रधान रस मधुर पश्चात् कषाय व तिक्त रसवाला।

शब्द परिज्ञान : कांड भंगुर है। भग्न काल में चट ऐसी होती है। ज्वलन काल में चट-चट शब्द होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण रक्त पीत होता है। चूर्ण : रक्ताभ। क्वाथ : घन रक्त वर्ण का। घृत व तैल का वर्ण : हल्के रक्त वर्ण का। ज्वाला। पीतारुण।

गण विनिश्चय : प्रायशः मधुर ईषत् कषाय व तिक्त होने से यह पार्थिव वर्ग की औषधि है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वृद्धदारुक : अरजीरियास्पेसिओसा : (Argeria Speceosa)

नाम : बिधारा । वृद्धदारुक ।

वर्ग : शंख पुष्प्यादि वर्ग । कनभलभुलेसी । (Convulvulaceae)

चरक : वल्य ।

सुश्रुत : अधोभागहर ।

आकृति विज्ञान : यह कांड आकार में मोटा, लम्बा, गोल, नलिकाकार होता है। स्पर्श में यह खर है। निरीक्षण से ज्ञात होता है कि इसकी त्वचा में ऊपर से नीचे की और आती हुई रेखायें हैं। रेखाओं के साथ त्वक् भाग पर श्याव वर्ण के गोल-गोल धब्बे पड़े हुए हैं। कांड पर स्थान-स्थान पर ग्रंथि

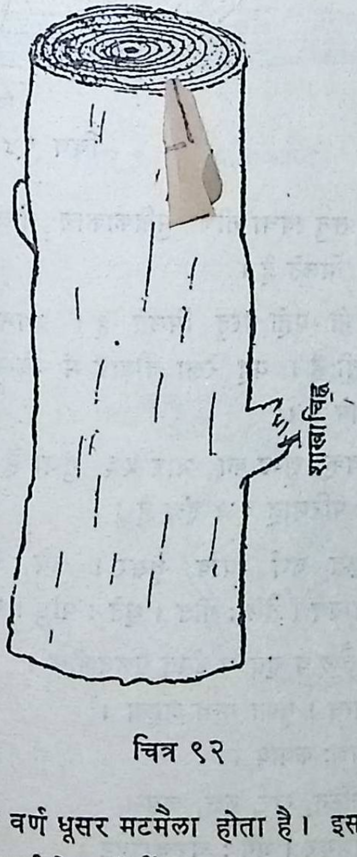

चित्र ९२

पाई जाती है। इसका वर्ण धूसर मटमैला होता है। इस पर रेखाओं के उभार धूसर और खात श्याम वर्ण के रहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

च्छेदन विवरण : इसका व्यत्यस्त छेद लेने पर गोलाकार मुद्राकृति आवरण दिखाई देते हैं। आर्द्र में यह अधिक स्पष्ट दिखाई देते हैं। आर्द्र में प्रायः ६ मुद्रिकाकार घेरे दिखाई देते हैं। शुष्क कांड में यह उतने स्पष्ट नहीं होते।

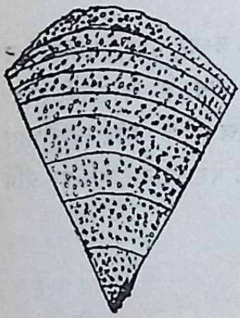

चित्र ९३

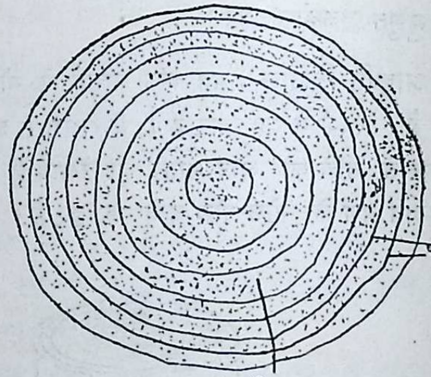

चित्र ९४

सबसे ऊपर बाहरी तनु त्वचा नीचे मुद्रिकाकार गोल स्तर और इन स्तरों के बीच बहुसंख्यक छिद्र मिलते हैं।

अनुलम्ब छेद में भी यही वस्तु मिलते हैं। प्रथम तनु त्वचा पश्चात् नलिकाकार रेखायें रहती हैं। यह रेखा चौड़ाई में दिखाई देने वाले छिद्र के विभाजित होने से बन गये हैं।

परिमाण : इस त्वक् खण्ड का भार ५६ गुंजा है। आयाम आधा इंच विस्तार साढ़े तीन इंच, परिणाह ३·१ इंच है।

वर्ण परीक्षा : प्राकृत वर्ण श्याव धूसर। कषे : श्वेत धूसर। चूर्णे : श्यावारुण। क्वाथे : पीतारुण। तैले : पीत। घृते : पांडु। ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : जल, तैल व घृत में ईषत् घुलनशील।

गंध परीक्षा : सुगन्ध। धूपन गन्ध अहृद्य।

रस परीक्षा : प्रायशः कषाय।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : अभंगुर। भंगे : चरचराहट।

गण विनिश्चय : कषाय रस प्रधान होने से यह वायव्य है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मधुयष्ठी परीक्षा : ग्लिसराइजा ग्लैब्रा : (Glycerrahiza glabra)

नाम : मधुयष्ठि कांड ।

वर्ग : शिम्बी कुल । उप कुल—अपराजितादि ।

चरक : कंठ्य, जीवनीय, संधानीय, वर्ण, कंडूघ्न, मूत्र विरजनीय, शोणितास्थापन, छर्दिनिग्रहण, स्नेहोपग, वमनोपग, आस्थापनोपग ।

सुश्रुत : काकोल्यादि, सारिवादि, अंजनादि, हरिद्रादि, वृहत्यादि, न्यग्रोधादि, अम्बष्ठादि ।

आकृति विज्ञान : यष्ठी मधु का कांड छोटे टुकड़ों के रूप में मिलता है। इसमें मूल और कांड के भी टुकड़े मिले रहते हैं। यह गोल, वृत्ताकार, लम्बा

चित्र ९५ मधुयष्टि काण्ड

चित्र ९६ त्वक रहित द्रव्य

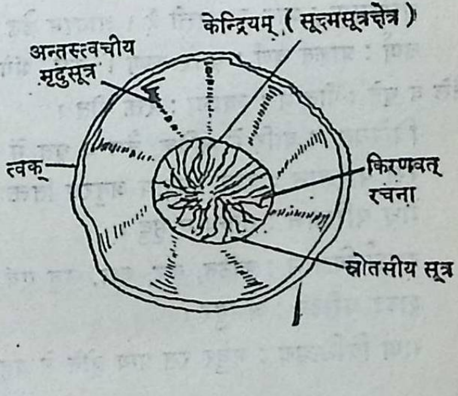

चित्र ९७ व्यत्यस्तच्छेद

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और नलिकाकार होता है। इसका ऊपरी पृष्ठ कुछ-कुछ झुर्रीदार दिखाई देता है। कहीं-कहीं पर शाखा निकलने के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। इसका ऊपरी भाग रक्ताभ कृष्ण है। मूल पर छोटे-छोटे उपमूल के चिह्न दिखाई देते हैं। यह आकार में नलिकाकार है। कहीं पर यह एक तरफ मोटा एक तरफ पतला हो गया है।

कांड : ऊपरितन त्वक् हटाने पर नीचे पीत वर्ण दिखाई पड़ता है। अनु-प्रस्थ छेद लेने पर तीन भाग दिखाई देता है। यथा :

१ : वाह्य त्वक् : पतला कृष्ण रक्त वर्ण का चतुर्दिक व्याप्त है।

२ : आभ्यन्तर भाग : यह पीताभ तंतुमय भाग है। तंतुओं के बीच में कुछ पिष्ठमय भाग भी है जिसका वर्ण पीत है।

३ : मध्य भाग : यह मध्य का सार भाग है। वर्ण में पीत है और इसमें तंतु भाग कम है।

मूल का छेद : अनुपस्थ छेद लेने से मुख्यतः दो भाग दिखाई पड़ते हैं।

बाह्य त्वक् भाग : यह कांड त्वक् से अधिक मोटा है। रचना एकसी ही है।

२ : मध्य भाग : यह भाग अधिक मोटा तथा कुछ तंतुमय है। वर्ण कुछ श्वेताभ है।

अनुलम्ब छेद : उतने ही स्तर हैं। केवल इसमें लम्बाई में तंतु अधिक दिखाई देते हैं।

परिमाण : भार २४ रत्ती है। आयाम डेढ़ इंच परिणाह ३ । ४ इंच है।

वर्ण : प्राकृत वर्ण : घूसर कृष्ण। कषे, भंगे, चूर्णे : पीत। क्वाथे : पीत। तैले व घृते : पीताभ। ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : वारि में अधिक, तैल व घृत में कम विलेय है।

रस परिज्ञान : मधुर रसप्राय अनुरस तिक्त।

गंध परिज्ञान : सुगन्ध व मृदु।

स्पर्श विज्ञान : कठिन, खर, रुक्ष, लघु एवं समशीतोष्ण।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

गण विनिश्चय : मधुर रस प्राय होने से यह पार्थिव वर्ग का है।

परीक्षोपयोगी पत्र का निर्माण

ओषधार्थं जितने भी पत्र व्यवहृत होते हैं वे सब पूरे नहीं होते। टूटे-टाटे, खण्डित चूर्ण के रूप में या विकृत रूप में बाजार में पाये जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तथा कुछ द्रव्यों के हरे पत्र प्रयोगार्थ लिये जाते हैं। तो जो बाजार से लिये जाते हैं वह स्पष्ट न होने से उनको परीक्षोपयोगी बनाना पड़ता है। इसकी विधि निम्न है।

१ : आर्द्र पत्रों के पूर्ण रहने पर परीक्षा सरल हो जाती है। शुष्क पत्रों में पता लगाना कठिन होता है।

२ : इस निमित्त शुष्क पत्तियों को लेकर एक शीशे के पात्र में पानी के साथ रख देते हैं। जब भीग कर मृदु हो जाती है तब उन्हें फैला कर रखते हैं। जब काम जल्द करना होता है तब इनको गर्म पानी में कुछ देर रखना पड़ता है। तब यह मृदु हो जाती हैं। इसके बाद इसकी आर्द्रता ब्लाटिंग पेपर में रख कर सुखा देते हैं। या वाष्पीकरण विधि से निकाल देते हैं।

३ : अणुवीक्षण परीक्षा या रासायनिक परीक्षा के लिये यथा—कैल्सियम आक्झलेट या लोम आदि (Trichome) के लिये परीक्षा करनी हो तो कुछ पत्रों को २ वर्ग मीलीमीटर के टुकड़ों में काट कर क्लोरल हाइड्रेट के द्रव में रख देते हैं। फिर उसको तब तक वाष्पित करना चाहिये जब तक कि वह पारदर्शक न हो जाय। पुनः समान भाग ग्लिसरिन व क्लोरल हाइड्रेट में रखना चाहिये। तब अणुवीक्षण की परीक्षा करना चाहिये।

४ : दर्शन परीक्षा में पत्रों में निम्न बातें लिखना चाहिये :

१ : पत्र वृन्त :

यह सवृन्त पत्र है या अवृन्त पत्र है। कई पत्र अवृन्त होते हैं।

२ : लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, चौड़ा, कृश या किस प्रकार का है।

३ : आकार क्या है। पत्र धार तक पहुंचने में क्या आकृति रहती है। मोटा, पतला, लम्बा, अतिलघु या वृहत्।

४ : पत्रधार या लैमिना : (Lamina)

पत्रधार का क्या क्रम है। पूर्ण, अपूर्ण, दन्तुर, कर्णिकेय आदि।

२ : शिरा विन्यास किस प्रकार का है। साधारण जालीदार वृत्ताकार अर्ध-वृत्ताकार।

३ : किनारे : पूर्ण, तरंगायित, दन्तुर खण्डित छिद्र आदि युक्त।

४ : पत्राग्र : तीक्ष्ण धारहीन, कुंठित, दबा हुआ।

५ : आधार : समान, असमान, वृत्ताकार, आदि।

६ : पृष्ठ : लोमश, श्लक्ष्ण, ग्रन्थि युक्त विषम, आदि।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

७ : आकृति या आउट लाइन : आकार क्या है। रेखाकृति, हृदयाकृति, दर्वीवत, लम्ब गोल।

८ : वर्ण : समग्र पत्र देख कर विशेष वर्ण को लिखना चाहिये।

९ : दार्ढ्य या टैक्श्वर : कड़ा, रुक्ष, कठिन, कर्कश, भंगुर, अभंगुर आदि।

१० : पत्र मान : लम्बाई, चौड़ाइ आदि। पत्र के मान को नाप कर लिखना चाहिये।

११ : रस, गन्ध, शब्द, आदि अवशिष्ट बातें भी लिख देना चाहिंये।

तमालपत्र

Cinnamomum Tamala

N. O. Lauracæa

आकृति परीक्षा :

हरित मलिन वर्ण के लम्बे, नोकीले, सवृन्त पत्र, जिनका ऊर्ध्वपृष्ठ श्लक्ष्ण एवं कुछ अधिक हरा होता है। वृन्तमूल से एक स्थूल मध्यसिरा आरम्भ होती है जिसमें से निकट ही एक २ शाखा दोनों ओर निकलती है जो पत्र के अधोभाग में मिलकर समाप्त हो जाती है। ये सिरायें अधःपृष्ठ पर उभारयुक्त और स्पष्ट होती हैं और ऊर्ध्वपृष्ठ पर इतनी स्पष्ट नहीं होती हैं। इन सिराओं से अनेकों सूक्ष्म शाखायें निकलती हैं जो कि सम्पूर्ण पत्र जालकाकार रचना बनाती हैं।

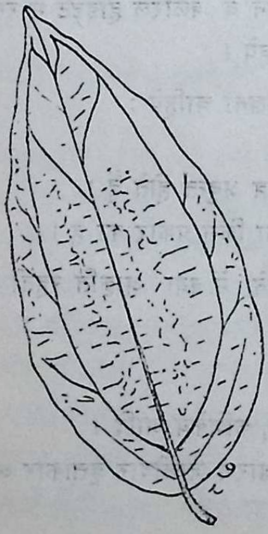

चित्र ९८ तमालपत्र

यान्त्रिक परीक्षण :

विवर्द्धक काँच यन्त्र से देखने पर मुख्य सिरायें किंचित ऐंठनयुक्त प्रतीत होती हैं और इनके मध्य में सम्पूर्ण पर सूक्ष्म शिराजालों से आवृत सूक्ष्म कोष्ठों में विभक्त प्रतीत होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिमाण :

४" × १·४" के पत्र का भार १ रत्ती	आयाम २" से ६" तक	विस्तार ६" से २" तक

वर्ण

प्राकृत वर्ण : हरित मलिन

कषे : हरित

भंगे : हरित

चूर्णे : हरित पाण्डु

क्राथे : पीत

तैले : हरित

घृते : हरित

ज्वाला : पीत

विलेयता :

वारि	तैल,	घृत
+	+	+

रस परीक्षा :

मधुर,	तिक्त	कटु
+ +	+ +	+

गन्ध परीक्षा :

शुष्क द्रव्य	सुगन्ध,	मृदु
	+	+
धूपन	उग्र	

स्पर्श परीक्षा :

मृदु, श्लक्ष्ण, स्निग्ध, लघु

शब्द परीक्षा :

भग्नकालीन : करकराहट

ज्वलनकालीन : चरचराहट

भंगुर : +

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गणविनिश्चय :

यह मधुर एव 'तिक्त रस प्रधान होने के कारण आप्य है।

वासा Adhatoda Vasica
N. O. Acanthaceæ

आकृति विज्ञान पत्र :

वासा के पत्र हरित वर्ण के होते हैं। ऊपर से नीचे की ओर इसके पत्र उत्तरोत्तर बड़े दीख पड़ते हैं। शाखा पर ये पत्र परस्पराभिमुख दोनों ओर निकलते हैं। शाखा से अभिमुख पत्रद्वय के निकलने की दिशा प्रत्येक पर्वान्तर पर समान और समीपस्थ पर्व पर पूर्ण विरुद्ध होती है। पत्रवृन्त लम्बा व कठिन होता है। पत्र का ऊर्ध्वपृष्ठ गहरे हरे वर्ण का एवं चिकना होता है और अधःपृष्ठ श्वेताभ हरित वर्ण का एवं उभरी हुई सिराओं से युक्त होता है। पत्रोदर में एक मध्यरेखा स्पष्ट उभरी हुई दिखाई देती है उस मध्यरेखा से भी पत्रान्त में जाती हुई रेखायें परस्पराभिमुख नहीं निकलतीं, प्रत्युत किञ्चिद् अन्तर देकर निकलती है। इन रेखाओं (सिराओं) के अतिरिक्त और भी सूक्ष्म सिराओं की प्रशाखायें पत्र पर प्रसृत दीख पड़ती हैं। पत्राग्र नुकीला, मध्य-स्थूल एवं अन्त तनु होता है।

शाखा का बाह्यावरण मृदु, स्निग्ध होता है इसके भीतर काष्ठ भाग होता है। इस प्रकार शाखांक भी ३ स्तर विभक्त होते हैं :—

१—त्वगभाग

२—मध्य पेशी भाग

३—काष्ठ भाग

काष्ठ भाग के भी ठीक मध्य में कुछ मज्जांशवत् प्रतीति होती है। काष्ठ भाग की रचना तन्तुमय होती है।

अनुप्रस्थ विच्छेद में मध्यमज्जा के अतिरिक्त मध्य विन्दु दिखाई पड़ता है इसको आवृत करती हुई एक गोल-परिधि की रेखा भी दृष्टिगोचर होती है।

अनुलम्बच्छेद में काष्ठ का तन्तुमय भाग स्पष्ट हो जाता है तथा मज्जा का धूसर भाग भी संहत-सा दृष्टिगोचर होता है।

परिमाण :

भार : १५ गुंजा

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दैर्घ्य : ६" इंच
आयाम : १ से ६"

वर्ण :

प्राकृत : हरित
कषे : हरित
दाहे : कृष्ण
भंगे : हरित
चूर्णे (कल्क) : हरित
क्वाथे : हरित पीत
तैले : पीत
घृते : पीत

विलेयता :

जल,	तैल,	घृत
+	+	+

गन्धविज्ञान :

शुष्क : अवसादन
आर्द्र : मृदु गन्ध
धूपनकालीन : उग्र गन्ध

रस : तिक्त
स्पर्श : मृदु, शीत, लघु
शब्द : भङ्गुर
भग्नकालीन = चर्र शब्द

गणविनिश्चय :
तिक्त रस प्रधान होने के कारण यह द्रव्य वायव्य है।

सनाय की पत्तियाँ। सेनी फोलियम
(Senae folium)

नाम : स्वर्णपत्री। सनाय। सनामक्की।
वर्ग : शिम्बी कुल : लेगूमिनोसी : (Leguminoceæ)
प्राप्ति स्थल : यह सनाय की दो जातियों से प्रात होने वाला पत्र है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जो कि शुष्कावस्था में प्रयुक्त होता है। इन्हें कैसिया–अंगुस्टी–फोलिया और कैसिया-एक्यूटी-फोलिया कहते हैं। व्यापारिक नाम टिनेवेली सेना और एलेक्जेन्ड्रियन सेना कहते हैं। इसमें की प्रथम कैसिया अंगूस्टी कोलिया भारत धर्षं से और एक्यूटी फोलिया मिश्र देश से प्राप्त होती है। अरब में मिलने वाली सनाय भी बाजार में आती है।

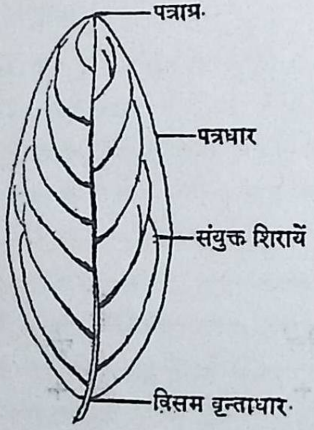

चित्र ९९ भारतीय

चित्र १०० एलेक्जेंड्रियन

इनके स्वरूप विज्ञान के लिए दोनों के तुलनात्मक विवरण साथ-साथ दिए जा रहे हैं।

आकृति विज्ञान : भारतीय सेना से एलेक्ज़ेन्ड्रियन सेना का पत्र अधिक टूटा हुआ बाजार में मिलता है।

विवरण	भारतीय	मिश्र देशीय
पत्रवृन्त	अनुपस्थित	अनुपस्थित
बनावट	संयुक्त पेरी पिन्नेट	सं० पेरी पिन्नेट
शिरायें	एकान्तरित	एकान्तरित
पत्रधार	अखण्डित, अन्तर भुग्न	अखण्डित, बहुत कम अंतः भुग्न
पत्रशिखर	कम तीच्णाग्र	तीक्ष्णाग्र
स्तर	कम परिपुष्ट	परिपुष्ट
आकार	मल्लाकृति	भल्लाकृति किन्तु अण्डाकार
वर्ण	हरित पीत	हरित पीत

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्तर	पतला नमन शील	पतला भंगुर
आयतन	२ से ३. ५ से० मी० लम्बा	ढाई से पाँच से० मी० लम्बा
गंध	सामान्य	सामान्य
रस	ईषत तिक्त, पिच्छिल, कषाय	पिच्छिल तिक्त, कषाय,
गण	प्रायश : तिक्त कषाय होने से वायवीय वर्ग का है।	

चूर्ण का वर्ण :

वर्ण : पीत हरित से पीत वर्ण तक।

गंध : विचित्र किस्म का सनाय के गन्ध से मिलता-जुलता।

रस : तिक्त विचित्र किस्म का कषाय रस मिश्रित।

इसके अतिरिक्त इसमें पत्र शिरायें, पत्राधार के अंश और पिच्छिल वस्तु हरित वर्ण व केलसियम और आक्झलेट के अंश पाये जाते हैं।

मिश्रण : सनाय मक्की। बम्बई व अरेबियन सनाय इसमें मिले हुए आते हैं। कभी-कभी इसमें देशी सनाय के जिसे आवर्तकी कहते हैं इसका भी भाग मिला हुआ मिलता है किन्तु यह आकार-प्रकार में बड़े और गहरे रंग के होने के कारण तथा शिरायेंपरिपुष्ट होने से सरलता से पहचान लिये जाते हैं।

*तगर : बालकम् : वैलेरियन वैलिची
(Valarian Valichi)

नाम : सुगंधवाला, बालकम्।

वर्ग : जटामांसी।

चरक : तिक्त स्कंध।

सुश्रुत :

आकृति विज्ञान : यह सुगन्ध बाला नाम के क्षुप का मूल है जो कि वैलेरियाना वालिची नाम के पौधे के मूल से प्राप्त होता है। आज कल बहुत से वैद्य इसे तगर के नाम से पुकारते हैं। यह ५ सेंटीमीटर लम्बा और ५ से १० मिलीमीटर व्यास में पतला नलिकाकार, झुका हुआ होता है। इसके मूल के ऊपर पत्र के चिह्न होते हैं। थोड़ी दूर पर, वृताकार चिह्न तथा उपमूल के चिह्न बहुत बने पाये जाते हैं। इसका वर्ण काला भूरा गहरे

* यह विषय मूल-प्रकरण का है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रंग का होता है। इसके ऊपर के भाग पर पत्र व कांड के अवशिष्ट चिह्न होते हैं।

स्थान : भारतवर्ष तथा ग्रेट ब्रिटेन, हालैंड, जरमनी, जापान आदि ।

आकार : यह चार से पांच सेंटीमीटर लम्बा होता है। इसके उपमूल २ से १० सेंटीमीटर लम्बे होते हैं। यह पतले नलिकाकार बहुग्रथियुक्त टेढ़ी, सिकुड़ी हुई कमी चपटे आकार की जड़ की तरह मिलती-जुलती आकार की होती है।

वर्ण : गहरा काला भूरा।

गंध : सुगंधित।

रस : मधुर, सुन्धित, ईषत्तिक्त।

भंग : सरलता से टूट जाता है।

स्पर्श : रुक्ष, खर, कठिन।

वर्ग : प्रायशः मधुर व ईषत्तिक्त होने से यह पार्थिव द वर्ग का है।

विशेषता : इसका विशिष्ठ गन्ध व मूल मध्य की रचना है।

च्छेदन : छेदन में ऊपर हल्का त्वगीय भाग तथा नीचे कठिन काष्ठ मय अंश प्राप्त होता है। इसमें पोषक तत्त्व अधिक होते हैं। जो कि स्टार्च के रूप में मिलते हैं।

संगठन : इसमें सुगन्धित तैल, राल का अंश, चेटिनीन, वैलेरियेनीन, स्टार्च व पिच्छिल तत्त्व मिलते हैं।

मिलावट : इसमें वेलेरियाना अंगुस्टि फोलिया, बेलेरियाना आकिसि नेलिस व लैटिफोलिया का मिला हुआ भाग रहता है।

भेद : विदेशी वेलेरियाना आकिसी नेलिस का मूल अधिक मोटा और सुगंधित होता है। विदेशी फर्म इसको ही प्रयोग में लाते हैं।

नोट : जापानी वैलेरियन के कई भेद इससे मिलते-जुलते मिलते हैं।

भांग के पत्र : लीव्स आफ कैनाविस इंडिका
(Leaves of Canabis Indica)

नाम : गंजा, भंगा, मातुलानी, मादनी, विजया, जया।

चरक : मादक।

सूश्रुत :

प्रा॰ वर्ग (Moraceæ)

प्रप्ति स्थान : यह भांग की परिपुष्ट पत्तियां हैं जो कि इसके पुष्पकाल में पाई जाती हैं और इनका संग्रह किया जाता है। इसका नाम कैनाविस

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सैटिवालिन है। वास्तव में इनका संग्रह तब किया जाता है जब कि पत्तियां पुष्ट हों और उनमें का निर्यास न निकाला गया हो।

संग्रह स्थान : ऊष्ण कटिबंध केदेश, भारतवर्ष और अफ्रिका।

वर्ग : मोरेसी।

आकृति विज्ञान : भांग के पत्र के साथ उसके उप-पत्र, पुष्प व कदाचित् फल भी मिले होते हैं। अतः इसके साथ सबका मिश्रण पाया जाता है। सम्मिलित वर्ण हल्के हरे रंग का होता है। पत्तियां हरी, चोड़ी, मोटी होती हैं। इनकी चौड़ाई १ से १० सेंटीमीटर और लम्बाई १० से ३० सें० मी० तक होती है। यह प्रायः टुकड़ों में मिलती हैं। शुष्क औषधि में गंध विशेष किस्म का

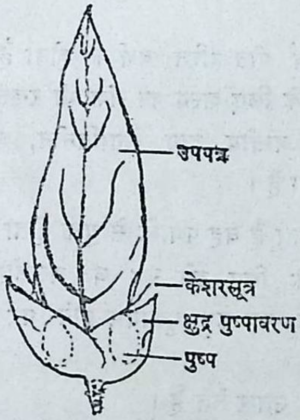

चित्र १०१ भांगपत्र सपुष्प

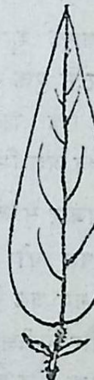

चित्र १०२ दर्व्याकार उपपत्र

चित्र १०३ त्रिपत्र आवरण

चित्र १०४ भांग का बीज

और सुगन्धित होता है। भिगोने पर इनकी सुगन्ध विशेष प्रकार की होती है। इनका स्वाद तिक्तप्राय होता है।

शाखाएँ : पतली और लम्बाई में इन पर धारियां पड़ी हुई होती हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ब्रैक्टस : इसमें दो प्रकार के उप-पत्र मिलते हैं। साधारण और आंतरित। दोनों प्रकार के उप-पत्र आकार में भल्लाकृति होते हैं। पत्रधार अखण्डित और आन्तरित आये हुये और स्टिप्युलेट होते हैं।

क्षुद्र उपपत्र : यह दो-दो की संख्या में ब्रैक्ट के कोण से निकले हुए होते हैं। यह अण्डाकार और अग्रभाग में तीक्ष्ण होते हैं।

पुष्प : पुष्प प्रायः पत्रकोण से निकले होते हैं। इसके उपपत्र कुछ रक्त-पीत वर्ण के होते हैं। इसमें स्त्री जाति के पुष्प पाये जाते हैं। गर्भाशय एक होता है और वह एक आवरण से ढँका होता है। पुष्प पत्रों के पास से दो स्त्री सूत्र केशर निकलते हैं।

फल : एकाकी शुष्क, अण्डाकृति पीत हरित वर्ण का होता है। इसका बीज बड़े अङ्कुर से युक्त व कुछ भ्रूण के लिए शस्य का अंश भी रखता है।

संगठन : एक प्रकार का राल जातीय द्रव्य कैनाविनीन, चोलाइन व सुगन्धित तैल का अंश मिला हुआ होता है।

नोट : बाजार से जो माल मिलता है वह पत्रादि से युक्त होता है। अतः परीक्षा से पूर्व पत्र को मृदु बनाने के लिए इसे २४ घंटे अलकोहल में डुबा कर धोकर के गर्म जल मे १५ मिनट रख कर मुलायम होने पर फुला कर तब परीक्षण और निरीक्षण करते हैं।

पत्र, उप-पत्र और ब्रैक्ट का चित्र उतार लेते हैं।

पृश्नी पर्णी के पत्र

नाम : पृश्निपर्णी, पिठिवन, के पत्र।

गण : चरक : अंगमर्द प्रशमन संधानीय, शोथहर।

सुश्रुत : विदारिगंधादि, हरिद्रादि, लघु पंचमूल।

प्राकृतिक वर्ग : पलाशादि।

आकृति वर्णन : यह बाजार से टूटे-टाटे, मुड़े हुए मिलते हैं। इनको पूर्ववत बना कर तब आकृति का रूप लिखने में सरलता होती है। कभी यह ताजे भी मिलते हैं। तब आकृति का लिखना सरल हो जाता है। इसके क्षुप वर्षा ऋतु में अधिक मिलते हैं ऊंचाई ३ से ४ फीट होती है। पत्र आन्तरिक लगे रहते हैं। लम्बाई ५ से १५ इंच तक होती है। ३ से ६ इंच तक चौड़े होते हैं। पत्र वृन्त पतले छोटे व सूत्रवत् होते हैं। इन पर सूक्ष्म रोम लगे रहते हैं। एक पत्रवृन्त में ५ या ६ पत्र लगे होते हैं। यह दो-दो के जोड़े

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

में होते हैं। अन्त में एक पृथक् पत्र रहता है। आगे के पत्रों के वृन्त छोटे होते हैं। प्रत्येक पत्र ६ से ८ इंच लम्बा एक से डेढ़ इंच चौड़ा होता है। इनके पत्र धार पूर्ण होते हैं। धीरे-धीरे आगे को संकीर्ण हो जाते हैं। अग्रभाग कुछ तीक्ष्ण हो जाता है।

पृष्ठ : पत्र पृष्ठ दो होते हैं। ऊपर का भाग रक्त श्याव वर्ण का होता है। नीचे पृष्ठ हरित होता है। ऊपरी पृष्ठ पर भूरापन लिये श्वेत वर्ण के चिह्न होते हैं। यह स्पर्श में खुरदरे होते हैं। निम्न पृष्ट पर सूक्ष्म रोम होते हैं।

शिरायें : इस पर कई शिरायें होती हैं। जिससे आकार जालीदार बन जाता है।

गंध : इसका गंध उग्र होता है।

स्वाद : अम्ल व कषाय होता है।

उपपत्र : पत्र के प्रधान वृन्त के साथ दोनों तरफ दो उपपत्र होते हैं। इन पर शिरायें उभरी रहती हैं।

वर्ग : प्रायश: कषाय व अम्ल होने से यह वायव्य वर्ग का है।

घृतकुमारी के पत्र (Aloe)

नाम : ग्वारपाठा, कुमारी, घृत कुमारी पत्र।

प्राकृतिक वर्ग : रसोन कुल लिलिएसी।

आकृति विज्ञान : यह पत्र सदा हरे प्रयोग में लिये जाते हैं।

इसके क्षुप २ से ३ फीट ऊँचे होते हैं। बागों में लगाये जाते हैं। इसकी खेती भी की जाती है। मूल से ऊपर कांड से पत्र निकलते हैं। यह कांड को चतुर्दिक आवेष्ठित करके लगते हैं। यह मोटे दलदार हरे और एक से डेढ़ फीट तक लम्बे होते हैं इनकी चौड़ाई २ से ३ इंच होती हैं। इसकी मोटाई आधे इंच तक होती है। इसके बीच से एक पुष्पदण्ड निकलता है उस पर लाल-बैंजनी रंग के फूल लगते हैं।

पत्र : यह अवृन्त पत्र होता है। यह कांड को चारो ओर से आवेष्ठित करके चलता है। निकास की जगह वर्ण श्वेत होता है। धीरे-धीरे यह आगे को जाकर हरा हो जाता है। इसकी लम्बाई डेढ़ से दो फीट तक होती है। इसके भेदों के अनुकूल पत्र का आकार होता है। चौड़ाई २ से ३ इंच तक हो जाती है। कहीं अधिक भी होती है। यह प्रारम्भ में चौड़े और आगे धीरे-धीरे पतले हो जाते हैं आगे जाकर नोकदार हो जाता है। किनारे भी मोटे होते हैं

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इन पर कांटे लगे होते हैं। यह मुड़े हुए आधे सेंटीमीटर लम्बे होते हैं। पत्र धार पर छिद्र होता है। जो भीतर की तरफ होते हैं। पत्र का बाह्य पृष्ठ

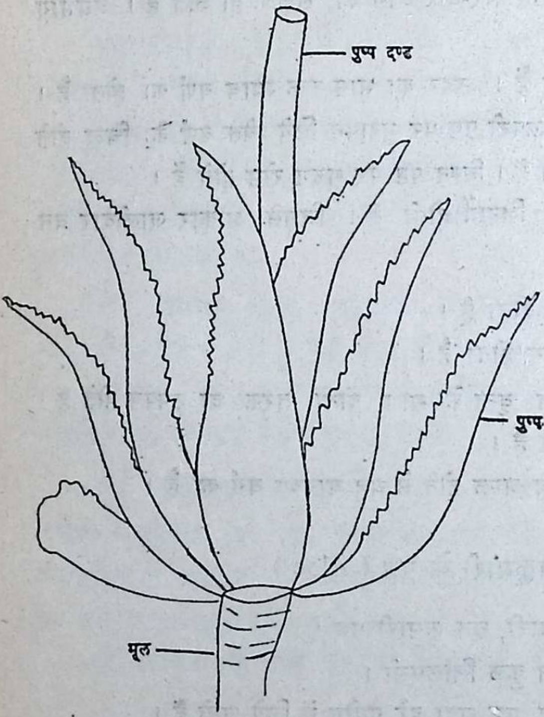

चित्र १०५

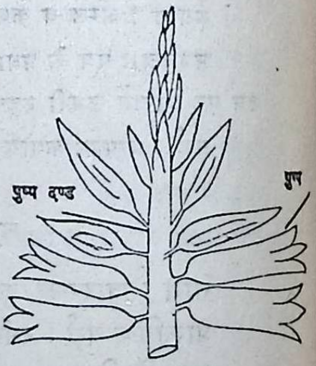

चित्र १०६

उन्नतोदर व आभ्यन्तर पृष्ठ नतोदर होता है। बाह्य व आभ्यन्तर पृष्ठ पर श्वेत-श्वेत चिह्न होते हैं। त्वचा मोटी व रसदार होती है। भीतर का गूदा चमकदार, मोटा व पिच्छिल होता है। इसके बीच-बीच में कुछ सूत्र भी दिखाई पड़ते हैं।

आकृति : तलवार से मिलती-जुलती होती है। दोनों किनारों पर पतलापन आकर धार निकला रहता है। कांटे यहाँ पर होते हैं। जो आरी के दाँत की तरह दिखाई पड़ते।

दृढ़ता : पत्र दृढ़ होते हैं। परन्तु तोड़ने पर टूट जाते हैं। इनसे एक प्रकार का चिकना रस निकलता दिखाई पड़ता है। पत्र के उभय पृष्ट पर दृढ़ गाढ़ा आवरण लगा होता है जो हरे वर्ण का होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रस : रस प्रायः तिक्त होता है किसी में मधुर भी पाया जाता है।
गंध : इसमें एक विचित्र प्रकार की गंध आती है।
स्पर्श : पिच्छिल व चिक्कण होता है।
वर्ग : स्वाद में यह मधुर इर्षत तिक्त होने से आप्य वर्ग का है।

पुष्प परिचय में ज्ञातव्य बातें।

जब किसी पुष्प के वर्णन का विषय उपस्थित होता है तब निम्नलिखित बातों के ऊपर विचार करना पड़ता है।

जहाँ तक हो सके पूर्ण कुसुमदण्ड अथवा इनफ्लोरसेंस की परीक्षा करना आवश्यक हो जाता है। इसमें स्पष्ट लिखना चाहिए कि यह पुष्प कलंगी है या गुच्छ में है अथवा मिश्रित है। पूर्ण पुष्प की परीक्षा कर यह देखना आवश्यक है कि पुष्प का कोई आवश्यक विवरण न छूट जाय।

यथा : यह निममित है अथवा अनियमित है। रेगुलर या जाइगोमारफिक (Regular or Zaigomarphic) यह स्वाभाविक गर्भाशय वाला है अथवा यह नीचे गर्भाशय वाला है या अधःगर्भाशय वाला है। सपुष्प या अपुष्प श्रेणी का है एकलिङ्गी है या उभयलिङ्गी है। गर्भाशय नियमित है या अनियमित है इत्यादि।

इसकी खण्डात्मक परीक्षा में निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

बाह्य पुष्पावरण या कैलिक्स (Calix) : बाह्यावरण का स्वरूप क्या है यह कितने पुष्प पत्रों वाला है, यह आपस में मिले हुवे हैं या पृथक्-पृथक् हैं। इनके विभाग कितने हैं।

२ : इनका वर्ण क्या है, आकृति क्या है।

आभ्यंतर पुष्पावरण :

१ : इसके पुष्पपत्र कितने हैं, यह आपस में मिले हुए गैमोपेटालस हैं, इनमें२ कितने विभाग हैं।

२ : इनका वर्ण क्या है, आकार क्या है।

३ : इसमें शिराओं का विभाग कैसा है।

४ : इसमें तैलग्रंथियां उपस्थित हैं या नहीं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५ : पुष्पपत्र और केशरों का आपसी सम्बन्ध कैसा है।

पुंकेशर :

१ : पुंकेशर कितने हैं।

२ : यह केशर पृथक् हैं या पुष्प-पत्र से संयुक्त हैं। (मोनाडेलफस)

३ : पुंकेशर की लम्बाई क्या है।

४ : पुष्प के परागकोष का स्वरूप क्या है। कोषयुक्त हैं अथवा ये छिद्र-युक्त हैं।

स्त्री केशर :

१ : इनकी संख्या क्या है। यह संयुक्त हैं या स्वतन्त्र हैं।

२ : स्वाभाविक श्रेणी के हैं अथवा हीन श्रेणी के हैं।

३ : स्त्री केशर के सूत्र की लम्वाई क्या है। सूत्र, नलिका, योनि छत्र व गर्भाशय का स्थान क्या है।

४ : केशर के ऊपरी भाग स्टिग्मा का क्या रूप है।

५ : गर्भाशय पुष्पस्थालक और स्थालछ संख्या व आकार क्या है।

इन सारी बातों का विवरण क्रमिक रूप से पुष्प के विवरण में आ जाना चाहिए।

केशर पुष्प की पहचान : कस या सैफरान :
(Crocus Safron)

नाम : केशर। कंकुम। काश्मीर। घुसृण। बाह्लीक।
वर्ग : केशर कुल। इरिडेसी॥
चरक : शोणिता स्थापन।
सुश्रुत : एलादि।

परिचय : बाजार का केशर क्रोकस सैटाइवा के पुष्प का स्त्री केशर के अग्र भाग का शुष्क भाग है। यह अति प्राचीन काल से काश्मीर में मिलता आ रहा है। इसके अतिरिक्त यह फ्रांस मेसिडोनिया पर्शिया व अमेरिका आदि देशों से तैयार करके द्रव्य के रूप में बाजार में आता है।

इतिहास : केशर भारत वर्ष का सबसे पुराना औषध द्रव्य है। वैदिक काल से ही इसके इतिहास का पता चलता है। यह मंगल द्रव्य और औषधि

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य के रूप में सदा से प्रयुक्त होता आ रहा है। भारतीय निघंटुकारों ने इसका नाम ही काश्मीर इसीलिए रखा था कि यह काश्मीर से प्राप्त होता था। भारत वर्ष के साथ व्यापार के बढ़ने के बाद जब इसकी पूर्ति यहां से न हो सकी तब बाहर से भी यह आने लगा और प्रथम बार बाल्हीक या बलख से लिया गया। अतः इसकी संज्ञा बाल्हीक भी पड़ी। पूर्तगाल वालों के संपर्क के बाद यह वहां से भी आने लगा। केशर के व्यापार के विषय में दशवी शताब्दी का समय स्पेन से और चौदहवीं शताब्दी इंगलैंड के लिए मानी जाती है। इंगलिश केशर की उपज विशेष रूप से १७१८ ईस्वी में पैदा किया गया था। भारतीय केशर ईस्वीय सन् से कई हजार वर्ष पूर्व चिकित्सा में व्यवहृत होता था। देवी देवताओं के पूजन में चंदन के साथ इसका उपयोग बराबर होता था। रघुवंश में रघु के दिग्विजय में उपहार स्वरूप इसका देना प्रतिपादित है। अब भी अधिकांश भाग भारत में काश्मीर से ही मिलता है। शेष भाग बाहर से आता है।

संग्रह और खेती :

केशर विशेष कर ७००० फीट की ऊँचाई के प्रदेशों में पाया जाता है। इसका रोपण जुलाई और अगस्त मास में विशेष प्रकार की तैयार की हुई भूमि में किया जाता है। रोपणार्थ २० सेंटी मीटर चौड़ी और १८ सेंटी मीटर लम्बी नालियाँ बनाई जाती हैं। और इसका कंद १ या २ सेंटी मीटर की दूरी पर रखते चले जाते हैं। प्रायः इसका प्रथम पुष्प कालसितम्बर में या अक्तूबर में होता है। इसके बाद प्रत्येक कंद से छोटे छोटे कंद और निकलते हैं। फिर इनमे पुष्प निकलते। और रक्षन का संग्रह किया जाता है। इस प्रकार एक कंद से कई कंद बन जाते हैं और इनकी ही संग्रह करके बीज के लिये रखते हैं।

संग्रह : केशरी के स्त्री पुष्प को प्रातः काल एकत्र करके टोकरियों में रख देते हैं। और संग्रहालय को भेज देते हैं। केशर चेननेवालेइन प्रत्येक पुष्पों से इनके बीच के स्त्री केशर का संग्रह कर लेते हैं। फिर इकको कृत्रिम गर्मी में सुखा दिया जाता है विशेष कर इन्हें कोयले की भट्ठियों पर वालों की बंधी हुई जाली पर सुखा देते हैं। यह ३० से ४५ मिंनट में सूख जाते हैं। फिर इन्हें शुष्क स्थान पर रख कर ठंडा करते हैं। ९० हज़ार एक लाख फूलों से ६००० हज़ार ग्राम अर्थात् गीले केशर मीलते हैं सुखने पर एक हजार ग्राम रह जाते हैं।

केशर को एकत्र कर नेपर ये लाल या पीले रंग के दिखाई पड़ते हैं। ऊपरी भाग गहरा लाल और नीचे का भाग कुछ पीलापन लिये हुये होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

काश्मीर में ऊपरी भाग की मीगरा और नीचे के भाग की लच्छी या गुच्छी करते हैं। संपूर्ण का संग्रह करने पर इसकी संज्ञा गुच्छी होती है। इसमें बहुत ही सुन्दर मधुर गंध तथा स्वाद कटु होती है। इसे चबाने पर थूक भी पीले केशरी रंग का हो जाता है। इसकी पहचान अणुवीक्षण यंत्र द्वारा सरलता से की जाती है।

मिश्रण : प्राचीन काल से ही मूल्यवान द्रव्य होने के कारण केशर में में मिलावट का सदा से विवरण मिलता है। इसमें तत्सम पुष्पों का समावेश करना बड़ा ही सरल कार्य रहा है। इससे मिलते जुलते कई पुष्प होते हैं। यथा :

१ : कुसुम्ब के केशरी ठीक इससे मिलते हुवे हैं।

२ : कैलेन्डुला आफिसिनेस या चाइनीज सैफ्लावर,

३ : कॉरथेमस पिंक टोरियस या इंडियन सैफ्लवर,

४ : अरनिका मोंटाना।

५ : ओनोपारडनसिवथोरपियन।

६ : आजकल बाजार में कृत्रिम कामजों के कटे हुवे या आंत्र की झिल्लियों को सुखाकर पतला काट कर रंग देकर केशर जैसा बना देते हैं और यह नकली केशर बहुत ही सस्ता बिकता है।

ऊपर कथित पुष्प केशर अपने प्राकृत रूप में या रंग कर मिलाये जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व लाइपेरिया एट्रो पर फ्यूरा का केशर भी बाजार में केशर के नाम से बिकता था।

परीक्षा : विशुद्ध केशरी की परीक्षा निम्न रूप से की जाती है :

१ : गंधकाम्ल के ऊपर यदि केशर को छिड़का जाय तो उसके ऊपर गहरे बैंजनी रंग का वर्ण दिखाई पड़ता है। किन्तु यह परीक्षा ठीक नहीं है। क्योंकि इस प्रकार के रूप कई पुष्पों के होते हैं।

२ : केशर ईथर। पेट्रोलियमस्प्रिट में अपना रंग कम प्रकट करता है। इसका वर्ण पानी में शीघ्र ही घुलता है। .१ ग्राम पानी को ५० मिली मीटर को पीला रंग देता है।

३ : केसर जलाने पर ५ से ७ प्रतिशत तक भस्म मिलती है। इससे अधिक होना किसी निरीन्द्रिय पदार्थ के मेल का द्योतक है। जो बुद्धिमत्ता से रंग कर मिलाई गई है।

४ : केशर में ९ से १४ प्रतिशत आर्द्रता रहती इससे अधिक मात्रा का

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होना इस वात का द्योतक है कि इसमें शर्करा या मधु अथवा ग्लिसरिन या लवण द्रव का अंश मिश्रित है।

५ : कर में २·२२ से २·४३ नाइट्रोजन के द्रव्य प्राप्त होते हैं। रासायनिक परीक्षा में विश्लेषण से इसे प्राप्त किया जा सकता है।

कुंकुंम के संगठित तत्व :

१ : क्रोसिन नाम का एक ग्लाइकोसाइडल तत्व जो रंजक तत्व है इसमें मिलता है।

२ : वर्ण रहित तिक्त पदार्थं पिक्रो क्रोसिन

३ : उड़न शील तत्व : वोलेटाइल आयल

४ : मधुच्छिष्ट का भाग

प्रयोग : कुंकुंम का प्रयोग औषधि के रूप में अधिक नहीं होता जितना यह सुघंध द्रव्यों के निर्माण में व्यय होता है। इसे रजनार्थ तेल घृत व मोदक में शक्त आदि में तथा पाक व अवलेहों में इसे डालते हैं। इसका प्रयोग स्वाद व सुगंधी डालने के लिए भी होता है।

काश्मीर के लोग इसे प्रसूता के बलवर्धनार्थं करते हैं। सामान्य वल लाने के लिए भी इसका प्रयोग होता है। प्रयोग :

लवंग पुष्प : केरियो :

नाम :

लवंग, देव कुसुम, श्री प्रसून लें०, कैरियोफाइलस एरोमेटिकस।

वर्ग : लवंग कुल। मिरटेसी।

भाव प्रकास : चंदनादि वर्ग।

परिचय : वाजार में मिलने वाला लवंग इउ जेनिया कैरफिलस नामक लवंग के पेड़ के पुष्प की सूखी हुई कलियां है इसका पेड़ ३० से ४० फीट ऊंचा होता है। अधिक से अधिक ६० फीट तक ऊंचा होती है अब इसकी खेती मलाया में अधिक हरती है। यहाँ से तीन चौथाई लवंग की सप्लाई होती है। जिजी वार और पेम्बा में इसकी खेती की जाने लगी है। इस समय इसका अधिक निवास यहाँ से ही होने लगा है। पेनांग, सुमात्रा, अम्बोयना, मडेगास्कर और सैलेबीज में भी खेती होती है। पश्चिमीय द्वीप समूहों में भी इसकी खेती होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इतिहास : लवंग का प्रथम ज्ञान भारतीयों को हुवा था। वैदिक काल से लेकर इसका प्रयोग पाते हैं ईस्वीय सन से दो हजार वर्ष पूर्व चरक और सुश्रुत के काल से ही चिकित्सा में इसका प्रयोग होता आ रहा है। भारत के वाद २२० बी. सी. में चीन को ज्ञान हुआ था। चौथी शताब्दी में यूरोप को इसका ज्ञान हुवा। इब्न खुरदाद वाह और मार्कोपोलो दोनों के लेखों से ज्ञात होता है कि जावा से यह प्राप्त होता था। किन्तु पन्द्रहवी शताब्दी में निकोलो कौंटी ने अध्ययन करके बताया कि जावा में वाँदा से आता था। सोलहवीं शताब्दी में पूर्तगीजों ने मसाले के द्वीपों पर अधिकार जमाया था। डचोंने इन्हें १६०५ में भगा दिया था। १७७० में फेंच भी लवंग की खेती करने में सफल हो गये ये। और सुमात्रा में १८०३ में खेती होने लगी थी फिर पेनांग गाय, मैंडेगास्करजीवार : १८१८ : व पेम्बा इत्यादि में भी खेती होने लगी।

प्राचीन काल में भारत वर्ष में इसकी खेती श्री पर्वत के आसपास होती थी। सारा भारत इसका उपयोग करता था। दक्षिण भारत इसकी सप्लाई का केन्द्र था। दक्षिण भारत में केरल मालावार एलेपी आदि में जहाँ जहाँ पर इलायची की खेती होती थी वहाँ वहाँ पर पहले लवंग की खेती होती थी परंतु ऐसा ज्ञात होता है कि पश्चात काल में यह सारी व्यवस्था भंग हो गई और यहाँ से पूर्तगाल वाले बीज लेकर अपने द्वीपा में खेती करने लगे और इनकी सप्लाई स्थान बदल गया।

लवंग के पर्याय वारिज शब्द से पता चलता है कि यह अधिक जलीय प्रदेशों में हुआ करता था। अथवा यह लंका और उसके पास के द्वीपों में होता था जहाँ पर स्थान पानी से घिरा रहता था श्री पर्वत की खेती व आसपास की खेती बन्द सी हो गई। वैदिक काल से लेकर संहिता काल तक इनकी प्राप्ति यह वतलाती है कि भारत के घर घर में दिन रात प्रयुक्त होने वाला यह द्रव्य भारत का अति सुलभ था। घनवन्तरि निघंट्ु, राजनिघंटुमदनपाल निघंटु भाव प्रकाश निघंटु सबमें इसकी प्राप्ति देखी जाती है। घर घर में यह प्रयुक्त होता था। अब भारत को इसके लिए बाहरी सप्लाई पर निर्भर रहना पड़ता है।

संग्रह व पहचान : लवंग का पेड़ जब पुष्पित हो जाता है तब इसका संग्रह का काल तब समझा जाता है जब कि मंजरी का वर्ण लाल वर्ण का हो जाता है। लवंग का पेड़ जब नौ वर्ष का हो जाता है तब उसमें पुष्प आने का काल समझा जाता है। पुष्प मंजरी का संग्रह अगस्त व दिसंबर मास के

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बीच किया जाता है। जंजी वार और पेम्बा में वर्ष में दो बार संग्रह किया जाता है। इनकी मंजरी को चटाइयों पर रख कर सुखाते हैं। सूखने के वाद इनकी कलियाँ पृथक चुन ली जाती हैं। यदि संग्रह करने में और कलियों के तोड़ने में देर हो जाती है तो कलियों के ऊपर के पुष्प पत्र गिर जाते हैं और यह मातृ लवंग का स्वरूप धारण कर लेता है। संग्रह कर के इनको डिब्बों में भर लिया जाता है।

पहचान : लवंग पुष्प १० से १७ मिली मीटर लम्वे होते हैं। पेनांग और अम्वोयना का लवंग बड़ा होता है इनकी वड़ी माँग होती है। किन्तु इतनी इनकी उपज नहीं होती कि सबको दिया जा सके। जंजो वार लवंग भी अच्छा होता है यद्यपि कुछ छोटा होता है। यह प्रारंभ से पतला और धीरे धीरे मोटा होता जाता है इसका पुष्प वृन्त कुछ लम्वा होता है। पुष्पा वरण नलि का कार होता है। इसमें चार कणिकायें होती हैं। आभ्यन्तर पुष्प भीतर से गोल दिखाई देता है कई अर्द्धगोलाकार पुष्प पत्रों से आच्छादित होने के कारण यह गोल दिखाई देता है। इसके भीतर बहुसंख्यक पुष्प केशर होते हैं। जो योनि छत्र के चारों तरफ रहते हैं इसमें एक विशेष प्रकार की सुगंध आती है। रंग लाल व काला होता है।

संगठन :

इसमें १५ प्रतिशत सुगंधित उड़न शील तेल और १० से १३ प्रतिशत टेनीन, एककापोफाइलिन नाम का रवेदार अंश होता है।

लवंग में भस्म १-५ प्रतिशत पाई जाती है।

लवंग पुष्प का परीक्षण : कार्योंफाइलस एरोमेटिकस ॥

नाम : लवंग पुष्प की आकृति प्रारंभ में नलि का कार व आगे जाकर फैले हुये पुष्प की तरह है। इसका वर्ण श्याम व भूरे वर्ण का है। लम्बाई आध इंच है। इसका बाह्य पुष्पावरण पतला नलिकाकार है। जो आगे चलकर चार भाग में विभक्त हो गया है। इसका प्रत्येक दलत्रिकोणाकार है इसका बाह्यावरण का स्वरूप अन्तर गर्भाशयाश्रित है। इसके आभ्यतर पुष्प का स्वरूप वृत्ताकार है सावधानी से पृथक करें तो दो पुष्पदल अर्द्धवृत्ताकार बड़े और दो पुष्पदल छोटे मिलेंगे।

इनमें स्त्री केशर बन्द हैं। वहुत ध्यान पूर्वक देखने पर इसमें ४० पुंकेशर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दिखाई पड़ेते हैं। बीच में एक स्त्री केशर शंक्वाकार स्थित है। जिसे सब पुंकेशर घेरे हुवे हैं।

वाह्यावरण के नलिकाकार भाग पर सूक्ष्म सूक्ष्म तेल ग्रन्थियाँ हैं। इन्हें दबाने पर तेल निकल आता है।

च्छेद लेने पर : इसका अनुलंब छेद लेने पर नलिकाकृति पुष्प वाह्यावरण का वाह्य भाग दिखाई पड़ता। इसके पश्चात् गर्भ कोष का भाग दिखाई पड़ता है। अंतरावरण के पुष्प दल पुंकेशर सूत्रं स्त्री केशर को आच्छेदित भाग दिखाई पड़ता है। पुंकेशर केशीर्ष पर द्विधालग्न पराग कोष दिखाई पड़ता है।

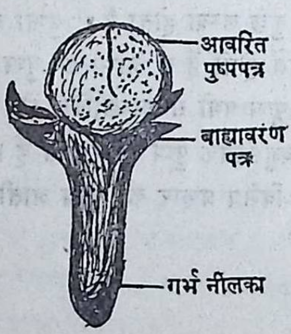

चित्र १०७

चित्र १०८

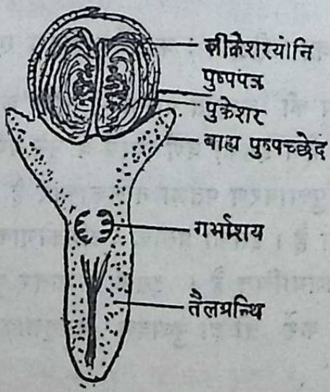

चित्र १०९

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिमाण : इसका भार १ रत्ती व लम्बाई आधी इंच है।

वर्णपरिज्ञान : प्राकृत वर्ण गहरा भूरा व काला। कषेभंगेश्याम । चूर्ण-भूरा। क्वाथ-बादामी। तैल-पीत। घृत-पीत रक्त।
ज्वाला पीत।

विलेयता : वारि, तैल, घृत व सुरा में ईषद्विलेय।

रस परीक्षा : प्रायशः कटु।

गंध परीक्षा : मृदुसुगंध। धूपन में उग्र।

स्पर्श परीक्षा : कठिन खर रूक्ष लघु।

शब्द परीक्षा : भग्न काल में कट्। भंगुर

गण विनिश्चय : प्रायशः कटुव तिक्त होने से यह आग्नेय है॥

पिपरमेंट पंचांग परीक्षा। मेंथा पिपरेटा लिन॥

नाम : पिपरमेंट :

वर्ग : मेंथा पाईपेरेसी।

प्राप्ति स्थान : पिपरमेंट की सूखी पत्तियाँ जब उनका पुष्प काल होता है एकत्र की जाती है पिपरमेंट का तैल इसकी सूखी पत्तियां से परिस्नुतु करके तब इकट्ठी की जाती हैं। इसके पूरे पौधों परिश्रुत करके रेक्टी फाइड स्प्रिट के साथ भी उपलब्ध होता है। अमेरिका व इंगलैंड के व्यापार दो प्रकार के पिपरमेंट के पौधों से पिपरमेंट निकालते हैं

१ : मेंथा पिपरेटा वाल या ब्लैक मिंट,

२ : मेंथा पिपरेटा वाल आफिसिनेलिस सोल अथवा श्वेत मिंट

जापानियों का पिपरमेंट, मेंथा-केनाडेसिवार पिपमेंस से निकाला जाता है।

इतिहास : पिपरमेंट भारतीय द्रव्य नहीं जान पड़ता, यह जापान का द्रव्य जान पड़ता है। इसकी कई जातियां होती हैं। प्रत्येक प्रकार का पिपरमेंट का कांड चौकोर होता है। और मूल आरोही होता है। यह फैलने वाली लता होती है। और कांड की ग्रथियों से मूल देकर फैलती है। इसके पुष्पों में पुष्प के ५ वाह्यावरण के दल होते हैं पांच आभ्यन्तररावण के दल तथा पुंकेशर चार और स्त्री केशर २ होते हैं। कालीमिंट जो इंगलैंड में बोई जाती है सकेकड लाल ड्रश गहरे हरे वर्ण के पाये जाते हैं। इनके पत्र हरित वर्ण से कुछ पाटल वर्ण में परिणत हो जाते हैं। पत्र ३ से ८ सेंटी मीटर लम्बे तीक्ष्णाग्र

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और दन्तुर होते हैं। इसके पत्ते में था स्पिकाटा से चौड़े किन्तु में था एक्वेटिका से पतले होते हैं। ग्रीष्भ ऋतु इन पर बैंजनी रंग के पुष्प आते हैं।

संगठन : पिपरमेंट के तैल में ४ से १० प्रतिशत इस्टर का होता है। जिसे मेथाइल मेथाइल एसिटेट कहते हैं इसमें ४६ प्रतिशत से कम फ्री मेंथल नहीं होता। कुछ पिरपर मेंट में जो कि व्यापारिक रूप में पाये जाते हैं उनका स्वरूप निम्न होता है।

आपेक्षिक गुरुत्व	अमेरिकन	इंगलिश कालामिंट	इंग० श्वेतमिंट
गुरुत्व	·९०० से ९१५	·३०६	९०५८
आप्टिकल रोटेशन	१८ से ३५ डि०	२३·५ डि०	३३ डि०
मेथाइल ईस्टर	५ से १४ प्रति०	३·७	१३·७
फ्री मेंथल	४५ से ५०	५९·४	५१·९
मेंथीन	९ से १९	११·३	९·२

जापानी पिपरमेंट का तैल ७० से ८० प्रतिशत मेंथोल के भाग वाला होता है। और पिपरमेंट निकालने के लिए उपयुक्त होता है। मेथोल निकाले हुवे तैल में (जापानी) इस्टर की मात्रा उतनी ही होती है जितनी अमेरिकन तैल में होती है।

नाग केशर का पुष्प : भेसुवा फेरिया :

नाम : नाग केशर नागेश्वर, असली नागकेशर।

वर्ग प्राकृतिक : नागकेशरादि वर्ग : गट्टीफेरी।

सुश्रुत : एलादि गण। प्रियंग्वादि गण। अंजनादि गण।

भाव मिश्र : चतुर्जात।

आकृति विज्ञान : नाग केशर चिर हरित रहने वाला पेड़ है जो कि अधिक ऊंचाई पर पाया जाता है। इसकी डालियां अतिशय मृदु होती हैं। छाल आधा इंच मोटा होता है जो पुराना होने पर अपने आप उतर जाता है। भीतर के कोष्ठ का भाग लाल होता है। पत्र ढाई इंच से डेढ़ पौने दो इंच तक चौड़ा होते हैं। पत्र नीचे की तरफ झुके होते हैं। इस पर फूल लगते हैं। जो सुगंधित उभय लिंगी होता है। इसका व्यास दो इंच तक होता है।

पुष्प का विशिष्ट विवरण : इसके फूल का प्रयोग होता है अतः इसका ज्ञान होना आवश्यक है। नागकेशर के पुष्प का वृन्त आधा इंच तक लम्बा होता है। इसका वाह्य कोष कठिन और चार पत्रक वाला होता है। जो दो

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पंक्ति में आमने सामने होते हैं। इसमें असंख्य पुंकेशर होते हैं इनके वीच में स्त्री केशर रहता है जिसका आकार सर्प के फण की तरह होता है। इसके आधार पर ही इसका नाम नागकेशर हुवा है। वाह्य आवरण के पत्र वर्क भी पुष्पित होने पर सर्प फण की तरह मुड़ जाते हैं। इसका गर्भाशय दो प्रकोष्ठ

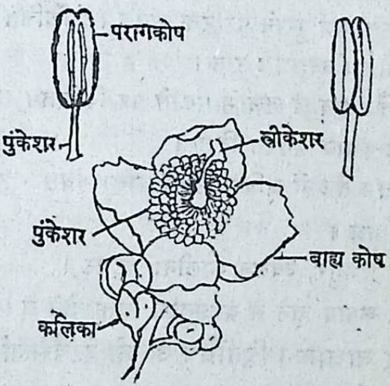

चित्र ११०

का होता है स्त्री केशर का भाग भी दो भागों में बटा हुआ दिखलाई पड़ता है पुंकेशरों का वर्ण स्वर्ण वर्ण का होता है। शुष्क पुष्प में गर्भाशय भी कुछ मोटा दिखाई पड़ता है। आगे की नली पतली और अग्र भाग फण वत चौड़ा होता

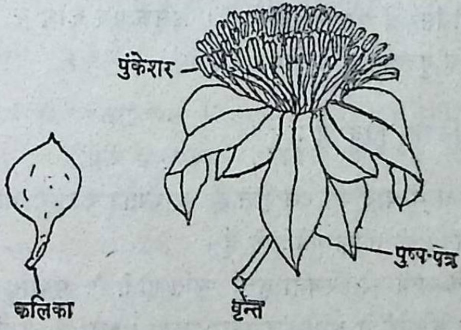

चित्र १११

है। अतः नागवत केशर होने से नाग केशर नाम दिया गया है। इसे इंग्लिश में कोबरा सैफरन कहते हैं। पुंकेशरों का अग्र भाग भी सर्प फण की तरह चौड़ा

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होता है। इसमें एक अच्छी सुगंधी आती है। परिमाण : पुष्प भार पांच ग्रेन होता है। इसकी लम्बाई चार सेंटी मीटर चौड़ाई तीन सेंटी मीटर व उत्सेध आधा इंच होता है।

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण स्वर्ण वर्ण। वाह्य आवरण कुछ श्यावता के लिये पीत। कषे भंगे: लाल

चूर्ण : गाढ़ रक्त वर्ण पुराने पर रक्त श्याव। : किंचित पीत।

तैल घृत : पीत। ज्वाला : रक्त।

विलेयता : तैल घृत व जल में पकाने पर किंचितन।

रस : प्रायश: कषाय अनुरस तिक्त।

गंध : सुगंधित। तैल में अधिक टिकने वाला गंध।

स्पर्श : लघु, रुक्ष।

शब्द परीक्षा : भंगुर, ज्वलन कालीन: चटचट।

वर्ग : प्रायश: कषाय होने से व अनुरस तिक्त होने से वायव्य वर्ग का है।

नाग केशर बाजारू। द्वितीय : अ क्रो कार्पसलांफोलियस

नाम : रक्त नागेश्वर। छोटा नाग केशर।

वर्ग : नागकेशरादि।

आकृति विज्ञान : इसके पेड़ गुंबजा कार बड़े बड़े भाग पर गोल दिखाई पड़ते हैं कांड त्वच इषंत् लाल धूसर वर्ण की होती है। मोटाई आधे इंच तक। पत्र ५ से ९ इंच लम्बे दो ढाई इंच चौड़े होते हैं। पत्र वृन्त कठिन प्रारम्भ में पत्र गोलाकार आगे लम्ब गोल पत्राग्र नोक दार होता है पत्र शिरा मोटी होती हैं ७ से ८ जोड़ी सिरार्थे पत्र पर होती हैं। इसके पत्र कोण व शाखा पर पुष्प लगते हैं। जो कि गुच्छाकार में निकलते हैं।

पुष्प का विशेष विवरण :

पुष्प के वाह्य में चार पत्र दल होते हैं आभ्यंतर को में भी चार पुष्प दल होते हैं। जो भीतर की तरफ मुड़े होते हैं।

पुष्प वृन्त के आगे की रचना वृत्ता कृति होती है पुष्पाग्र कुछ नोकदार होता है। वृन्त चौथाई से आधे इंच तक लम्बा पतला होता है। पुष्पित होने पर वाह्य व आभयन्तर दल फैल जाते हैं और केशर वाहर निकल कर पीतव नारंगी वर्ण का दिखाई पड़ता है। इसके पुष्प की कलियों को पुष्पित होने से पहले ही संग्रह कर लेते हैं जब तक की गोल गोल रहती हैं और सूलने नहीं

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पातीं। इसको पुनः सुखा लेते हैं। और इसमें अच्छी सुगंध आती है। सूखने पर भीतर का केशर सूख कर एक गोलाकार आकार बनता है इसको मसलने पर पुंकेशर पृथक पृथक हो जाते हैं। यह छोटे व बहु संख्यक होते हैं। इसके बीच स्त्री केसर होता है। जो प्रारम्भ में मोटा बीच में पतला और अंत में छत्राकार या नाग फणाकार होता है। इसके चारों ओर पुंकेश सटे होते हैं। इसमें भी सुगंध आती है वर्ग भी एक ही है और रचना भी समान हुई है। केवल पुष्प छोटे व बड़े होते हैं व केशर बड़े होते हैं।

परिमाण : १ पुष्प का भार एक ग्रेन होता है। लम्बाई पाँच मिली मीटर व चौड़ाई ३ मिली मीटर होती है। मोटाई २ से ३ मिली मीटर होती है।

वर्ण : शुष्क पुष्प : लाल वर्ण का। नवीन रक्त श्याव।

कपे भंगे : रक्त श्याव। चूर्णः : उक्त वर्ण। क्वाथ : पीत वर्ण। घृत तैल : ईषत पीत।

विलेयता : तैल घृत व वारि में ईषत्।

रस परीक्षा : प्रायशः कषाय अनुरस तिक्त।

गंध : सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : मृदु लघु श्लक्ष्ण भंगुर।

शब्द परीक्षा : भंगुर द्रव्य गत : ईषत् झनझनाहट वत।

वर्ग : प्रायशः कषाय होने से वायव्य वर्ग का होता है।

बीज परीक्षण कैज्ञातव्य

(General Method of examination)

सामान्य विवरण :

किसी बीज की परीक्षा करने में साधारणतया निम्न बातो का ध्यान रखना उचित है। यदि वनौषधि का सामान्य विवरण ज्ञात रहे तो आंगिक विवरण में सरलता उत्पन्न हो जाती है। यह परीक्षण को सुगम बना देते हैं : यथा :

आकार प्रकार : (Size)

जिस किसी बीज की परीक्षा करना हो उनके आकार व प्रकार के ज्ञानार्थ उसके १० या २० बीज को लेकर मापना चाहिए। छोटे से छोटे और बड़े से बड़े दोनों का माप लेकर औसत लम्बाई या चौड़ाई निकालना चाहिए। यदि बीज छोटे हो तो एक या आधी इंच की रेखा खींच कर उस पर दोनों को लम्बाई या चौड़ाई में रख कर उनकी औसत लम्बाई या चौड़ाई निकाल लेनी

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चाहिए। यह औसत लम्बाई चौड़ाई वमोटाई ही आकार प्रकार में लिखना चाहिए।

२ : आकृति : (Shape) गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण इत्यादि।

३ : सतह (Surface) : इसमें मूर्त गुणो को यथा मृदु, कठिन लोमश भासुर। धारियाँ, सीता एंछिद्र या अन्य चिह्न जो भी उस पर ही उन्हें नोट करना चाहिए।

४ : वर्ण (Colour) वर्ण का निर्णय कई बीजो को देख कर करना चाहिए। जल घृत तैल व सुरा आसव आदि में इसका क्या वर्ण होता है तथा ज्वाला में क्या वर्ण होता है यह नोट करना चाहिए।

५ : बीजावरण (Seed Coat): बीज के ऊपर या भीतर कितने आवरण है इन्हें लिखना चाहिए।

६ बीज शस्यआदि : (Perisperve) : मिंगी के भीतर का बीज शस्य है है या नहीं है तो कैसा है। इसकी मोटाई लम्बाई चोड़ाई आदि नोट करें।

७ : गर्भभोज्य (इन्डोस्पर्म) है या नहीं इसका आकार प्रकार वर्ण सभी लिखना चाहिए।

८ : भ्रूण (Embryo) अंकुर की स्थिती नोट करिए। यहाँ पर कैसा है। द्विदल वृन्त आकार आदि की दशा कैसी है।

९ : गर्भभोज्य (Resened food) यह है या नहीं। किस प्रकार का है।

१० : गंध : वस्तु का गंध क्या है। अग्नि में डाल कर इसकी गंध की परीक्षा करना चाहिए।

११ : रस (Taste) रस की क्या स्थिति है मधुर अम्ल कटुतिक्तादि।

१२ : रासायनिक परीक्षा (Chemical Test) : जहां आवश्यक समझा जाय वहां पर करना है। शब्द या है नहीं। तोड़ने से क्या शब्द होता है। भंगुर है या अभंगुर।

वर्ग निर्णय : वर्ग का निर्णय सुश्रुत की पद्धति द्वारा की जाती है। जैसा रस होता है उस द्रव्य का वर्ग निर्णय किया जाता है।

विशेषता : द्रव्य में कोई विशेषता हो तो उसे भी स्पष्ट रूप में नोट करना चाहिए। यह भी परिचय में सहायक होता है।

जायफल : (Miristica Phragrance)

नाम : जातीफल, जायफल

वर्ग : जातीफलादि वर्ग : मिरिस्टिकेसी।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चरक : सुश्रुत के गण :

आकृति विज्ञान : यह मिरिस्टिका फ्रेगरेंस नामक वृक्ष का फल है इसे जायफल के नाम से पुकारते हैं। वास्तव में बाजार में मिलने वाला द्रव्य फल है इस पर आवरण नहीं होता। यह आकृति में दो प्रकार का मिलता है। एक अंडाकार व छोटा दूसरा बड़ा वृत्ताकार लम्ब गोल। इसका वर्ण नया रहने पर श्वेताभ भूरा होता है। इस पर किंचित उठी हुई धारियां प्रतीत होती हैं। फल के नीचे वृन्त का भाग और ऊपर को एक हल्का सा नोकदार भाग होता है। वृन्त के भाग से निचले भाग तक पृष्ठ पर उभरी हुई रेखा दिखाई पड़ती है। इसी रेखा पर वृन्त के पास कुछ नीचे भ्रूण का भाग दिखाई पड़ता है। यदि ऊपर का गहरे भूरे रंग का छिल्का हटावें तो नीचे भूरे रंग की मज्जा दिखाई पड़ती है। यह २० से ३० मिली मीटर लम्बा और २० मीली मीटर व्यास का होता है।

आवरण : इस पर का आवरण हटा कर बेचते हैं अतः आवरण नहीं मिलता। कभी कभी आवरण सहित मिलता है।

व्यत्यस्त च्छेद : चौड़ाई में इसकाछे द लेने पर इसमें तीन भाग दिखाई पड़ते हैं।

१ : बाह्य त्वक्, २ : अंतस्त्वक्, ३ : आभ्यंतर का मज्जा का भाग।

बाह्य त्वक् : यह कठिन कृष्ण तथा भंगुर होता है। अन्दर से धूसर दिखाई पड़ता है।

अंतस्त्वक् : यह बीज के ऊपर की तनु कला है जिसको जावित्री कहते हैं। जो पीले वर्ण की होती है और फल से हटा कर निकाल ली जाती है।

आभ्यंतरभाग : यह सुपारी की तरह होती है। ऊपर का भाग श्वेत व भूरे रंग का दिखाई पड़ता है। छेद करने पर बीच का भाग मृदु कोमल स्निग्ध सुगंधित व श्वेत बादामी वर्ण का दिखाई पड़ता है। ध्यान से देखने पर भ्रूण का भाग वृन्त व दल सहित दिखाई पड़ता है। गंध विशिष्ट प्रकार की होती है।

परिमाण : ३ माशे तक का मिलता है।
वर्ण : ऊपर से भूरा श्वेत पीत भीतरको।
ज्वाला का वर्ण : रक्त पीत।
कषे भंगे : कत्थई। चूर्ण हल्का बादामी।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्वाथ : बादामी । तैल व घृत बादामी ।

रस : प्रायशः कटु तीक्ष्ण व तिक्त प्रतीत होता है ।

गंध : उग्र गंध शुष्क व सुगंधित ।

विलेयता : वारि व तैल में अल्प ।

स्पर्श : कठिन रूक्ष गुरु ॥

शब्द : जलाने पर : चिड़ चिड़ ।

गण : प्रायशः कटु होने से यह तैजस वर्ग का है ।

तैल : इसमें एक प्रकारका सुगंधित स्थिर व उड़नशील तैल पाया जाता है।

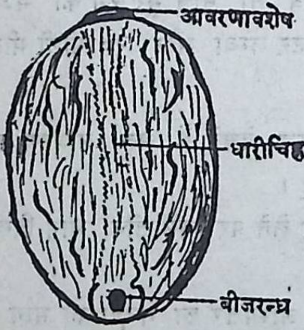

चित्र ११२

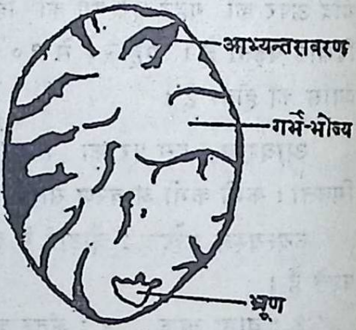

चित्र ११३

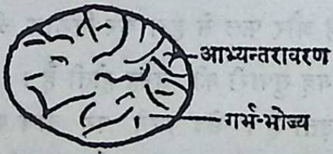

चित्र ११४

गंध प्रियंगु की परीक्षा : कैलिकारपामैक्रोफाइला

(Callicarpa macrophyla)

वर्ग : निर्गुंडी कुल : वर्विनेसी । (Verbenacae)

चरक : पत्र विरजनीय । मूत्र संग्रहणीय । अंजनादि ।

सुश्रुत : प्रियग्वादि ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यह एक वृत्ताकार सूक्ष्म फल है। आकार प्रायः गोर सर्षप के बराबर होता है। इसके वृन्त का भाग स्पष्ट परन्तु छोटा सा दिखाई पड़ता है। वृन्त के आगे पुष्पावरण का भाग फलावरण के रूप में दिखाई पड़ता है। यह बीज के मध्य भाग तक रहता है और इसमें नोकदार चार या पांच पत्रक होते हैं। वृन्त के पास से दो रेखायें फलाग्र भाग तक जाती हैं इससे इसके दो भाग बन

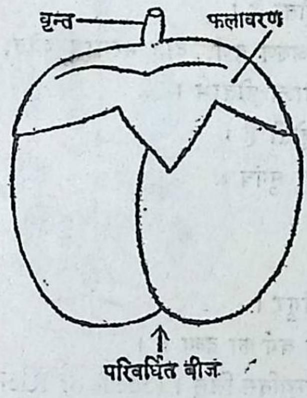

चित्र ११५

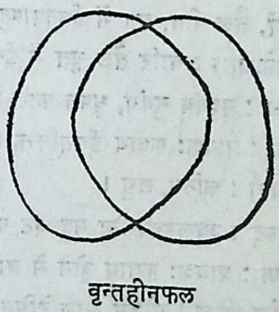

चित्र ११६

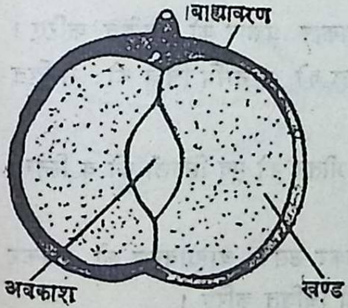

अनुलम्बच्छेद चित्र ११७

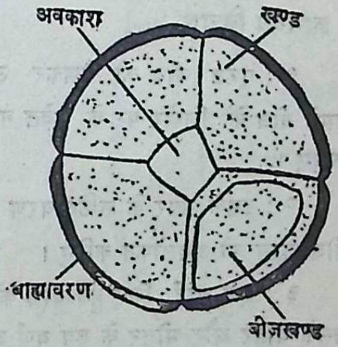

व्यस्तच्छेद चित्र ११८

जाते हैं। प्रत्येक भाग के पुनः दो दो भाग हो जाते हैं। इस प्रकार इसका चार खंड हो जाता है। आवरण का भी चार खंड हो जाता है आवरण का वर्ण पीत होता है। आवरण के नीचे के भाग में फल का कुछ स्निग्ध भाग रहता है जो शुष्क होकर काले भूरे रंग का हो जाता है। इसके दो प्रधान खंड बनते हैं। प्रत्येक खंड में दो बीज होते हैं। इनका आकार त्रिकोणाकार होताहै।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बाहर की तरफ का भाग उन्नतोदर और भीतरी पृष्ठ समतल और चपटे होते हैं। इनका श्यावारुण वर्ण होता है। बीज का ऊपरी भाग नारंगी की तरह गोल शिखर पर दबा हुआ होता है।

छेदन : व्यत्यस्त छेद लेनेपर ऊपर आवरण नीचे गूदे का शुष्क भाग पश्चात बीजावरण उसके नीचे बीज शस्य का भाग होता है।

भार : ५० बीज का भार २ गुञ्जा होता है।

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण श्यावारुण, भंगे अरुण वर्ण, दाहे भस्माभ श्वेत, क्वाथे पीत वर्ण, तैल पीत, घृत में ईषत्पाण्डु, ज्वाला पीताभ।

विलेयता : वारि तैल घृत में ईषत् होती है।

गंध : मृदुगंध सुगंध, धूपन काल में मृदु सुगंध।

रंग : प्रायशः कषाय ईषत्तिक्त।

स्पर्श : कठिन, लघु।

शब्द : ज्वलनकालीन मृदु चट चट-भंगुर।

गण : प्रायशः कषाय होने से वायव्य वर्ग का द्रव्य है।

एरंड बीज : सीड्स आफ रेसिनस कम्युनिस लिन्। (Seeds of Ricinuss Communis)

ज्ञातव्य विचार।

१ : एरंड बीज को देखकर उसके आकार प्रकार को चित्रित करिए। इसमें बीज के शिखर पर के श्वेत नाभि नाल को व नाभि चिह्न को चित्रित करिए।

२ : इसके ऊपर के कठिनावरण की व भीतर की मृदु झिल्ली को व स्निग्ध बीज शस्य को अवलोकन करिए।

३ : एक आर्द्र किए हुये बीज को तोड़कर उसके बाह्यावरण को देखकर उसके बाहर और भीतर के रूप वर्ण आदि को चित्रित करिए।

४ : एक लम्बाई में च्छेद लेकर उसकी मोटाई द्विदलों की स्थिति उनकी स्निग्धता और मृदुता को नोट करिए। इसके भ्रूण और उसकी स्थिति को चित्रित करिए।

५ : इसके स्वाद वर्ण और गंध को तथा इस में के स्थिर तैल को लिखिए।

नोट—बीजों को १२ घंटे पूर्व भिगो कर तब उसको प्रयोगार्थ देना चाहिए। यही विधि जयाफल में भी अपनाना चाहिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एरंड बीज (Ricinus communis)

प्रा० वर्ग : एरंडादि वर्ग—इयूफोरबियेसी (Euphorbiaceae)।
प्राचीन वर्ग : चरक। भेदनीय, स्वेदोपग, अंग मर्द प्रशमन, मधुरस्कंध।
सुश्रुत : विदारिगंधादि। अधोभाग हर। वातसंशमन।

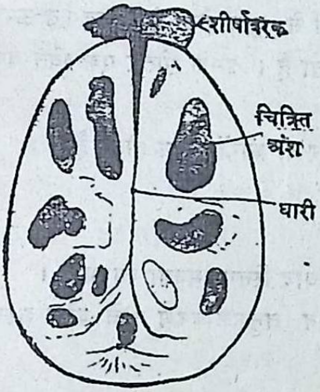

एरण्डबीज चित्र ११९

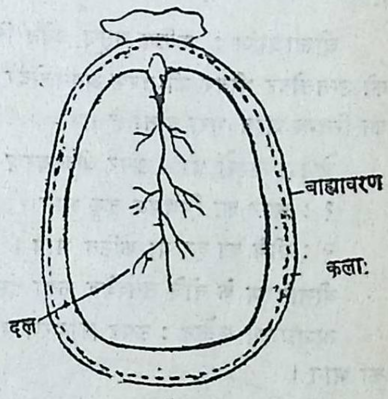

बीजांकुर चित्र १२०

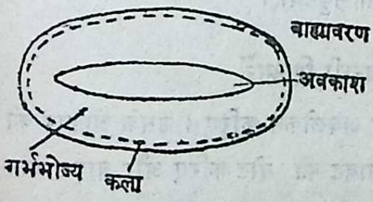

व्यस्त छेद चित्र १२१

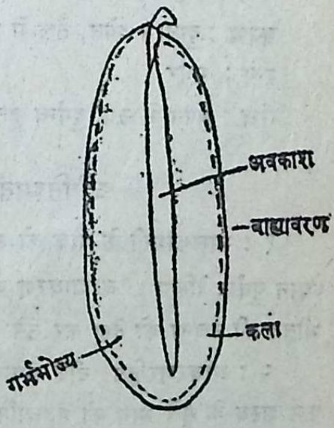

लम्बाई में छेद चित्र १२२

आकृति विज्ञान : यह श्लक्ष्ण, लम्ब गोल कुछ चपटापन लिए हुए होता है। मूल की तरफ कुछ गोल चपटा होता है। बीज के पृष्ठ भाग पर एक श्वेत रेखा मिल कर शिखर तक जाती हुई दिखाई पड़ती है। भीतर की तरफ एक रेखाकृत उभार है। पृष्ठ भाग पर कोई रेखा नहीं है। ऊपरी वर्ण लाल है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और पृष्ठ भाग चारों तरफ श्वेत चिह्नों से चित्रित है। भीतर की तरफ श्वेत चिह्न मध्य शिरा के उभय भाग में रहते हैं। बाहरी भाग पर श्वेत चिह्न अधिक होते हैं। बीज के शिखर पर एक श्वेतरंग का उत्सेध रहता है। इसको भ्रूण कोष या इन्द्रियोसेक कहते हैं। इसके संधिस्थल पर भी भीतर की तरफ एक छिद्र रहता है। इसे नाभि चिह्न कहते हैं।

बीजावरण : कठिन मसृण, श्वेत चिह्नों से युक्त होता है। यह दृढ़ ऊपर को उन्नतोदर भीतर की तरफ अवनतोदर होता है। इसके भीतर एक श्वेत वर्ण का स्निग्ध शस्य भरा होता है।

छेदन करने पर : ऊपर बीजावरण और दो भागों वाला होता है।

१ : ऊपर का चित्रमय तनु भाग।

२ : नीचे का दृढ़ या कठिन भाग।

बीजावरण के नीचे तनुश्वेत कला इसके बाद स्निग्ध मज्जा का भाग।

अनुप्रस्थ च्छेद : ऊपर आवरण पश्चात तनुकलावरण नीचे श्वेत शस्य का भाग।

परिमाण : ५ रत्ती।

वर्ण : प्राकृतिक। लाल चित्रित श्वेत।

क्काथ : दुग्धाभ श्वेत, तैल में रक्त पीत, घृत, ईषत् पीत।

रस : मधुर।

गंध : धूपन में उग्र, दुर्गन्ध युक्त, मिंगी मृदुगंधी।

ज्योतिष्मती सम्बन्धी शिक्षायें

१ : मालकांगनी के बीज को सावरण अवलोकन करिए। उसके आकार को ध्यान पूर्वक देखिए। बाह्यावरण की बनावट को नोट करिए और बाहर और भीतर की रचना को देख कर उसे चित्रित करिए।

२ : आवरणरहित बीज संघात को देखिये। ऊपर के पतले पीले वर्ण के फल शस्य के सूखे भाग को पहचानिये।

३ : बीज संघात से बीज को पृथक करिए। इसमें तीन प्रधान खंड और प्रत्येक खंड में दो-दो बीज आपस में युक्त मिलेंगे। इनके आकार को चित्रित करिए।

४ : बीज के भीतर की द्वि पत्रक रचना को ध्यान से देखिए। ताल यंत्र के प्रयोग से उसकी रचना को चित्रण करिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५ : द्रव्य के रस गंध वर्ण और स्पर्श का निरीक्षण करके लिखिए।

६ : बीज चूर्ण को परीक्षा नली में रख कर सुरा प्रदीप पर जला करके स्थिर तैल और उड़न शील तैल का अवलोकन करिए।

ज्योतिष्मती—सेलेष्ट्रसपेनि कुलाटा (celestris Paniculata)
प्रा० वर्ग—ज्योतिष्मत्यादि
प्राचीन वर्ग : चरक…शिरोविरेचन वर्ग.
सुश्रुत : अधोभागहर व शिरोविरेचन.

आकृति व विज्ञान : ज्योतिष्मती के फल के गुच्छे लगते हैं। हरिति अवस्था में इन फलों के ऊपर एक दृढ़ आवरण रहता है। धीरे-धीरे यह बीज पकते हैं और पीले हो जाते हैं। इन में बीज वंद रहता है। सूखते ही फल का आवरण अपने आप फट जाता है।

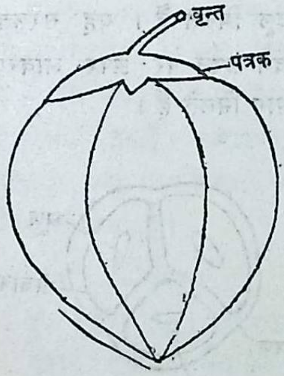

पूर्णफल चित्र १२३

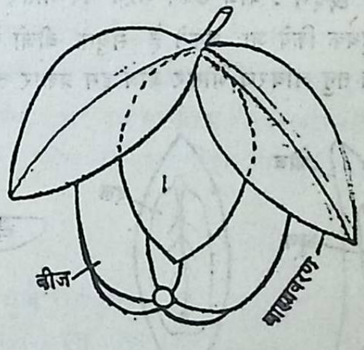

पक्कफल-आवरण-प्रस्फूरित चित्र १२४

फल के मूल पर वृंत लगा होता है जिसमें तीन उभार होते हैं। जो कि मूल भाग पर फैले रहते हैं। फलावरण तीन बड़े भागों में विभाजित होता है। आकृति पहले पान के पत्ते की तरह प्रारंभ में गोलाकार आगे को नोकदार होती है। फटने और सूखने पर यह उथला हो जाता है। वाह्य पृष्ठ भीतर को दब जाता है। आभ्यंतर भाग उभरा हुआ होता है। भीतर की तरफ का भाग एक उभार के द्वारा दो भागों में विभक्त होता है।

आवरण के नीचे आर्द्रावस्था में जो स्निग्ध गूदा होता है वह सूख कर हल्के लाल वर्ण का हो जाता है। इसके ही कारण सब बीज आपस में संयुक्त

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रहते हैं। प्रत्येक बीज में ३ से ६ बीज होते हैं कभी-कभी एक भाग में २ के बदले ३ भी बीज होते हैं जिनका आकार त्रिकोणाकार नत होता है।

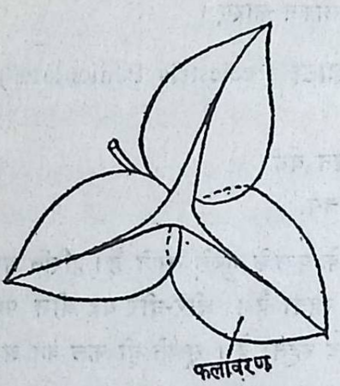

चित्र १२५

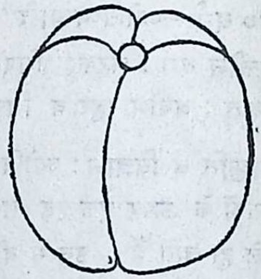

आवरणरहित संगठित बीज चित्र १२६

छेदन : बीज छेदन करने पर भीतर २ द्विदल मिलते हैं। यह सरलता से पृथक किये जा सकते हैं संयुक्त बीजों के छेदन करने पर ऊपर आवरण नीचे तनु आवरण भीतर बीज इस प्रकार तीनों भाग मिलते हैं।

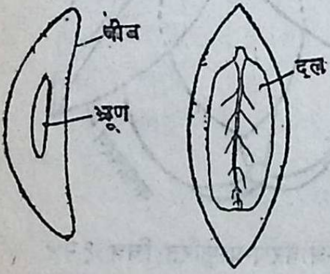

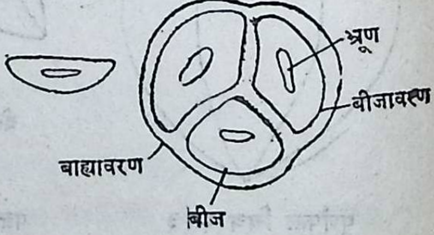

बीजच्छेद बीजांकुर चित्र १२७ संयुक्तबीज का व्यत्यस्त छेद चित्र १२८

परिमाण : फल १ रत्ती बीज आधी रत्ती

वर्ण : प्रकृत : हल्का कत्थई··· क्वाथ, तैल, घृत में वर्ण पीत, ज्वाला पीत वर्ण.

विलेयता : वारि में अल्पांश : तैल व घृत में अधिक घुलन शील

रस : प्रायस: तिक्त : अल्प कटु.

गंध : उग्र

स्पर्श : कठिन : श्लक्ष्ण. लघु. : वर्ग. प्रायश: तिक्त कटु होने से तैजस है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मदन फल : रैंडिया ड्यूमिटीरम्

वर्ग : रुविएसी।

चरक : फलिनी : ऊर्ध्वं संशोधन।

सुश्रुत : ऊर्ध्वंभागहर। आरग्वधादि। मुष्ककादि।

आकृति विज्ञान : मदन फल का आकार गोल होता है। वर्ण रक्त पीताभ बड़े आँवले के बराबर दोनों शिरों पर दबा हुआ चपटा तथा वृंत चिह्न युक्त होता है। इसके ऊपर चार या पाँच धारियां उठी हुई होती हैं। भीतर इसमें दो कोष होते हैं। इससे फल भीतर से दो भागों में विभाजित होता है। प्रत्युक कोष्ठ में पुनः छोटे दो भाग होते हैं। भीतर की पिप्पली का वर्ण भूरा या गहरे कृष्ण लाल या भूरे वर्ण का होता है। इस पिप्पली में इलायची की तरह कई बीज फल मज्जा से चिपट कर एक में सट कर उभारदार त्रिकोणाकृति बना लेते हैं। यह स्पर्श में चिकने होते हैं। सूखने पर कठिन हो जाते हैं।

यांत्रिक विवरण : चौड़ाई में छेद लेने पर पहले त्वचा पश्चात् नीचे का वस्तु दर्शित होती है। त्वचा मोटी लाल वर्ण की होती है। आर्द्र करने पर इसमें रक्त विन्दुसी प्रसरित रेखायें दिखाई पड़ती हैं। नीचे तनुकला और भीतर धूसर वर्ण दिखाई देता है। मध्यावरण श्यामाभ धूसर वर्ण का होता है। बीच-बीच में कटे हुए बीज भाग दिखाई पड़ते हैं। बीच का व्यवच्छेदक भाग भी मध्य में दिखाई पड़ता है।

भार : ४० गुंजा।

वर्ण : पीत रक्त। भंगे रक्ताभ। चूर्ण रक्त श्वेत।

क्वाथ : रक्ताभ। तैल फेन युक्त पीत। घृत पांडुर।

ज्वाला : पीत।

विलेयता : वारि में अधिक। तैल घृत में अल्प।

गंध : शुष्क सुगंध। धूपन में मृदुगंध।

रस : कषाय व अम्ल।

स्पर्श : कठिन खर।

शब्द : ज्वलन कालीन। चरचराहट। द्रव्य गत खड़खडाहट।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय रस होने के कारण यह वायव्य है।

पिप्पली का विवरण (PIPER LONGUM)

नाम : पिप्पली। पीपल। पीपरि।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गण : चरक । कासहर । हिक्का निग्रह । शिरोविरेचन । वमन । तृप्तिघ्न । दीपनीय शूल प्रशमन ।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि । शिरोविरेचन आमलक्यादि ।

प्राकृतिक : पिप्पली कुल पाई परेसी ।

आकृति : पीपर की लता होती है इसपर यह फल लगते हैं। यह फल लम्वे शुंडाकार होते हैं। लम्बाई डेढ़ इंच होती है। शुष्क फल का वर्ण कृष्ण होता है। फल वृंत के स्थान पर यह तीन सूत मोटा और धीरे धीरे पतला होता जाता है। इस पर अनेक छोटे छोटे गोल गोल उभार पाये जाते हैं। इसका आकार शहतूत की तरह होता है। पुष्प काल में इस पर छोटे छोटे कई पुष्प पाये जाते हैं। यही फल वन जाने पर एक एक बीज बन जाते हैं। और गोल दाना के रूप में दिखाई पड़ते हैं। यह प्रत्येक बीज एक एक फल पृथक पृथक होते है। प्रत्येक दाने पर एक उभार दिखाई पड़ता है। जो कि स्त्री केशर का अवशिष्ट भाग होता है। नोकदार दिखाई पड़ता है। इस के नीचे का भाग फलावरण से आपस में मिल कर बना होता है और आपस में मिला हुआ दिखाई पड़ता है। इस प्रकार दानों की एक तिरछी पंक्ति लम्बाई में बन जाती है और चौड़ाई में भी तिरछी आड़ी लाइन में दाने दिखाई पड़ते हैं। बीज का आधे से अधिक भाग बीजावरण के एक परदे से ढका रहता है। इस के हटाने पर भीतर से बीज दिखाई पड़ता है। इस प्रकार एक वृंत पर कई दाने लगे हुए दिखाई पड़ते हैं। बीच का भाग बलवरण से ढकाहुआ आपस में मिला हुआ दिखाई पड़ता है।

छेदन : व्यत्यस्त छेद में बाह्यावरण। बीज का भाग व बीजों के बीच का भाग व बीच में केन्द्रीय भाग दिखाई पड़ता है।

अनुलम्ब काट में : बाह्यावरण बीज। जबी शस्य वृंत का भाग पृथक पृथक होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण कृष्ण। कषे भंगे श्याव। चूर्ण श्याव। क्वाथ श्वेताभ पीत। तैल पीताभरक्त। घृत रक्त पीत। ज्वाला रक्त पीत।

विलेयता : वारि तैल व घृत में अल्प विलेय।

रस परीक्षा : प्रधान रस कटु।

गंध परीक्षा : गंध तीक्ष्ण सुगंध धूपन में उग्र गंध।

स्पर्श परीक्षा : शीत कठिन खर रूक्ष गुरु।

शब्द परीक्षा : भग्न चट। भंगुर।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्ग : प्रायशः कटु होने से तैजस वर्ग का है।

फल परीक्षा विवरण—

ज्ञातव्य बातें

१ : फल को पहले अपने हाथ में लीजिए। उसके आकार प्रकार को देख कर एक विचार बनाइए।

२ : फल के ऊपरी आकार को देखने के बाद उसके ऊपरी आवरण को हटा कर के भीतरी स्तर की परीक्षा करिए और नोट करिए। इसके आकार प्रकार वर्ण गंध आदि को नोट करके लिखिए।

३ : बीज के बाह्य भाग को देखिए।. वर्ण आकृति चिह्न उत्सेध आदि को नोट करिए।

४ : बीज के भार को नापिए। तौलिए कई बीजों को तौल करके उनका औसत निकालिए।

५ : बीज को बीच से काटिए और उसके भीतर की स्थिति को नोट करके उसका चित्र बनाइए। अंकुर कहां पर है क्या आकार है यह नोट करके उसको चित्रित करिए।

६ : अंकुर के पोषक आहार को पहचानिए।

७ : बीज का वैज्ञानिक विवरण दीजिए।

बीज की परीक्षा—

१ : एला बीज की परीक्षा।

२ : परीक्षा से पूर्व क्या क्या ज्ञातव्य बातें हैं इनका ज्ञान प्राप्त करना अत्यावश्यक है।

१ : पहले सूखे फलों को लेकर उसपर के चिह्न वृन्त व अग्रभाग की तथा उसपर की धारियां झुर्रियां आदि देख कर के उन्हें नोट करिए।

२ : आवरण को हटा कर उसपर के भीतरी भाग का अवलोकन करिए। दाने एक में सटे दिखाई देंगे। इन्हें पृथक करने से पूर्व ही आवरण में लगे कई बीजों को देखिए। प्रत्येक दानों को देख कर के उनके आकार प्रकार और व्यास को नापिए। एक दाने का चित्र बनाइए।

३ : बीज के भीतर के नाभि नाल को खोजिए। ऊपर के छिल्के और उसके रूप को नोट करिए।

४ : इसके वर्ण और गंध को लिखिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५ : बीज का छेद लेकर के आभ्यन्तर रचना को देखिए।

६ : स्वाद और रस का विवरण दीजिए।

क्षुद्रएला का विवरण—

छोटी इलायची की परीक्षा।

नाम . क्षुद्र एला। इलायची व कार्डेमोमिसेमिना

प्राप्ति : यह छोटी एला एलिटेरिया कार्डेमोमम मैटन वार नामक एला के सूखे फल जो पक्व या पाकोन्मुख होते हैं एकत्र कर के सुखा कर एकत्र किये हुए फल मात्र हैं। इन के बीजों को आवश्यकतानुसार संग्रह कर लेते हैं।

वर्ग : यह आर्द्रक वर्ग की है।

चरक : कटुक स्कंध श्वास हर। अंगमर्द प्रशमन। शिरोविरेचन वर्ग में पठित है।

सुश्रुत : एलादि गण।

भौगोलिक स्थिति : दक्षिण भारत व लंका में मिलती है। दक्षिण भारत में मैसूर। मालावार, मंगलोर और एलेपी की इलायची प्रसिद्ध है।

आकृति : यदि इलायची के फल को ध्यानपूर्वक देखें तो ज्ञात होगा कि यह श्वेत पीत व हरित वर्ण की है जो कि स्थान भेद से अपना रंग व रूप प्राप्त करती है। यह देखने में तीन उभार वाली बीच में मोटी और दोनों किनारों पर पतली एक विशिष्ट आकार की होती है।

मैसूर की एला : पीले वर्ण की ढीले छिल्के वाली करीब २ सेंटीमीटर लम्बी गोलाकार यह गोल आकार की होती है। वृन्त के पास यह स्थूल और अग्रभाग की तरफ कुछ पतली और उभारदार होती है। आगे का यह उभार योनिछत्र का अवशिष्ट अंश होता है। यह तीन अर्द्धवृताकार पुटों से युक्त होती है। तीन भागों में तीन जगह उठी हुई दिखाई पड़ती है। इसके त्वक् पर लम्बाई में उभरी हुई रेखायें दिखाई पड़ती हैं। छिल्का बाहर से खुरदरा और भीतर से चिकना होता है। भीतर बीज ५ से १२ तक संख्या में प्राप्त होते हैं।

आकार : यह ४ मिलीमीटर लम्बी ३ मिलीमीटर चौड़ी होती है। यह अनियमित आकार के कोणों में होती है। ऊपरी सतह अनियमित व लम्बाई में झुर्रीदार होते हैं। फलावरण के हटाने पर भीतर तीन भागों में विभाजित बल पिपली मिलती है। जिसका रंग पीले भूरे रंग से लेकर परिपक्व फल में लाल भूरे रंग तक होता है। आपस में ये एक चिकने वस्तु मे सटे हुए होते हैं। अतः बीजाकृति उनकी स्थिति के अनुकूल कहीं नोकदार कहीं गोलाकार कहीं

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अनीदार एक तरफ दबे हुए बाहर की तरफ उन्नतोदार दिखायी पड़ते हैं। यदि बीज का छेद लें तो बाह्यावरण पीले भूरे या लाल भूरे रंग का दिखाई पड़ता है। उसके बीच में का भाग अति सूक्ष्म दिखाई पड़ता है। बल को यदि चौड़ाई में छेदन करें तो फल तीन खण्डों में विभाजित दिखाई पड़ता है। आवरण के नीचे बीच के भाग होते हैं।

पूर्णफल मंगलोर का पूर्णफल मालावार का पूर्णफल मैसूर का चित्र १२९

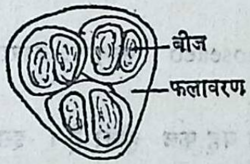

फल का व्यत्यस्त छेद चित्र १३०

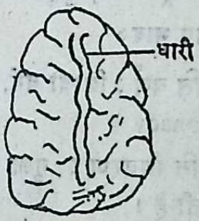

फल का एक बीज चित्र १३१

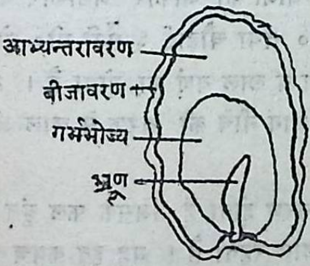

अनुलम्ब छेद चित्र १३२

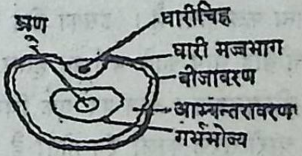

वीज का व्यत्यस्त छेद चित्र १३३

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण ऊपर से पीत।
क्वाथ : घृत तैल।
विलेयता : जल, घृत, तैल में अल्प।
रस : कटु व तिक्त।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गंध : सुगंधित, विशिष्ट गंध युक्त।

स्पर्श : खुरदरा ऊपर से कठिन।

शब्द : भंगुर।

वर्ग : कटु व तिक्त प्रधान रस होने से तैजस् दव्य है।

एला चूर्ण परीक्षा :

वर्ण हल्का पीला व भूरे रंग का जिस में हरे भूरे रंग के अंश अधिक मिले रहते हैं।

गंध : सुगंधित।

वस्तु संग्रह : सुगन्धित तैल व अत्यल्प पिष्ट मय भाग से युक्त।

रक्त गुंजा का विवरण (Abrus Precatorious)

नाम : लाल गुञ्जा, काकणंती, काकादनी।

गण : मूल विष, सुश्रुत।

उपविष भाव०

प्राकृति वर्ग : शिम्बी वर्ग, Legumenoseaeo। उपकुलः अपराजितादि। (Popeleonacy)

आकृति विवरण : गुञ्जा की लता का यह फल होता है। इस में अनेक शाखायें होती हैं।

पत्र इमली की तरह होते हैं। शिम्बी एक से डेढ़ इञ्च लम्बी होती है। इस में चार-चार या पांच-पांच बीज लगते हैं। बीजों का आकार अंडाकार गोल होता है। इसकी लंबाई दो से तीन सेंटी मी० तथा चौड़ाई ६ सेंटी मी० होती है। यह दोनों पार्श्वों से उभारदार चिकना व लाल वर्ण का होता है। यह सामान्य फल होता है। इसका तीन चौथाई भाग नीचे की तरफ से लाल और एक चौथाई भाग काले वर्ण का होता है।

बीजावरण : बीज पर एक चिकना आवरण होता है जिसके फल वृंत के ऊपर चारों तरफ काला रंग होता है। शेष लाल रहता है। यह दृढ़ कवच की भांति दृढ़ होता है। कृष्ण भाग में एक श्वेत वर्ण का चिह्न होता है। यही नाल चिह्न है। इसके पास ही एक सूक्ष्म छिद्र होता है इसे बीज रन्ध्र कहते हैं। इसके भीतर श्वेत ईषत पीत वर्ण का बीज शस्य होता है। यही गर्भ भोज्य वस्तु की तरह कार्य करता है। यह दो होते हैं। इन्हें बीज दल भी कहते हैं। ऊपर का आवरण दृढ़ और मोटा होता है। इसके नीचे एक पतली झिल्ली होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

झिल्ली के नीचे द्विदल का भाग होता है। दलों के बीच में अंकुर का अंश रहता है।

छेदन : इसके छेदन करने पर इसमें क्रमशः निम्न वस्तु पाये जाते हैं।

१ : ऊपर का आवरण। इसमें दो भाग मिलते हैं। ऊपर का मृदु कला का भाग, जो भिगा देने पर सरलता से पृथक हो जाता है। और इसके ऊपर का रंग भी छूट जाता है।

२ : इसके नीचे एक पतली श्वेत कला लगी रहती है। यह बीज शस्य को आवरित रखती है।

३ : इसके नीचे बीज शस्य का भाग रहता है। यह दो होते हैं। यह मोटे श्वेत वर्ण के होते हैं।

वर्ण परिज्ञान : इसका ऊपर का वर्ण कृष्ण व रक्त वर्ण का होता है।

कषे : कृष्ण व श्वेत या रक्त व श्वेत।

चूर्ण : धूसर।

क्वाथ : ईषद्रक्त।

तैल : श्वेत।

घृत : श्वोभ।

ज्वाला : रक्त।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषद् विलेय है।

रस परीक्षा : प्रायशः मधुर ईषद् तिक्त।

गंध परीक्षा : मृदु सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : शुष्क शीत, कठिन, श्लक्ष्ण व गुरु।

शब्द परीक्षा : शुष्क अभंगुर।

वर्ग : प्रायशः मधुर होने से यह पार्थिव वर्ग का है।

कुपीलु या कारस्कर बीज

कुछ ज्ञातव्य सूचना :

१ : कुपीलु के बीजों को परीक्षार्थ तीन से छै दिन तक पानी में भिगो कर रखने के बाद तब प्रयोगार्थ देना चाहिये।

२ : कुपीलु के बीजों की बाहरी गोलाई, चपटापन निरीक्षण करिए। इसका व्यास और मोटाई नापिए। इसके नाभि नाल को ढूँढिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३ : इसके रेशम की तरह चमकदार लोम को जो ऊपर आवरण की तरह है बनावट को देखिए।

४ : इसकी दिशा प्रान्तीय भाग की तरफ जाती हुई अवलोकिए। किनारे की संधि पर बीच में उठी हुई धारी को देखिए।

५ : इसके आर्द्र भाग को चौड़ाई में काटिये। इसे चित्रित करिए और अंकुर को ढूँढिए।

६ : आर्द्रबीज को मोटाई में काटिए और केन्द्रीय रिक्त भाग को नोट करिए। इसके अंकुर की पत्रात्मक स्थिति का अवलोकन करिए। उस पर के शिरा विन्यास को ताल के द्वारा देखिए।

७ : इसके चूर्ण की विशेष तिक्तता का स्वाद लीजिए। इसके वर्ण और गंध को नोट करिए।

८ : इसके क्वाथ का वर्ण। घृत तैल के वर्ण को नोट करिए।

कारस्कर : नक्स वोमिका :

नाम : कुपीलुकारस्कर, काकतिन्दु, इसके पर्याय हैं।

वर्ग : कुपील्वादि या लोगेनिएसी।

चरक सुश्रुत : सुरसादि वर्ग कारस्कर का बीज चपटा गोलाकार ठीक बटन की आकृति का होता है।

इसका वर्ण भस्म वर्ण का श्वेत चमकदार होता है। इसके पार्श्विक किनारी पर बीच में एक उभार होता है। इसके २ तल होते हैं। एक तल कुछ नतोदर दूसरे की अपेक्षा अधिक उभरा हुआ होता है। ऊपर का आवरण एक पतली झिल्ली की तरह होता है। आर्द्र बीज में यह सरलता से हटाई जा सकती है। इसकी सतह पर सूक्ष्म लोम होते हैं जिनकी दिशा केन्द्र से प्रान्त की तरफ होती है। इन मसृण रोमों के कारण यह चमकता भी है। इसके उठे हुए भाग के ऊपर एक विन्दु की तरह छिद्र दिखाई पड़ता है। किनारे पर एक उभरा हुआ सा बिन्दु भी है। यहाँ पर अंकुर का अंश रहता है। इसका किनारा उभरा हुआ धाररहित धारीदार है। एक हल्की परन्तु स्पष्ट गहरी सी धारी जो कि मंडलाकार फैली हुई इसे दो भागों में विभक्त करती है।

छेद लेने पर : १ : वाह्यत्वक् भाग, पतला होता है।

२ : अंतर्भाग : यह कठिन हरे भूरे रंग का दिखाई पड़ता है। यह द्विदलो में होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

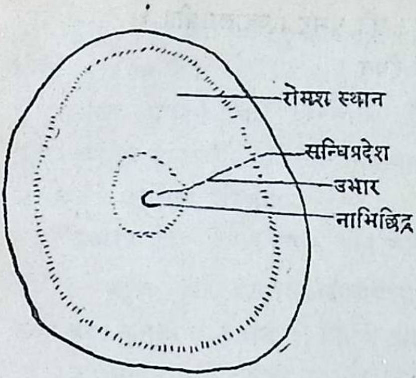

चित्र १३४

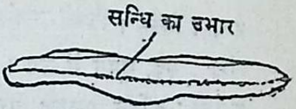

चित्र १३५

३ : भीतर का भ्रूण का भाग पान के पत्र की आकृति का होता है। इसका वृंत मोटा पुष्ट दिखाई पड़ता है। यह एक किनारे पर लगा होता है। इसका वर्ण अन्य भाग से सफेद होता है। इसका पत्र ५ शिराओं से युक्त होता है।

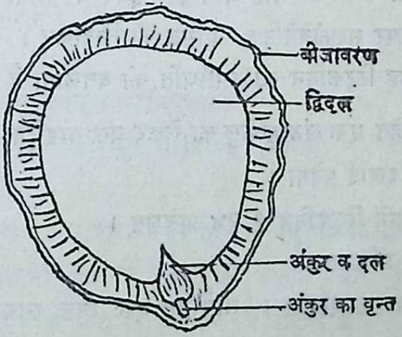

चित्र १३६

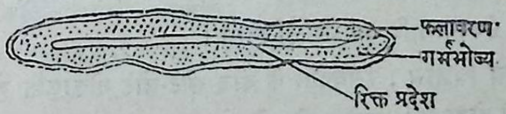

चित्र १३७

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण ईषत् पीत धूसर होता है।

कषे : धूसर। भंगे, श्वेत् धूसर। वर्ण धूसर।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्वाथ : ईषत् पीत। तैल पीत । घृते धूसर । ज्वाला पीत ।

विलेयता : वारि, तेल, घृत में ईषत ।

कारस्कर :

रस : तिक्त ।

गंध : मृदु, धूपन में उग्र ।

स्पर्श : कठिन, श्लक्ष्ण, गुरु ।

शब्द : अभंगुर ।

गण : तिक्त रसत्वात तैजस ।

चूर्णका :

वर्ण : भूरे रंग का । ब्राउनिश ।

गंध :

स्वाद : तिक्त व महातिक्त ।

रासायनिक परीक्षा :

१ : शुष्क दल के एक मोटे भाग को ईथर में भिगो करके वसा रहित करिए। उसके ऊपर सल्फोवेनेडिक एसिड को छिड़किए । उस पर परपल वर्ण दिखाई पड़ेगा । यह स्ट्रिकनिन की उपस्थिति को बतलाता है ।

२ : वसा रहित एक खंड कुपीलु का लेकर घन नाइट्रिक एसिड का डालिए। लाल नारंगी रंग दिखाई पड़ेगा ।

संगठन : इसमें स्ट्रिकनिन १.२४ प्रतिशत ।

ब्रूसिन १.५ प्रतिशत ।

कैफि ओ टैनिक एसिड : लोगैनिन एक पिष्ट सार व कुछ स्थिर तैल मिलता है ।

ईषद्गोल या ईसब गोल (प्लैटेगो ओवाटा)

वर्ग : ईषदगोलादि वर्ग प्लान्टैजिनेसी ।

आकृति विज्ञान : ईसबगोल के बीज छोटे-छोटे नोकाकृति होते हैं। इनका वर्ण बादामी होता है। प्रत्येक बीज के ऊपर एक पतला श्वेत वर्णका आवरण होता है। इसको ईसबगोल की भूसी कहते हैं। बीज स्पर्श में चिकना व चीमड़ा होता है। इस में दो दल होते हैं और आपस में वे एक दूसरे से मिले होते हैं। बीज के बीचो बीच भीतर की तरफ एक खात होता है। यह बाहर की तरफ

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उन्नतोदर होता है। भीतर को यह नतोदर होता है। दोनों तरफ अन्त में कोण बन जाता है।

इसका बादामी वर्ण श्वेतता से मिश्रित होता है। भिगोने पर यह लुआबदार हो जाता है। शुष्क होने पर वीज इसी में चिपके रहते हैं।

सच्छेदन यांत्रिक परीक्षण :

व्यत्यस्त छेद लेने पर इस में तीन भाग दृष्टिगोचर होते हैं।

१ : वाह्य भाग : ऊपर का वीजावरण वादामी वर्ण का दृढ़ होता है। इसके ऊपर वहुत पतली श्वेत वर्ण की झिल्ली होती है।

२ : अन्तर भाग नतोदर व श्वेत वर्ण का होता है।

भार : १।६४ रत्ती।

वर्ण : श्वेत रक्ताभ।

कर्पे व भंगे बादामी : चूर्ण श्वेताभ धूसर, क्वाथे श्वेत, तैले श्वेताभ पीत, घृते श्वेताभ।

उज्ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : वारि में ईषत्।

रस : मधुर।

गंध : शुष्क, मृदुसुगंध। आर्द्रमृदुगंध।

स्पर्श : श्लक्ष्ण, कठिन, गुरु व पिच्छिल, शीत।

शब्द : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायशः मधुर होने से यह पार्थिव द्रव्य है।

नोट—यह यूनानी द्रव्य है किन्तु अब इसका प्रयोग चिकित्सा में अधिक होने लगा है। यह बल्य शीत पिच्छिल व ग्रही द्रव्य है।

स्थूलैला बड़ी इलायची : एमोममसैबूलेटम

नाम : वड़ी इलायची, स्थूलैला।

वर्ग : आर्द्रिकादि वर्ग। स्किटेमिनेसी।

चरक :

सुश्रुत :

आकृति विज्ञान : वड़ी इलायची स्थूल एला का फल है। यह त्रिकोणाकार दोनों किनारों पर पतले होते हैं। इनके ऊर्ध्व भाग में एक वृन्त का भाग लगा रहता है। यह योनिच्छद का अवशिष्ट भाग है। नीचे के भाग पर फल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वृन्त का चिह्न होता है। इसका वर्ण कत्थई होता है। इस पर लम्बाई में रेखायें होती हैं। यह स्पर्श में रूक्ष है इसके छिल्के को उतारने पर भीतर की तरफ यह चिकनी होती है। छिल्के के नीचे बीज दिखाई पड़ते हैं। यह बीज एक चिकने भाग से आपस में चिपके हुए रहते हैं। छिल्के के भीतर तीन भाग दिखाई पड़ते है। प्रत्येक भाग में फल पिप्पली का सटा हुआ भाग दिखाई पड़ता है। यह मिला हुआ भाग भूरे रंग के आवरण से आवरित होता है। सम्मिलित रूप में इनका रूप बीच में मोटा और किनारों पर पतला होता है। इनमें ५ से १० तक बीज चिपके रहते हैं।

बीज : इसका आकार अंडाकार सा होता है। ऊपर का भाग कठिन कृष्ण भूरे वर्ण का होता है। नीचे का भाग श्वेत वर्ण की वस्तु से भरा होता है। यह छोटे-छोटे ६ पंक्तियों में आबद्ध होते हैं। प्रत्येक बीज दूसरे से सटा हुआ होता है। प्रत्येक बीज के ऊपर एक पतली झिल्ली सी श्वेत कला लगी होती है जो शुष्क गूदे की अवशिष्ट भाग है। किसी किसी पर श्वेत किसी पर भूरी किसी पर यह भूरे कृष्ण वर्ण की होती है। बीज ३ स्तर वाला है। ऊपर की सतह उन्नतोदर नीचे की २ लाइन मिल कर नतोदर बनी हुई होती है। इनका स्पर्श कठिन और मसृण होता है।

छेदन कालीन : फल का अनुप्रस्थ छेद करने पर ऊपर आवरण और नीचे ३ प्रकोष्ठ दिखाई पड़ते हैं। यह एक बारीक झिल्ली द्वारा पुनः दो भाग में विभाजित हो जाते हैं। इनमें बीज केन्द्रीय अपरा स्थिति के अनुसार लगे होते हैं। बीच में एक मोटी झिल्ली त्रिपक्षीय होती है। यह तीनों पक्ष सूख जाने पर कागज की तरह पतली दिखाई पड़ती है।

अनुलम्ब च्छेद : इसमें भी प्रथम आवरण बाद में बीजावरण नीचे बीज शस्य होता है।

भार : ८ रत्ती। आयाम ८ इंच। विस्तार ·८ इंच। परिणाह १·२ इञ्च।

वर्ण : प्राकृत वर्ण श्वेत कृष्ण या भूरा कृष्ण। भंगे श्वेत कृष्ण चूर्ण श्वेत कृष्ण।

क्वाथ कृष्ण रक्ताभ : तैल घृत, कत्थई। ज्वाला रक्त पीत।

विलेयता : वारि व तैल घृत में अल्प।

रस : प्रथम मधुर पश्चात कटु व तिक्त।

गंध : सुगंध, मृदु।

स्पर्श : कठिन, रूक्ष और लघु।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शब्द : भग्न कालीन चट्, ज्वलन कालीन चट्।

गण : प्रायशः कटुतिक्तत्वात् ईषत् मधुरत्वात् आग्नेय ।

माजूफल : क्वेरकस इनफेक्टोरिया (Quercus Infectoria)

नाम : माजूफल, मायाफल ।

वर्ग : मायाफलादि, क्युपुलिफेरी । (Cupulefarea)

आकृति विज्ञान : यह एक प्रकार का फलाकार द्रव्य है जो माजूफल के शाखाओं पर एक प्रकार की मक्खी सिनिप्स गैली टिंक्टोरिया के छेद करने पर उसके चारों ओर एकत्र हो जाता है। इसके भीतर यह मक्खी अपने अंडे देती है और बाद में इसमें छिद्र कर के उड़ जाती है। इसका आकार ठीक फल की तरह होता है। इस माया मक्खी के द्वारा इसके बनने के कारण इसको माया फल कहते हैं। आकार में यह गोल छोटे-छोटे उभारों से युक्त होता है जो देखने में कंटक की तरह उठे हुए दिखाई पड़ते हैं। यह स्पर्श में कठिन खर होता है। इसका वर्ण हरित वर्ण का अथवा सफेद होता है। इसमें प्रायः एक छिद्र दिखाई पड़ता है। किसी किसी में छिद्र नहीं भी होता है। कीट इसमें पड़ा रहता है। इसका रस इतना इकट्ठा हो जाता है कि उसका आकार एक प्रकार के फल जैसा बन जाता है। डाली से लगे हुए स्थान पर एक वृंत सा दिखाई पड़ता है।

छेद विवरण : छेदन करने पर इसमें ऊपर बाह्यस्तर श्याम हरित वर्ण का दिखाई पड़ता है।

मध्य स्तर : यह मोटा घन सघाती निर्यास से वस्तु का शुष्क भाग होता है।

केन्द्र : यह भूरे रंग का कठिन भाग है। यहां पर यह इतना कठिन होता है कि देखने और स्पर्श करने पर गुठली की तरह होती है। अतः बहुत से वैद्य इसे फल मान लेते हैं।

कीट : फल के बीच में मक्खी का अवशिष्ट भाग या मक्खी ही मिलती है। मक्खी का आकार ठीक गृह मक्खी की तरह होता है। इसका शिर छोटा उदर बड़ा पीले पंख छोर पर होते हैं।

परिमाण : वल का भार १८ रत्ती के बराबर होता है।

वर्ण : प्राकृत हरा खाकी या श्वेत।

कर्पे व भंगे खाकी चूर्ण का वर्ण भूरा। क्वाथे पीताभ रक्त। तैल व घृत में पीत वर्ण।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ज्वाला : पीत।
विलेयता : वारि में अधिक। तैल व घृत में अल्प।
रस : कषाय प्रायशः व पश्चात् मधुर क्वचित् अम्ल।
गंध : मृदु।
स्पर्श : कठिन खर, रूक्ष और मृदु गुरु।
शब्द : भग्न करने में चट। अभंगुर।
गण : प्रायशः कषाय व ईषत् मधुर होने से वायव्य है।

आरग्वधफल : केसिया फिस्चुला : (Cassiafistula)

नाम : आरग्वध : राजवृक्ष, चतुरंगुल।
वर्ग : करंजादि गण : सीज़ल पिनिएसी : (Caesal peniaceae)
चरक : कुष्ठघ्न, कंडूघ्न, विरेचन, तिक्त स्कंध।
सुश्रुत : आरग्वधादि, श्यामादि, अधोभागहर, आकृतिविज्ञान। अमलतास की फली गोल लम्बी होती है।

आकृति विज्ञान : अमलतास की फली गोल लम्बी नलिकाकार डेढ़ से दो फीट लम्बी होती है। इसका वर्ण काला होता है। आवरण दृढ़ तथा छोटी-छोटी धारियों से युक्त होता है। प्रारम्भ में छोटा सा वृंत का भाग होता है। वृंत के पास से दो धारियाँ उभय पार्श्व में स्पष्ट आदि से अन्त तक चलती हैं। यह इसकी आवरण संधि स्थल हैं। इस फली को तोड़ें तो भीतर काले रंग की मज्जा मिलती है। यह स्पर्श में मृदु व चिपचिपा होती है। मृदु भाग से सटी हुई काष्ठ की पतली झिल्ली सा कला का भाग होता है जिसका वर्ण पीत होता है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर यह कला पाई जाती है। दो कलाओं के बीच में एक बीज रहता है। फली का आवरण ऊपर से काला तथा भीतर का बादामी वर्ण का होता है। इस प्रकार एक इंच फली में सात के लगभग अवकाश होते हैं।

छेदन विवरण : व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमें ऊपर फलावरण रहता है, इसके दो भाग होते हैं।

पहला ऊपर का काला भाग जो कि पतला आवरण होता है। इसके नीचे कठिन आवरण पीले बादामी वर्ण का होता है, यह बहुत दृढ़ होता है। तदनुसार कृष्ण वर्ण का मज्जा का भाग होता है। काली मज्जा के ऊपर बीज का स्थान होता है। इस पर यह चिपका हुआ रहता है, इसका वर्ण बादामी वर्ण का होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मज्जा : काली, मृदु, स्वाद में मधुर व कषाय होती है ।

बीज : यह गोल चपटा सा होता है । वर्ण लाल पीला होता है । प्रारम्भ में एक वीज अंग वृन्त होता है । यहाँ पर बीज कुछ दवा हुआ होता है । इसके ऊपर के भाग पर हल्की सी रेखा उठी हुई होती है । प्रारम्भ में गोलाकार तथा अन्त में कुछ नोकदार होता है ।

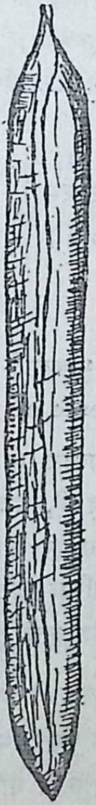

चित्र १३९—शिम्बी का अनुलम्बच्छेद

चित्र १४०—आरग्वध बीज

चित्र १३८—पूर्णशिम्वी

छेदन : छेदन करनेपर ऊपर लालभूरी सी त्वचा जो वहुत कठिन और दृढ़ होती है । नीचे मिगी किंचित् पीली सी होती है । इसके दो दल होते हैं ।

भार : वृन्त के पास श्वेत वर्ण का छोटा सा अंकुर होता है ।

वर्ण : फली कृष्ण वर्णा की । भीतर की मज्जा काले वर्ण की । मज्जा का क्वाथ वर्ण में कृष्ण । तैल व घृत में पीताभ तथा फली फूलने पर पीताभ होती है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विलेयता : मज्जा वारि में वर्ण घुलनशील।

रस : मधुर व कषाय।

गंध : मृदु सुगंध।

स्पर्श : फली : कठिन, खर, व लघु होता है।

मज्जा : मृदु श्लक्ष्ण पिच्छिल व सान्द्र।

बीज : कठिन श्लक्ष्ण गुरु।

शब्द : भग्नकालीन चट्।

गण निरूपण : मज्जा प्रायशः मधुर होने से व ईषत् कषाय होने से पार्थिव है।

मदन फलः रेंडिया ड्यूमेटोरम।
(Randia Dumetorum)

नाम : मदन फल।

गण : च० : फलिनी व वमन वर्ग।

सु० : ऊर्ध्व भाग हर, आरग्वधादि, मुष्ककादि गण।

नैस० वर्ग : मंजिष्ठा कुल रुबिएसी (Rubeaceae)

आकृति विज्ञान : मदन फल का फल गोलाकार बादामी वर्ण का शुष्क वृत्ताकार होता है। इसकी ऊँचाई लगभग १ इञ्च की, इतनी ही मोटाई और परिणाह २ इञ्च का होता है। आर्द्रावस्था में इस पर धारियां होती हैं इससे इसे धारा फल कहते हैं। शुष्क हो जाने पर भी धारियां रहती हैं और शुष्कता के कारण झुर्रियां दिखाई पड़ती हैं। इस पर एक फल वृन्त है विपरीत दिशा में स्त्री केशर का अवशिष्ट चिह्न दिखाई पड़ता है।

व्यवच्छेद : १ : व्यत्यस्त च्छेद लेने पर इस पर प्रथम बाह्यावरण दिखाई देता है जो कि मोटा होता है। ऊपर पतला कला सदृश भाग आर्द्र में पृथक् हो जाता है।

२ : इसके नीचे इसका दूसरा स्तर है जो कि मोटा है। वर्ण हलका ईषत पीत है।

३ : इसके नीचे एक पतली तनु कला है। जो कि बीज के ऊपर आवेष्टित है।

४ : मदन फल पिप्पली इसके नीचे मिलती है जो सूख कर श्याव रक्त वर्ण की होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आर्द्रावस्था में यह फल का गूदा मोटा रहता है। सूख जाने पर पतला और काले वर्ण का हो जाता है और बीजों पर चिपक जाता है। यह कणदार रूप में मिलता है।

मदन फल विप्पली का भाग एक तनु कला द्वारा दो भागों में विभक्त हो जाता है। यह विभाजक कला कहलाती है। प्रत्येक खंड के पुनः दो भाग एक और विभाजक लघु कला द्वारा हो जाता है। प्रत्येक खंड में बीज पुञ्ज एक में सटे हुए दिखाई पड़ते हैं, जिनका आकार इलायची के बीजों की तरह होता है। बीजों पर से इस फल के गूदे को हटा देने पर नीचे पीत वर्ण के बीज मिलते हैं। गूदे का भाग ही फेनिल अंश अधिक रखता है और मदन फल को वामक बनाने में विशेष भाग लेता है।

वर्ण : बाहर से वर्ण प्राकृतिक धूसर होता है।

कर्षे : धूसर।

भंगे : श्याव धूसर।

चूर्ण : श्याव धूसर।

क्वाथ : रक्त।

तैल : पीत।

घृत : ईषत् पीत।

ज्वाला : रक्त वर्ण की।

विलेयता : वारि, तेल व घृत में ईषद्विलेय है।

रसपरीक्षा : कषाय रस। अनुरस, मधुर।

गंध परीक्षा : मृदु सुगंध।

स्पर्शानुमेय गुण : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : द्रव्यगत शब्द कट, अभंगुर।

गण : प्रायशः रस कषाय होने से वायव्य वर्ग है।

धुस्तूर बीज का विवरण

नाम : धत्तूर बीज। (Datura Alba)

गण : चरक व सुश्रुत में इसका गण नहीं है।

प्राकृत वर्ग : कंटकायादि वर्ग। सोलेनेसी (Solanaceae)

आकृति विवरण : धत्तूर का बीज आकार में एक वृक्क की तरह दिखाई पड़ता है। यह डेढ़ सूत लम्बा व १ सूत चौड़ा व एक मिलीमीटर ऊँचा होता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। बीज के किनारे उभरे हुए होते हैं। बीज का वर्ण कृष्ण या लाल वर्ण का होता है। श्वेत धत्तूर का वर्ण लाल व कृष्ण का काला होता है। इसके एक किनारे पर वृन्त चिह्न होता है इसके पास ही दबा हुआ भाग होता है। इस चिह्न को हाइलम कहते हैं। इसके पास ही एक छोटा-सा चिह्न होता है जो नाभिछिद्र कहलाता है। इसके दोनों स्तर पतले, चपटे और दबे हुए होते हैं। बीज के ऊपर का आवरण कठिन होता है और बीज की रक्षा करता है। ऊपरी सतह पर कहीं-कहीं झुर्रीदार दबा हुआ भाग होता है।

इसके भीतर गर्भ भोज्य का भाग होता है। इसमें अंकुर का व भ्रूण का अंश होता है।

छेदन : छेदन करने पर इसमें सबसे ऊपर बीजावरण मिलता है। उसके बाद गर्भ भोज्य का अंश रहता है। इसमें दल के भाग व भ्रूण के अंकुर का भाग दिखाई पड़ता है।

अनुलंब व व्यत्यस्त छेद में प्रायः यही अंश मिलते हैं। दृश्य भिन्न-भिन्न होता है। इसके चित्र पृथक्-पृथक् दिये गये हैं।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण कृष्ण वर्ण वाले में कृष्ण भंगे धूसर।

चूर्ण : कृष्णाभ।

क्वाथ : ईषत् पीत।

तैल व घृत : पीत।

ज्वाला में रक्त वर्ण।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में विलेय है।

रसपरीक्षा : स्वाद में कटु व तिक्त होता है।

गंध : सामान्य धूपन में उग्र व अवसादक।

क्षुण : स्पर्श में कठिन, खर, रुक्ष व लघु होता है।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

वर्ग : प्रायशः कटु व तिक्त होने से आग्नेय होता है।

विडंग : इम्बेलिया राइब्स (Embalia Ribs)

नाम : विडंग फल।

वर्ग : विडंगादि, मिरसीनेसी।

चरक : क्रमिघ्न, कुष्ठघ्न, तृप्तिघ्न, शिरोविरेचन।

सुश्रुत : सुरसादि, पिप्पल्यादि।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भावप्रकाश : त्रिमद।

आकृति विज्ञान : विडंग का फल आकृति में वृत्ताकार होता है। इसका उपरितन भाग श्याव गाढ़े लाल वर्ण का होता है। ध्यानपूर्वक देखने पर यह ऊपर की रचना जालीदार दिखाई पड़ती है। किसी-किसी में यह झुर्रीदार दिखाई पड़ता है। किसी-किसी में यह रचना नहीं भी पाई जाती है। इसमें एक छोटा-सा वृंत का भाग होता है ऊपर योनिच्छद का अवशिष्ट भाग होता है जो कि नोकदार रचना से युक्त होता है।

ऊपर के रक्त वर्ण के छिलके को हटावें तो नीचे गहरे रक्त वर्ण का दूसरा आवरण दिखाई पड़ता है। यदि इसके आवरण भाग को भी हटा दें तो इसके नीचे एक और आवरण दिखाई पड़ता है। यह दूसरे भाग से हल्के वर्ण का होता है। इसको भी हटाने पर नीचे कठिन श्वेताभ बीज दिखाई पड़ता है।

छेदन : अनुप्रस्थ छेद लेने पर इसमें पहले कृष्ण वर्ण का आवरण दिखाई पड़ता है। इसके नीचे बादामी वर्ण का आवरण और नीचे श्वेत वर्ण का बीज होता है।

अनुलम्ब छेद लेने पर भी यही चार भाग दिखाई पड़ते हैं।

भार : ज्ञ। १२ सेज्ञ। ६ रत्ती तक श्र।

वर्ण : प्रा० कृष्ण भूरा।

चूर्ण : कृष्ण रक्ताभ।

क्वाथे : पीत ईषद्रक्त।

तैले घृते : रक्ताभ।

ज्वालायाम : रक्त पीत।

विलेयता : वारि में अल्प, तैल, घृत में कुछ अधिक श्र।

रस : प्रधान रस, कषाय अनुरस तिक्त।

गंध : सुगंध मृदु।

धूपन : दुर्गन्ध।

स्पर्श : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय व अनुरस ईषत् तिक्त होने से वायव्य है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

करंज या कुबेराक्ष : सीजल पीनिया क्रिस्टा :
(Caesalpinia cresta)

नाम : करंज, कुबेराक्ष, कंटकी करंज।

वर्ग : करंजादि : सीजल पीनिएसी (Caesalpeniaceae)

चरक : सुश्रुत : अधोभागहर।

आकृति विज्ञान : करंज के बीज शुष्क ही काम में लाये जाते हैं। इसका वर्ण स्लेटी रंग का होता है। यह गोल वृन्त के पास कुछ पतले आगे को विशिष्ट गोलाकार हो जाते हैं। कभी-कभी यह कुछ चपटे भी होते हैं। वह दोनों तरफ उन्नतोदर होता है। किसी पर कभी धारियाँ भी पायी जाती हैं। ऊपर का कोष कठिन और वर्ण में पीताभ होता है। इसके नीचे बीज की मज्जा होती है। यह मज्जा कभी श्वेत व कभी भूरे वर्ण की होती है।

छेदन : अनुलम्ब छेद लेने पर ऊपर कड़ा भाग छिल्के का दिखाई पड़ता है। नीचे मज्जा का भाग और उसके बीच में दबे हुए भाग के पास भ्रूण का भाग होता है।

परिमाण : भार १६ गुञ्जा।

वर्ण : प्रा० वर्ण धूसर या स्लेटी।

भंग : कृष्ण व श्वेत।

चूर्ण : धूसर वर्ण का।

क्काथ : पीत रक्त।

तैल व घृत : पीत रक्त।

ज्वाला : पीत वर्ण।

विलेयता : वारि, तैल घृत में अल्प।

रस : मधुर व कषाय।

गंध : दुर्गंध ग्लानिकर।

स्पर्श : ऊपर से श्लक्ष्ण, कठिन, लघु।

बीज : कठिन, रुक्ष, लघु।

शब्द : द्रव्यगत, खड़खड़ाहट।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय व ईषत् मधुर होने से वायव्य है।

यमानी : कैरम कैप्टिकम् : (Carum Taptacum)

नाम : यमानी, जवाइन।

वर्ग : मंडूक पर्णादि : अम्बेलीफेरी : (Umbelefareae)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चरक : शीत प्रशमन । भाव० : चतुर्बीज :

आकृति विज्ञान : यमानी एक सामान्य फल है । इसका आकार छोटा, गोल व चपटा होता है । फल का अधोभाग ऊर्ध्व भाग की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है । अधोभाग पर फल वृंत लगा होता है । ऊर्ध्व भाग पर योनिच्छत्र का अवशिष्ट भाग लगा रहता है जो कि ऊँचा उठा हुआ उभार सदृश दिखाई देता है। फल में दो बीज मिले रहते हैं । संयोग स्थल पर एक गहरी रेखा स्पष्ट दिखाई देती है । ऊपर से नीचे आती हुई इसमें दस रेखायें दिखाई पड़ती हैं । अर्थात् प्रत्येक बीज पर पांच-पांच रेखायें होती हैं । रेखान्वित भाग श्वेत तथा अन्य भाग धूसर होता है । दोनों बीजों को अलग करने पर दोनों को पृथक करनेवाली पतली झिल्ली दिखाई पड़ती है ।

प्रत्येक बीज त्रिकोणाकार लम्बा होता है । यह अन्दर की तरफ नतोदर होता है । इसके ऊपर एक धूसर आवरण होता है । जिसके हटाने पर श्वेताभ बीज मज्जा दिखाई पड़ती है । प्रत्येक बीज में एक पीताभ अंकुर होता है ।

अनुच्छेद : छेद लेने पर चौड़ाई में ऊपर बीजावरण नीचे बीज मज्जा तथा दोनों के बीच में तनु झिल्ली दिखाई देती है । अनुलम्ब छेद में भी यही चीजें दिखाई पड़ती हैं ।

परिमाण : ३० फल का भार १ रत्ती होता है ।

विलेयता : वारि में अधिक और तैल व घृत में ईषत् विलेय है ।

रस परीक्षा : प्रधान रस कटु व अनुरस तिक्त होता है ।

गंध : यमानी में उग्र गन्ध होता है। साथ ही यह सुगन्धित होता है । ॑पन में उग्र गंध मिलती है ।

स्पर्श परीक्षा : यह स्पर्श में कठिन, खर, रुक्ष और लघु होता है ।

शब्द परीक्षा : यह भंगुर होता है । जलाने पर कोई आवाज नहीं मिलती ।

गण विनिश्चय : प्रायशः कटु व तिक्त होने के कारण यह आग्नेय द्रव्य है ।

अजमोदा : कैरम राक्स बर्घिएनम
(Carum Roxburgheenum)

नाम : अजमोदा, खराश्वा, मयूरिका ।

वर्ग : मंडूक पर्ण्यादि, अम्बेलीफेरी । (Umbalifarae)

चरक : शूलप्रशमन, दीपनीय । सुश्रुत : पिप्पल्यादि ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आकृति विज्ञान : अजमोदा का फल एक छोटा-सा गोलाकार फल है। यह सामान्य फल की श्रेणी का है। बाजारू फल में कच्चे व पके फल दोनों मिश्रित रहते हैं। पके फल पीताभ और कच्चे फल हरित होते हैं। फल के अधोभाग में फल वृन्त लगा होता है। उसके ऊर्ध्वभाग पर योनिच्छत्र का अवशिष्ट भाग रहता है। नीचे से ऊपर तक संपूर्ण फल में दस रेखायें पीताभ उत्सेधयुक्त दिखाई पड़ती हैं। इसमें दो बीज होते हैं। दोनों के संधि स्थल पर मोटी रेखा होती है। दबा कर यह सरलता से अलग किये जा सकते हैं। दोनों बीजों के बीच में एक संधि स्थलीय पतली झिल्ली होती है।

प्रत्येक बीज पर एक आवरण होता है। सन्धि की तरफ बीज कुछ नतोदर ही होता है। आवरण हटाने पर एक अंडाकार श्वेताभ बीज मिलता है।

विशेषतायें :

१ : फल का आकार यमानी सदृश ही होता है किन्तु यह अपेक्षाकृत गोलाकार होता है।

२ : फल यमानी से बड़े होते हैं।

३ : यह यमानी सदृश तीक्ष्ण गंधी नहीं है।

अनुच्छेद : अनुलम्ब छेद लेने पर ऊपर बीजावरण उसके नीचे बीजावरक तनुकला तथा नीचे बीज का भाग होता है। बीच में वृन्त का भाग जो आगे चलकर विभाजक कला का स्वरूप धारण करता है।

अनुप्रस्थ छेद : इसमें प्रथम बीजावरण घूसर वर्ण का पहले मिलता है। बाद में बीजावरक झिल्ली पश्चात् बीज होता है।

परिमाण : ९५ फल का भार १ रत्ती होता है।

वर्ण परिज्ञान : पके फल का वर्ण पीताभ और कच्चे फल का वर्ण हरिताभ होता है।

कल्पे : हरिताभ।

भङ्गेचूर्णे : हरित पीताभ।

क्वाथे : पीताभ श्वेत।

तैल व घृते : हरिताभ।

ज्वालायाम् : रक्ताभ।

विलेयता : वारि, तैल, घृत में ईषत् विलेय है।

रस परीक्षा : प्रायशः कटु अनुरस तिक्त है।

गंध परीक्षा : उग्रगंधी किन्तु सुगंधयुक्त होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष व लघुगुणयुक्त होता है।

गण विनिश्चय : प्रायशः कटुतिक्तत्वात् यह द्रव्य आग्नेय माना जाता है।

मिश्रेया सोआ : प्यूसिडेनम ग्रेबिओलन
(Pucedenam graviolans)

नाम : मिश्रेया, सोया।

वर्ग : शतपुष्पादि। (Umbalifarae)

चरक : सुश्रुत : दीपनीय।

आकृति विज्ञान : सोया एक सामान्य जाति का फल है। यह गोल, लम्बा, पतला, लघु फल है। इसकी चौड़ाई लम्बाई से कुछ अधिक होती है। यह दोनों सिरों पर पतला हो गया है। अधो भाग पर वृन्त और ऊर्ध्वंभाग पर योनिछत्र

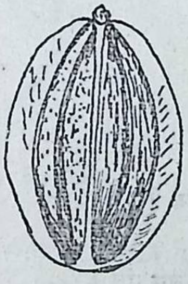

चित्र १४१—सामनेसे

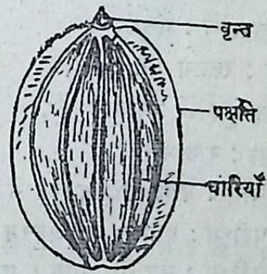

चित्र १४२—पार्श्विक प्रदर्शन

का अवशिष्ट भाग रहता है। इस पर १० अनुलम्ब रेखायें हैं। सन्धि स्थान पर दो रेखाओं के संयोग से एक मोटी रेखा बन गई है। दो रेखाओं के बीच का भाग कृष्णाभ है। बीज के पार्श्विक भाग पर पतली पक्षति की तरह निकला हुआ भाग है। दवाने पर दोनों बीज सरलता से पृथक हो जाते हैं। इनके बीच वृन्त का भाग आगे जाकर फैल कर चौड़ा व विभेदक झिल्ली की तरह बन गया है। प्रत्येक बीज लम्बा और भीतर की तरफ नतोदर होता है। प्रत्येक बीज पर एक पतला आवरण है जिसको हटा देने पर नीचे धूसर वर्ण की फल मज्जा मिलती है। जिसके एक सिरे पर श्वेताभ भ्रूण का भाग अवस्थित है।

छेदन : अनुप्रस्थ छेद लेने पर ऊपर आवरक कला उसके नीचे बीजावरण पश्चात् बीज शस्य मिलता है। बीच में विभाजक कला का भाग रहता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अनुलम्ब छेद लेने पर ऊपर आवरक कला विभाजक कला मिलती है। बाकी सब वही अंश होते हैं।

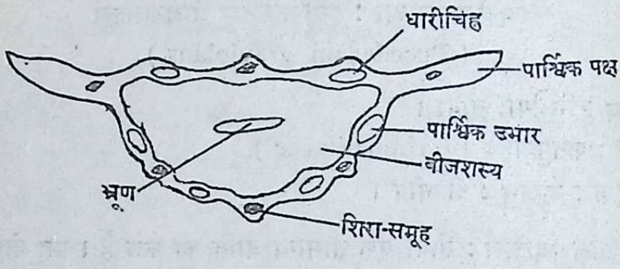

चित्र १४३—व्यत्यस्तच्छेद

परिमाण : २० फल मिलकर एक रत्ती के बराबर होता है।
वर्ण परिज्ञान : वर्ण प्राकृत कृष्णाभ पीत।
कषे व भंगे : घैसर।
क्वाथ : रक्ताभ पीत :
तैल व घृत में : पीताभ हरित।
ज्वाला : रक्ताभ।
विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत् विलेय है।
रस परीक्षा : प्रायशः कटु अनुरस तिक्त।
गंध परीक्षा : उग्र गंध सुगंध। धूपन में भी उग्र गंध।
स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष, लघु है।
शब्द परीक्षा : भंगुर, सरलता से दबाने पर दोनों बीज पृथक हो जाते हैं।
गण विनिश्चय : प्रायशः कटु व तिक्त होने के कारण यह आग्नेय द्रव्य है।

शतपुष्पा : फोयनीकुलम केपिलिकम :
(Focaniculam Capilecum)

नाम : शतपुष्पा, मिशि, मधुरा छत्रा।
वर्ग : मंडकू पण्यादि, अंबेलीफेरी। (Umbalifarae)
चरक :
सुश्रुत : आस्थापन।

आकृति विज्ञान : सौंफ का फल साधारण जाति का फल होता है। यह छोटा, लम्बा, गोलाकार फल है। बीच में मोटा और किनारों पर पतला हो

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जाता है। अधोभाग पर वृत और ऊर्ध्वभाग पर योनि छत्र का अवशिष्ट भाग रहता है। प्रत्येक फल पर पीताभ १० अनुलम्ब रेखायें होती हैं। दो रेखाओं के बीच हरिताभ गर्त होता है। प्रत्येक फल पर दो बीज रहते हैं। दोनों के बीच में संधि स्थल पर एक मोटी रेखा दिखाई पड़ती है।

चित्र १४४

चित्र १४५

संधि स्थल पर दबाने से दो बीज निकल आते हैं। बीज लम्बे व अन्दर की तरफ नतोदर होते हैं। बीजों के बीच में सूक्ष्म कला होती है। जो दोनों को

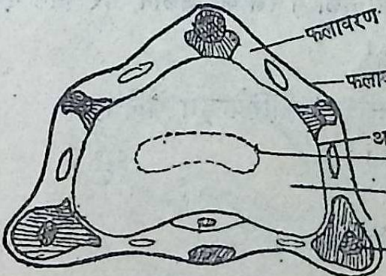

चित्र १४६

अलग करती है। बीज के ऊपर एक आवरक कला होती है। जिसका आकार पीताभ होता है इसको हटाने पर लम्बगोल मज्जा मिलती है। प्रत्येक फल मज्जा में एक तरफ अंकुर का भाग दिखाई पड़ता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अनुलम्ब छेद : छेद लेने पर अनुलम्ब में ऊपर फलावरण नीचे बीज को विभाजन करनेवाली कला मिलती है।

अनुप्रस्थ छेद : अनुप्रस्थ छेद लेने पर ऊपर पीताभ फलावरण नीचे बीजावरक झिल्ली पश्चात बीज शस्य का भाग मिलता है।

परिमाण : १२ फल का भार एक रत्ती होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण पीताभ व हरिताभ।

कषे : पीताभ।

भंगे : पीताभ।

चूर्णे : पीताभ।

क्वाथे : पीत हरिताभ।

तैल : पीताभ।

घृत : हरिताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत् विलेय।

रस परीक्षा : प्रधान रस मधुर। अनुरस कषाय।

गंध परीक्षा : मृदु गंध, सुगंध।

मूर्तगुण : कठिन, खर, रूक्ष व लघु।

शब्द परीक्षा : भंगुर दबाने पर दोनों बीज सरलता से अलग हो जाते हैं।

गण विनिश्चय : प्रायशः मधुर होने से यह पार्थिव वर्ग का द्रव्य है।

नोट : बीजों को परीक्षा नली में रख कर जलाने पर इससे एक सुगंधित उड़नशील तैल पाया जाता है।

धान्यक परीक्षा : कोरियेन्ड्रम सैटिवम्।

नाम : धान्यक, धनियां।

वर्ग : अम्वेलीफेरी।

चरक : तृष्णानिग्रह, शीतप्रशमन।

सुश्रुत : गुडूच्यादि।

आकृति विज्ञान : धनियां एक सामान्य जाति का फल है। इसका आकार लघु अंडाकार होता है। यह दोनों सिरों पर पतला बीच में मोटा वृत्ताकार होता है। इसके अधोभाग पर वृन्त और ऊर्ध्व भाग पर योनिछत्र का अवशिष्ट भाग होता है। लम्बाई में इस पर १२ धारियाँ लगी होती हैं। दो बीजों का सन्धि स्थल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यह स्पर्श में रूक्ष तथा वर्ण में पीताभ होता है। इसमें दो बीज होते हैं जोकि सरलता से दबाने पर पृथक हो जाते हैं। दोनों के सन्धि स्थल पर एक सीवनी-सी दिखलाई पड़ती है। प्रत्येक बीज अन्दर की ओर नतोदर होता है। इस पर दो आवरण होते हैं। ऊपर का आवरण कठिन और पीला होता है। नीचे का आवरण पतला और मृदु होता है। इन आवरणों को हटाने पर नीचे फल मज्जा मिलती है जो श्वेताभ होती है। इसके नतोदर भाग की तरफ पीताभ अंकुर या भ्रूण दिखाई पड़ता है।

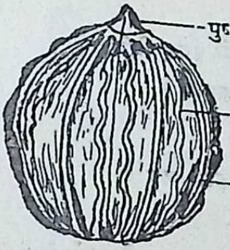

चित्र १४७ धनियां

च्छेदन : अनुप्रस्थ छेद लेने पर ऊपर प्रथम पीत कठिन आवरण मिलता है। पश्चात् बीज के ऊपर की पतली झिल्ली मिलती है, उसके नीचे फल शस्य होता है।

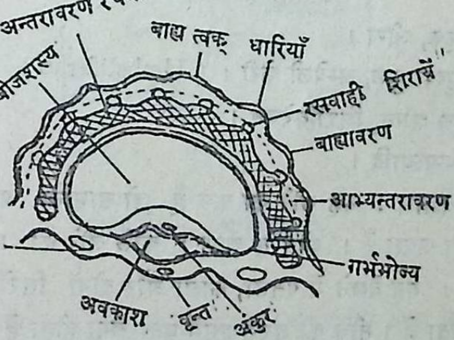

चित्र १४८

अनुलम्ब छेद लेने पर यही बातें दिखाई पड़ती हैं। इनके अतिरिक्त दोनों बीजों के बीच की विभेदक झिल्ली भी मिलती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिमाण : सात फल एक रत्ती के बराबर होता है।

वर्ण : पीताभ।

प्राकृतिक वर्ण : पीताभ।

भंगे कषे : पीताभ।

चूर्ण : पीताभ।

क्वाथ : पीताभ।

घृत : पीताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयेता : जल, तैल व घृत में ईषत् विलेय है।

रस : प्रधान रस मधुर ईषत कषाय।

गंध : मृदु सुगंधित।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : भंगुर।

दोनों बीज सरलता से दबाने पर पृथक हो जाते हैं।

गण विनिश्चय : प्रायशः मधुर होने से यह प्राथिव वर्ग का है।

नोट : परीक्षा नली में रख कर परीक्षा करने पर ज्वाला में तपाने पर एक प्रकार का सुगन्धित उड़नशील तैल मिलता है।

जीरक परीक्षा : क्यमिनम् साइमिनम्
(Cuminum Ciminum)

नाम : जीरक, जीरा।

वर्ग : शतपुष्पा कुल, अम्बेली फेरी। (Umbelifarae)

चरक : शूल शमन, शिरोविरेचन।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि।

आकृति विज्ञान : यह जीरे का फल है जो सामान्य फल है। यह दो प्रकार का पाया जाता है। श्वेत व कृष्ण। काले जीरे का प्रयोग औषधि में अधिक होता है। यह देखने में पतला, काला और दोनों सिरों पर पतला बीच में कुछ मोटा होता है। नीचे की तरफ इसमें वृन्त लगा होता है जो छोटा होता है। अन्त में ऊपर योनिछत्र का अवशिष्ट भाग रहता है। इसकी लम्बाई ४ से ७ मिली मीटर चौड़ाई १ से २ मिलीमीटर होती है। साथ में दो बीज एक साथ लगे रहते हैं। इसका वर्ण भूरा या काला भूरा होता है। इसमें एक प्रकार की सुगंध होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसके ऊपर चार या पांच रेखायें जो पतली होती हैं, लम्बाई की दिशा में पाई जाती है। इनका वर्ण पीत व भूरा होता है। ऊपर की तरफ चार और नीचे दो रेखायें रहती हैं। ऊपर के आवरण को हटाने पर नीचे बादामी वर्ण का बीज शस्य दिखाई पड़ता है। वृन्त की तरफ भ्रूण का छोटा अंश रहता है। इसमें एक प्रकार का सुगंधित तैल पाया जाता है।

चित्र १४९

छेदन : अनुलम्ब छेद लेने पर ऊपर फलावरण भूरे रङ्ग का मिलता है। उसके नीचे बीज शस्य होता है। बीच में कटा हुआ भ्रूण का भाग दिखाई पड़ता है।

अनुलम्ब छेद में यही द्रव्य मिलते हैं।

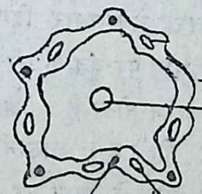

चित्र १५०—व्यत्यस्तच्छेद

परिमाण :

विलेयता : यह वारि तैल व घृत में ईषत् घुलनशील होता है।

वर्ण : प्राकृत वर्ण काला, भूरा, कषेभंगे : श्यामाभ।

क्वाथ : पीताभ

घृत : पीताभ

तैल : पीतकृष्णाभ

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ज्वाला : पीतरक्त

गंध परिज्ञान : इसमें एक प्रकार का सुगन्धित गन्ध मिलता है।

शब्द : यह भंगुर होता है।

स्पर्श परीक्षा : स्पर्श में यह रूक्ष, खर व लघुहोता है।

रस परीक्षा : प्रायशः कटुतिक्त होने से यह आग्नेय वर्ग का है।

गण विनिश्चय : कटुतिक्त रस होने के कारण यह आग्नेय है।

बिभीतक या बहेड़ा

नाम : बहेड़ा या बिभीतक Terminalia Belarica.

गण : ज्वरहर विरेचनोपग च०।

मुस्तादि व त्रिफला सु०।

नै० वर्ग : हरीतक्यादि। कन्ब्रीटेसी (Combritaceae)

परिचय : यह वृक्ष जातीय होता है, जिसकी ऊँचाई ३० से ४० फीट तक होती है। इसके फल को बहेड़ा कहते हैं। यह फल धूसर वर्ण का गोल होता है। हरा रहने पर यह गोल रहता है। शुष्क हो जाने पर इस पर उभार व खात दिखाई देते हैं। इस कारण यह स्पर्श में खुरदरा होता है। फल की लम्बाई लगभग डेढ़ इंच, मोटाई एक इञ्च, परिणाह २ इंच के बराबर होता है। फल वृन्त जहाँ लगता है वहाँ वृंत की तरह ऊँचाउभार दिखाई देता है। वहाँ कुछ नोकदार होता है। फल के ऊपरी भाग पर वृंत के ठीक विपरीत स्थान पर कुछ दबा हुआ होता है। फल स्पर्श में कठिन होता है। आर्द्र फल कुछ मृदु होते हैं। इस पर धूसर वर्ण की कला लगी होती है। आसानी से इसे खुरच कर अलग किया जा सकता है। इसके नीचे के भाग पर श्याव रक्त वर्ण का कणदार भाग गूदे का मिलता है। इसके नीचे फल की गुठली होती है, जिसका वर्ण पीला होता है। यह कठिन अण्डाकार व दृढ़ होती है। इस पर ६ रेखायें दृष्टिगोचर होती हैं।

छेद लेने पर : चौड़ाई में छेद लेने पर निम्न भाग स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

१ : ऊपर पतला कला सदृश आवरण फल पर होता है। यह बाह्यावरण है।

२ : इसके नीचे मांसल भाग दो सूत मोटा श्याव व रक्तवर्ण का होता है। यह मेसोकार्प कहलाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३ : इसके नीचे अष्ठि का भाग कठिन पीत वर्ण का होता है जो दृढ़, मोटा व कठिन होता है और बीज को ढके रहता है।

४ : बीज के ऊपर एक तनुकला चमकदार पीत वर्ण की होती है।

५ : बीज : अष्ठि के नीचे पीताभ ऊपर से व भीतर श्वेत वर्ण का बीज होता है।

अनुलम्बच्छेद : इसमें भी वही भाग दिखाई देते हैं जो कि व्यत्यस्त च्छेद लेने पर दिखाई पड़ते हैं।

बीज : बीज के ऊपर की कला हटा देने पर नीचे का द्विदलीय भाग गर्भ भोज्य दिखाई पड़ता है। इसके भीतर अङ्कुर व भ्रूण का भाग रहता है।

वर्ण : ऊपर से प्राकृतिक वर्ण घूसर होता है।

कषे : कृष्णाभ रक्त।

भंगे : कृष्ण पीत।

चूर्ण : भूरा।

क्वाथ : गहरा भूरे कषाय वर्ण का।

तैल व घृत में : पीत। ज्वाला का वर्ण रक्त।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत् विलेय है।

रस : प्रधान रस कषाय और अनुरस मधुर सा है।

गंध : मृदु, सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : स्पर्श में यह शीत कठिन, खर, रूक्ष, लघु होता है। आर्द्र फल गुरु होता है।

शब्द परीक्षा : द्रव्य गत शब्द गुठली में हिलाने पर कुछ आवाज होती-सी है। यह अभंगुर है।

वर्ग : प्रायशः कषाय होने से वायव्य वर्ग का है।

हरीतकी या हरड़ विवरण (Terminalia chebula.)

नाम : हरीतकी। अभया।

चरक : प्रजा स्थापन, ज्वरघ्न। कुष्ठघ्न। कासघ्न। अर्शोघ्न।

सुश्रुत : त्रिफला, परुषकादि, आमलक्यादि। त्रिवृंतादि।

प्राकृत वर्ग : हरीतक्यादि, कम्ब्रीटेसी। (Combritaceae)

विवरण : हरीतकी के फल दो प्रकार से काम में आते हैं। हरे व पक्व।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हरे कच्चे फलों को तोड़कर जब वे छोटे होते हैं एकत्र करके सुखा लेते हैं। इन्हें बाल हरीतकी या काबली एरड़ कहते हैं। जो बड़े व पकने पर सुखाये जाते हैं, उन्हें हरड़ या हरीतकी कहते हैं। बाल हरीतकी का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

यह फल छोटे व यव के आकार के हैं। इस पर झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं। यह स्पर्श में कठिन व काले वर्ण के और रूक्ष हैं। इनकी लम्बाई एक इन्च के बराबर होती है। चौड़ाई आधी इन्च से कुछ कम होती है। शुष्कावस्था में ये कोई चपटे होते हैं। आर्द्रावस्था में यह गोल होते हैं। सूख जाने पर इस पर पाँच रेखायें दृष्टिगोचर होती हैं। ऊपर को नोकदार व आगे के भाग में गोल व स्थूल होती है। इसमें पाँच उभार हैं। दो उभारों के बीच में एक गहरी रेखा दबी हुई है। इसमें वृंत का अवशिष्ट भाग दिखाई पड़ता है। यह नुकीले भाग पर लगा होता है। यह कठिन है। चाकू से काटने पर भीतर भी काली है।

छेदन : इसके व्यत्यस्त काट लेने पर इसके ऊपर एक आवरण मिलता है। जो पतला होता है। इसके नीचे फल शस्य का काला कुछ भूरा भाग है, जो मांसल है। इसके नीचे अष्ठि का पतला भाग है, जो पीले रंग का है। यह पतला और हल्का है। परिपुष्ट न होने से यह पतला रह गया है।

इसके नीचे के भाग पर मींगी का छोटा-सा अंश लगा हुआ है।

अनुलम्ब काट : इसमें भी वही अंश मिलते हैं।

वर्ण : प्राकृतिक वर्ण कृष्ण है। कषे, भंगे चूर्ण में कृष्ण है। क्वाथ का वर्ण रक्ताभ है।

विलेयता : वारि में कुछ घुलनशील है।

रस : रस में यह प्रायशः कषाय ओर अनुरस में यह अम्ल व तिक्त है।

गंध परीक्षा : मृदु सुगन्ध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन खर गुरु है।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

वर्ग : प्रायशः कषाय होने से यह वायव्य वर्ग का है।

काकड़ा सिंगी (Rhur succedenia)

नाम : कर्कट शृङ्गी। काकड़ा सिंगी।

गण : चरक : कासहर। हिक्का निग्रहण।

सुश्रुत : काकोल्यादि गण।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राकृ० वर्ग : आम्र कुल । एनाकार्डिएसी (Anacardeaceae)

आकृति विज्ञान : यह काकड़ा सिंगी जिसे कक्कर या काकर कहते हैं उस वृक्ष का फल है। वृक्ष की शाखाओं पर या पत्र वृंतों पर एक प्रकार के कीटों द्वारा यह श्रृंगाकार कोष निर्मित हो जाते हैं। इसकी लम्बाई ४ इञ्च और चौड़ाई एक इञ्च तक होती है। यह फल भीतर से केकड़े के सींग की तरह आकार वाला होता है अतः इसे काकड़ा सिंगी कहते हैं। यह चपटा नलिकाकार, भीतर से पोला होता है। इसका वाह्य वर्ण रक्ताभ धूसर होता है इसके ऊपर अनुलम्ब दिशा में वहुत सी रेखायें पाई जाती हैं। इस कारण यह स्पर्श में खर होता है। इसमें एक ओर स्थूल भाग होता है। वहां पर इसमें छिद्र होता है। दूसरी तरफ यह नोकीला होता है।

यह एफिस नामक एक मक्खी जातीय कीट के द्वारा कृत्रिम फलाकृति का द्रव्य है। जब उक्त कृमि वृक्ष की शाखा या पत्र वृन्त पर बैठता है तब तो उसके दंश से एक, प्रकार का कषाय रसवाला स्राव निकलता है। धीरे-धीरे इसका आकार एक फल की तरह हो जाता है। भीतर इसके धूलि की तरह एक प्रकार का कीट का अवशेष भाग मिलता है।

व्यत्यस्तच्छेद : इसमें मुख्यतया दो भाग मिलते हैं।

बाह्य भाग : फल के बाहर का आवरण पतला धूसर वर्ण का होता है, जो फल के चारो ओर रहता है।

आभ्यंतर भाग : यह धूसर वर्ण का दो मिलीमीटर मोटा त्वचा की तरह का वस्तु होता है।

केन्द्रीय भाग : इसके भीतर का भाग रिक्त होता है। कीट का अवशिष्ट भाग इसमें मिलता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण रक्त व धूसर वर्ण का होता है।

कण्डे । भंगे व चूर्ण का वर्ण धूसर।

क्वाथ : रक्त धूसर।

तेल : पीत धूसर। घृत : धूसर।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत्।

रस परीक्षा : रस में कषाय।

गंध परीक्षा : मृदु सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष, लघु।

वर्ग : प्रायशः कषाय होने से यह वायव्य द्रव्य है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

काली मिर्च का विवरण (Piper Niger)

नाम : मरिच, मिर्च। काली मिर्च।

गण : चरक शूल प्रशमन, दीपनीय, कृमिघ्न, शिरोविरेचन।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि, त्र्यूषणादि।

वर्ग : पिप्पली कुल। पाईपरेसी। (Piparaceae)

आकृति विवरण : काली मिर्च एक प्रकार की लता से प्राप्त होने वाला एक फल है जो कि आकृति में वृत्ताकार, श्याम वर्ण का होता है। ताजा फल हरे वर्ण का तथा शुष्क हो जाने पर यह काला होता है। जब यह पुष्ट होकर हरा ही रहता है तब ही इस को तोड़ कर सुखा देते हैं। आर्दावस्था में यह पूर्ण वृत्त होता है। सूख जाने पर इसके ऊपर जालीदार झुर्रियां पड़ जाती हैं। वृंत की जगह पर इसके चार उभार होते हैं। ऊपर के भाग पर स्त्रीपुष्पावशिष्ट भाग रहता है। इसका व्यास तीन मिलीमीटर होता है। परिधि पाँच मिलीमीटर होती है। वृन्त की जगह पर एक चिह्न होता है। ऊपर एक उभार सा उठा होता है। कच्चे फल सुखाने पर अधिक तीक्ष्ण होते हैं। पक्व फल का वर्ण भूरा होता है। बाजार में इसे रंग करके काला बना लेते हैं। छोटे फल अधिक कटु और तीक्ष्ण होते हैं। आर्द्र मरिच में का ऊपर का भाग सरलता से हटा कर अलग कर सकते हैं। ऊपर की त्वचा के हट जाने के बाद इसमें का भाग श्वेत वर्ण का दिखाई देता है। जो स्पर्श में कठिन होता है।

छेदन : व्यत्यस्तच्छेद लेने पर इसमें निम्न लिखित भाग दिखाई पड़ते हैं।

१ : ऊथर का फलावरण या पेरीकार्प।

२ : उसके नीचे त्वचाका दूसरा स्तर दिखाई देता है। जो शिराजालपूर्ण होता है।

३ : त्वचा के बाद नीचे अष्ठिका भाग मिलता है। इसे टेस्टा कहते हैं।

४ : अष्ठि के भीतर मज्जा का भाग होता है, जो अष्ठि के पार्श्व में गहरे वर्ण का और बाद में यह नीचे जाकर पीले वर्ण का दिखाई पड़ता है।

५ : इसका केन्द्रिय भाग रिक्त होता है।

अनुलम्ब च्छेदन :

१ : अनुलम्ब काट में इसमें पहले त्वगीय भाग का अंश मिलता है।

२ : नीचे त्वगीय भाग का दूसरा भाग मिलता है।

नीचे अष्ठि का भाग होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४ : अष्ठि के नीचे जो गहरा भाग होता है उसे बाहरी भाग या आउटर पेरीस्पर्म कहते हैं।

इसके नीचे का भाग जो पीले रंग का होता है वह आभ्यंतर मज्जा या इनर पेरी स्पर्श होता है।

इसके बाद रिक्त भाग होता है।

५ : स्त्री पुष्पावशिष्ट भाग की तरफ अष्ठि के नीचे के भाग पर भ्रूण का भाग होता है। भ्रूण के इतस्तत : गर्भ भोज्य का छोटा सा अंश होता है।

वर्ण परिज्ञान : प्राकृतिक वर्ण भूरा होता है। कच्चे काट कर सुखाने पर वह काला हो जाता है।

कषे कृष्ण धूसर : भंगे श्वेत।

चूर्ण धूसर। क्वाथ रक्ताभ पीत।

तैल पीत। घृत पीत।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत् विलेय है।

रस परीक्षा : स्वाद में कटु।

गंध : तीक्ष्ण। सुगंध धूपन में उग्र।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, रूक्ष, खर, लघु।

वर्ग : प्रायशः कटु होने से आग्नेय है।

त्वक् परीक्षा विज्ञान :

द्रव्य परीक्षा करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बाजार में मिलने वाली छालों में हमेशा मूल की छाल, शाखा की छाल और कांड की भी छाल परीक्षार्थ मिलती है। अतः परीक्षक को हमेशा ही त्वगीय सब अवयव मिलेंगे यह संभव नहीं है। यथा:

उपत्वक् : ऊपर का छाल।

प्रधान त्वक् : जिसमें कई भाग मिश्रित रहता है। यथा :

कार्क : (Cork)

फेलोजेन : (Phelogen)

फेलोडर्म : (Pheloderm)

कोरटेक्स : (Cortax)

फ्लोयम : (Phloem)

अतः जब भी कोई छाल परीक्षार्थ आ जाय तो यह ध्यान पूर्वक देखना चाहिए कि कौन कौन भाग इसमें मौजूद हैं : अतः निम्न बातें परीक्षा के पश्चात् लिखना चाहिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ : आकृति : इसमें आकार-प्रकार, लम्बाई, चौड़ाई मोटाई, उस नमूने का लिखना चाहिए जो नमूना सामने दिया गया हो।

२ : आकृति में यह किस प्रकार के आकार का यथा : वोरी बंडल या चिपटे टुकड़ों से मिला यह भी नोट करना चाहिए, जो बाजारों में मिलता है।

३ : पृष्ठ : त्वचा के दोनों पृष्ठों का विवरण देना चाहिए। जिसमें त्वचा का बाहरी शुष्क भाग उपस्थित है अथवा नहीं। जो है उसका क्या स्वरूप है।

४ : वर्ण : बाहरी और भीतरी दोनों तरफ के त्वचा का वर्ण लिखना चाहिए।

भंगे : तोड़ने पर इसकी टूट किस प्रकार की होती है। टूटे हुवे भाग पर का सतह का स्वरूप कैसा है। चिकना, धारदार, अथवा यह विषम है। या शृंग की तरह कड़ा है।

रस : इसका रस क्या है।

गंध : वस्तु का गंध क्या है।

विचित्रता : इसमें क्या विचित्रता है।

गण : इसका गण क्या है।

रायायनिक संगठन : संगठन में प्राप्त होनेवालीवस्तु : कोई द्रव्य रासायनिक परीक्षण में मिलते हों उनका भी नाम व प्रकार तथा विधि परीक्षा की देनी चाहिए।

त्वक् को तैयार करने की विधि

१ : प्राय : प्रत्येक द्रव्य को १२ से १८ घण्टे जल में भिगोकर तब उसका च्छेद लेकर के परीक्षा करना चाहिए।

२ : कठिन छालों में २४ से ३६ घंटे तक पानी में भिगोना पड़ता है। अधिक सूत्र वाली छालों को देर तक भिगोने पर ही अच्छा छेदन करने की सुविधा मिलती है।

३ : आवश्यकतानुसार रंजक द्रव्यों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

४ : चौड़ाई और लम्बाई दोनों प्रकार के च्छेदन करके तब विवरण ठीक दिखाई पड़ता है।

५ : कोई विशेषता हो उसे भी नोट कर के रखना चाहिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अशोक त्वक्परीक्षा

ज्ञातव्य : अशोक की शुष्क त्वचा को लीजिए उसके वाह्य व आभ्यंतर भागों की रचना व स्थिति का अध्ययन करिए और आकार को नोट करिए। ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई त्वक् खंडों का निरीक्षण करिए।

२ : इसके ऊपरी स्तर का फटा व रूक्ष कृष्ण श्वेत भाग की बनावट देख कर उसे चित्रित करिए।

३ : ऊपर के स्तर को खुरच कर या तोड़कर उसकी भीतरी स्थिति का अवलोकन करिए।

आकृति : आकृति परिज्ञान के बाद उसके रसका ज्ञान जिह्वा पर रख करके प्राप्त करिए।

वर्ण व गंध : इसके चूर्ण का वर्ण इसके क्वाथ का वर्ण नोट करिए। गंध परिज्ञान के लिए चूर्णका अंश लेकर पानी के साथ मिलाकर सूंघिए। गंध को नोट करिए।

शब्द व स्पर्श : स्पर्श करके इसके गुणों को नोट करिए।

इस प्रकार इसके पंचेन्द्रिय विवरण को नोट करके इसका विवरण तैयार करिए।

अशोक की त्वचा : बार्कआफ सरेका इन्डिका
(Bark of Sareka Indica)

नाम : अशोक त्वक्।

वर्ग : शिम्बी कुल : सीजल पिनिएसी।

आकृति विज्ञान : अशोक की त्वचा पतली नलिकाकार होती है। इसका बाह्य भाग हल्की हरितआभायुक्त धूसर वर्ण का होता है। ऊपरी भाग पर अनेक गर्त व उत्सेध पाये जाते हैं। आभ्यंतरीय त्वक्भाग ऊपर की अपेक्षा समतल व चिकना होता है। इसका वर्ण रक्त वर्ण का होता है।

छेदन : अनुलम्ब छेद लेने पर इसमें तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं। वाह्य मध्यस्थ व आभ्यंतर।

१ : बाहरी भाग श्याम धूसर वर्ण का होता है।

२ : मध्यस्थ भाग सौत्रिक तंतुओं से बना हुआ दृढ़स्तर होता है।

३ : आभ्यंतर स्तर में अनुलम्ब में स्थित सूत्र दिखाई पड़ते हैं।

अनुलम्ब छेद : इसमें भी वही तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिमाण : त्वक् खंड को माप करके उसकी लम्बाई, चौड़ाई व उँचाई का विवरण दीजिए।

वर्णपरिज्ञान : प्राकृत वर्ण रक्ताभ धूसर। कषे व भंगे, रक्ताभ धूसर, चूर्ण, रक्त श्याम, क्वाथ, रक्त वर्ण। तैल व धृत, पीताभ रक्त, ज्वाला रक्त।

रसपरीक्षा : प्रायशः कषाय, अनुरस ईषत्तिक्त।

गंध : मृदु सुगंध, आर्द्र दुर्गन्ध युक्त।

स्पर्श : कठिन, रुक्ष, व लघु।

शव्द : अभंगुर भग्न करने पर कट कट शब्द।

गण : प्रायशः कषायत्वात् ईषत् तिक्तत्वात् वायव्यः।

अर्जुन त्वक् सम्बन्धी आवश्यक विवरण

विधि :

१ : अर्जुनत्वक् का एक खण्ड लीजिये, उसके वाह्य स्तर का अवलोकन करिये, एकाधिक छाल को उठाकर देखिये। और अपना विचार बनाइये।

ऊपर श्वेत वर्ण का चटखे हुए स्थान पर काले व भूरे रंग को नोट करिये।

२ : ऊपर के स्तर को हटा कर नीचे का भाग अवलोकन करिये।

३ : नीचे की रचना विशेष को देखकर चित्र बना कर उसे नोट करिये।

४ : त्वक् खण्ड की लम्बाई चौड़ाई नोट करिये। इसे तोड़कर भंग की स्थिति का स्वरूप नोट कर लिखिए।

५ : इसके चूर्ण का स्वाद लीजिए। प्रधान रस और अनुरस को नोट करिये।

६ : जल में भिगे भाग को काट कर उसके च्छेद का रूपांकन करिये। चौड़ाई में कटे हुए भाग का रूप अवलोकन करिये। और उसके स्तरों को नोट करिये।

७ : त्वक् चूर्ण को एक टेस्ट ट्यूब में लेकर सुरा प्रदीप पर क्वथित करिये। फिर ब्लाटिंग पेपर से इसे छान कर वर्ण नोट करिये। इसी प्रकार तैल, घृत व सुरा में भी डालकर इसका वर्ण लिखिये।

८ : ज्वाला पर जलाकर उसका वर्ण नोट करिये।

९ : चूर्ण को पानी में मिला कर उसका गंध देखिये और नोट करिये।

१० : अग्नि में डालकर उसका गंध लीजिये।

११ : त्वचा को लेकर उसका स्पर्श करिये और वह मृदु है अथवा कठिन है. रूक्ष, खर, सान्द्रगुरु, लघु या कैसा है यह नोट करिये और लिखिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१२ : शब्द ज्ञानार्थ द्रव्य गत कोई शब्द हो उसे नोट करिये। न होने पर उसे प्रदीप पर जलाइये कोई शब्द मिलता हो उसे नोट करिये।

इस प्रकार हर एक वस्तु की परीक्षा करके आप पूरी परीक्षा का सारा नोट करिये।

अर्जुन त्वक् की परीक्षा (Terminalia Arjuna)

नाम : अर्जुन त्वक्।

वर्ग : हरीतकी वर्ग कम्ब्रिटेसी (Comb-ritaceae)

चरक : कषाय स्कन्ध, उदर्द प्रशमन।

सुश्रुत : न्यग्रोधादि गण, सालसारादि गण।

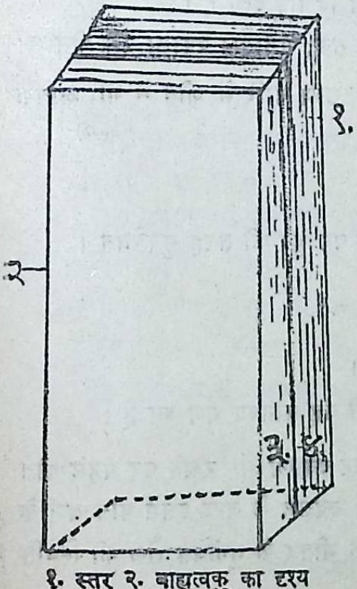

१. स्तर २. बाह्यत्वक् का दृश्य
३. प्रथम स्तर भेद
४. द्वितीय स्तर क्रम किरणवत् रचना

चित्र १५१

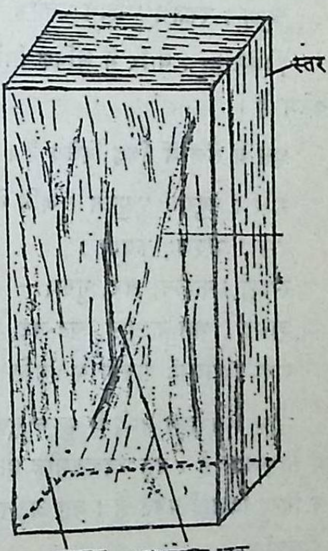

चित्र १५२

आकृति विज्ञान : अर्जुन की त्वचा का वर्ण ऊपर से श्याव व रक्त वर्ण की होती है। इसके हटा देने पर श्वेत वर्ण की त्वचा मिलती है। और यही स्थायी रहती है। सबसे ऊपर की त्वचा अपने आप अलग हो जाती है। नीचे

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

की हल्के रक्त वर्ण की ऋजुरेखा द्वारा स्तरबद्ध होती है। आर्द्र करके देखने पर पूरी त्वचा दो भागों में विभक्त दिखाई पड़ती है। ऊर्ध्वस्तर किंचित् घन रक्त वर्ण की और निम्न स्तर किंचित् अल्प रक्त वर्ण का होता है। इसमें कई स्तर दिखलाई पड़ते हैं।

छेदन परीक्षा : ताल यन्त्र द्वारा देखने पर लम्बाई की दिशा में सौत्रिक संगठन होने से कई स्तर दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी संख्या १६ से १७ तक मोटी त्वचा में दिखाई पड़ते हैं।

इसके स्तर श्वेत व भूरे रंग के दिखाई पड़ते हैं। श्वेत स्तर में सौत्रिक अंश अधिक और भूरे स्तर में लालिमा लिए हुए द्रव्य अधिक पाये जाते हैं।

वर्ण : मूल वर्ण, लालिमा लिए हुए भूरा दिखाई देता है।

चूर्ण : रक्ताभ···क्वाथ रक्ताभ···घृत व तैल, गुलाबी : ज्वाला रक्त पीताभ:

विलेयता : वारि में अधिक विलेय है। उष्ण वारि में शीत से भी अधिक विलेय है।

घृत व तैल में ईषद् विलेय है।

गंध : मृदुगंध···सुगंध···अग्नि में डालने पर धूप की तरह सुगन्धित।

रस : प्रायशः, कषाय।

स्पर्श : कठिन, खर, गुरु।

शब्द : भग्न कालीन, चट-चट, अभंगुर।

गण : प्रायशः कषाय व ईषत्तिक्त होने से यह वायव्य गण का है।

नोट : परीक्षा नली में शुष्क चूर्ण डालकर ज्वाला में रखने पर पहले पीत धूम निकलता है। यह ज्वलनशील होता है। ज्वलन के बाद इसमें पीत वर्ण के तैल बिन्दु दिखाई पड़ते हैं। यह अर्जुन त्वक् के भीतर के सुगंधित तैल की स्थिति के निदर्शक हैं।

लोध्र त्वक् का विवरण (Symplocose Racemosa)

नाम : पठानी लोध।

वर्ग : लोध्रादि : सिम्लोकेसी : (Symplocaceae)

चरक : शोणितास्थापने, संधानीय, पुरीष संग्रहणीय, कषायस्कन्ध।

सुश्रुत : लोध्रादि, न्यग्रोधादि।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आकृति विज्ञान : लोध्र का त्वक् चपटा व कुछ मोटा होता है। इसका बाह्य भाग ऊपर से धूसर वर्ण का होता है। यह श्लक्ष्ण भी होता है। आभ्यन्तर भाग खुरदरा होता है। इन पर रेखायें ऊपर से नीचे तक जाती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। बाहरी त्वचा सरलता से अलग हो जा सकती है। बाह्य स्तर को पृथक करने पर नीचे मृदु स्तर वाली रचना मिलती है। मध्य व आभ्यन्तर स्तर की रचनायें भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ती हैं। मध्य स्तर में रेखायें नहीं हैं और यह दृढ़ संहत रचना का है।

छेदन :
वर्ण : प्राकृत वर्ण : कपिश धूसर।
कषे : अरुण पांडुर।
भंगे : बाह्य रक्त वर्ण आभ्यन्तर वर्ण श्वेत।
क्वाथे : रक्त पीत।
चूर्ण : अरुण वर्ण।
वियलेता : वारि : तैल, घृत की अपेक्षा अधिक घुलनशील।
ज्वाला : आरक्त पीत।
रस : प्रधान रस कषाय। अनुरस : तिक्त।
गंध : मृदु।
स्पर्श परीक्षा : लघु, मृदु, रूक्ष।
शब्द परीक्षा : भंगुर।
गण विनिश्चय : कषाय रसप्रधान होने से वायव्य गुण प्रधान है।

पाटला त्वक् : स्टेरियो स्परमम् :
(Sterio Spermum)

नाम : पाटला। (Suaveolens)
वर्ग : श्योनाकादि वर्ग (Bignoneaceace)
चरक : शोथहर।
सुश्रुत : बृहत् पंचमूल, अधो भागहर, आरग्वधादि।

आकृति विज्ञान : पाटला का त्वक् छोटे-छोटे टुकड़ों में चपटे रूप में मिलता है। यह चारों तरफ से उन्नतोदर होता है। मध्य का भाग कुछ नतोदर होता है। बाहरी ऊपरी पृष्ठ रूक्ष, खुरदरा तथा अनेक धारियों से युक्त होता है। कहीं-कहीं ऊपरी स्तर हटाने पर नीचे का भाग स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस त्वक्

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

के अनियमित किनारे हैं। कोई किनारा मोटा कोई पतला-सा दिखाई देता है।

अधःपृष्ठ : यह पृष्ठ काष्ठमय है। तथा इस पृष्ठ भाग का वर्ण ऊपरी पृष्ठ से कृष्ण वर्ण का है।

सच्छेदन परीक्षा : अनुप्रस्थ च्छेदन करने पर तीन प्रधान भाग दिखाई पड़ते हैं।

बाह्य त्वक् : यह धूसर वर्ण की पतली रचना है और ऊपरी भाग पर व्याप्त है।

आभ्यंतर त्वक : यह भाग अधिक मीठा है। तथा कुछ कृष्ण वर्ण का है। यह ७ या ८ स्तरों में विभक्त है। यह स्तरें दो भागों से बनी हुई हैं। यथा :

सौत्रिक तंतुमय भाग व असौत्रिक तुंतुमय भाग। पहली किंचित पारदर्शक और पीताभ है इस प्रकार ८ व ९ स्तरें हैं।

मध्य भाग : यह काप्ठमय है। और तन्तुओं से युक्त है। यह भाग अधिक मोटा नहीं है।

अनुलम्बच्छेद : इसमें भी ऊपर वाले तीन ही स्तर हैं।

परिमाण :

वर्ण : प्राकृत धूसर।

कषे : धूसर।

भंगे : धूसर।

चूर्ण : धूसर।

क्वाथ : ईषद्रक्त।

तैल व घृत : ईषद्रक्त पीत।

ज्वाला : रक्त पीत।

विलेयता : वारि, तैल, घृत, ईषत् घुलनशील।

रस : प्रधान रस तिक्त।

अनुरस : मधुर, कषाय।

गंध : मृदुगंधी।

धूपन : उग्र।

स्पर्श : कठिन, खर रुक्ष लघु।

शब्द : भग्नकालीन, चट् भंगुर।

गण विनिश्चय : तिक्त प्रधान रसत्वात् तथा ईषत् कषायानुरसत्वात तैजसम्।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

श्योनाक त्वक् : ओरोक्साइलम् इंडिकम्
(Oroxylum Indicum)

नाम : श्योनाक, अरलु, शोणपुष्प ।

वर्ग : श्योनाकादि, विगनोनिएसी (Bignoniaceae)

चरक : शोथहर, पुरीष संग्रहणीय, शीत प्रशमन, अनुबासनोपग, कषायस्कंध ।

सुश्रुत : बृहत पंचमूल, अम्बष्ठकादि ।

आकृति विज्ञान : श्योनाक का त्वक् अनियमित छोटे-बड़े टुकड़ों में बाजार में मिलता है कुछ त्वक् मोटी भी मिलती हैं जब कि कुछ पतली भी मिलती हैं । इनका ऊपरी भाग रूक्ष अनियमित उठे हुए उभारों से युक्त होता है । ऊपर की त्वचा का वर्ण कृष्णाभ पीत-सा है । इस पर कई अनियमित दरारें बनी होती हैं । किनारा विषम चपटा टूटा हुआ होने के कारण पतला दिखाई देता है ।

अधस्त्वक् ऊपरी विभाग की अपेक्षा कठिन तथा श्लक्ष्ण होता है । कहीं-कहीं यह काष्ठांश से युक्त होता है । इसमें सूत्र लम्बाई की दिशा में पाये जाते हैं ।

छेदन : अनुप्रस्थ रूप में काटकर देखने में तीन प्रधान भाग दिखाई पड़ते हैं ।

१ : बाह्य त्वक् : यह भाग काफी मोटा होता है । तथा कुछ लालिमा लिए हुए होता है । इसकी रचना दानेदार प्रतीत होती है । बहुत ध्यान से देखने पर पतली धारियां भी दिखाई पड़ती हैं । यह भाग दो अन्य स्तरों से मोटा होता है ।

मध्य स्तर : यह भाग पतला या तन्तुप्रधान होता है । तोड़ने पर सरलता से नहीं टूटता ।

अन्तः स्तर : यह पतला तन्तुमय दृढ़ होता है ।

अनुलम्ब च्छेद : इसमें भी वही स्तर दिखाई पड़ते हैं ।

भार : आयाम व विस्तार······।

वर्ण : प्राकृत : पीताभ धूसर ।

कषे भंगे व चूर्णे : पीताभ धूसर ।

क्वाथ : रक्त, तैल व घृते पीताभ ।

ज्वाला : रक्ताभ पीत ।

विलेयता : वारि तैल व घृते ईषत् ।

गंध : शुष्क, मृदु, दुर्गंध, अवसादक ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

धूपन : अहृद्य ।

स्पर्श : कठिन, खर, रुक्ष, लघु ।

शब्द : भग्नकालीन चट, अभंगुर ।

रस : पायशः तिक्त, अनुरस कषाय ।

गुण : प्रायशः तिक्त व कषाय होने से यह आग्नेय है ।

नोट :—इसको प्रयोग में देने से पूर्व इसको १= घंटे पानी में भिगो रखना चाहिये ।

२ : छेद लेने के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है ।

३ : गंध लेने के लिए पहले इसके चूर्ण को थोड़ी पानी में मिला कर के तब उसका गंध लेना चाहिए ।

बकुल त्वक् : माइमोसा एलेंगी
(Mimosops elengi)

नाम : बकुल ।

वर्ग : मधूकादि (Sapotaceae)

चरक : कषाय स्कंध ।

सुश्रुत : कषाय रस वर्ग ।

आकृति विज्ञान : बकुल त्वक् का ऊपरी भाग कठिन, कर्कश, रुक्ष और फटा हुआ होता है । इसके ऊपर कटे हुए छोटे-छोटे टुकड़े दिखाई पड़ते हैं । इनकी ऊँचाई, निचाई, मोटाई सब अनियमित होती है । इन फटे टुकड़ों में कई स्तरें दिखाई पड़ती हैं । फटे जगह पर गहरी-गहरी सीतायें पड़ी हुई हैं । आभ्यंतर भाग में तन्तुसंयोग लम्बाई में हैं ।

बाह्य त्वक् : यह विषम भाव से निर्मित तथा स्थूल है । फटे हुए स्तर में कई स्तरें दिखाई देती हैं । इसे हटा दें तो निम्न भाग चिकना मिलता है । यह आभ्यंतर स्तर से सरलता से अलग हो जाते हैं ।

आभ्यंतर स्तर : यह अपेक्षाकृत कठिन और तन्तु संयोग से बना हुआ है । इनकी स्थिति वक्राकार होती है । इसमें कई स्तरें होती हैं । इसका ऊपरी भाग सम हुआ करता है ।

परिमाण :

वर्ण : कृष्ण व लाल । कषे कषाय वर्ण-भंगे ईषत् रक्तवर्ण ।

चूर्ण : धूसर लाल ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्वाथ : लाल तैल व घृत ईषत्, लाल।

ज्वाला : पीताभ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत् लाल।

रस : प्रायश: कषाय तिक्त अनुरस।

गंध : मृदु सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रुक्ष, लघु।

शब्द : ज्वलनकालीन, कुछ नहीं, अभंगुर।

गण : कषायप्राय होने से व अनुरस तिक्त होने से वायव्य है।

कांचनार त्वक्, बउहिनिया वैरिएगेटा
(Bauhinia Variegata)

नाम : कांचनार।

वर्ग : शिम्बिकुल। उपकुल, पूति करंजादि, (Leguminosae-Caesal Piniaceae)

चरक : वमनोपग।

सुश्रुत : ऊर्ध्वभागहर, कषायवर्ग।

आकृति विज्ञान : कांचनार की त्वचा नलिकाकार अर्धगोल और लम्बी होती है। इसका बाहरी भाग खुरदरा तथा किंचित् अनियमित दानेदार उभारों से युक्त होता है। इन उभारों का वर्ण रक्त और क्वचित काला दिखाई पड़ता है। उपरितन त्वचा का भाग ईषत् पीत श्वेत-सा दिखाई पड़ता है।

अध:पृष्ठ : नतोदर अर्धवृताकार वा पृष्ठ की अपेक्षा चिकना तथा रंग में श्वेत धूसराभ दिखाई पड़ता है। इसमें तंतु लम्बाई की दिशा में रहते हैं। उतारने पर सारा का सारा छिल्का एक स्तर में निकल आता है। अध:पृष्ठ में त्वगावरण हटा देने पर नीचे से रक्ताभ भाग दिखाई पड़ता है। इस आवरण में चार या पाँच स्तर एक ही में चिपके हुये रहते हैं।

किनारे : दोनों किनारों से देखने पर तन्तु दिखाई पड़ते हैं। यह दृढ़ और कई स्तरों में रहते हैं। इनके ऊपर मोटी-सी त्वचा का भाग दिखाई पड़ता है। इनमें तन्तु का भाग परिलक्षित नहीं होता।

यांत्रिक परीक्षा : अनुलम्ब च्छेद।

१ : बाह्य भाग कत्थई वर्ण का खुरदरा दिखाई पड़ता है।

२ : त्वचा के हटा देने पर नीचे काष्ठ का भाग दिखाई पड़ता है। इसमें

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रथम ऊपर का रंजित भाग रहता है। तत्पश्चात अल्प रंजित भाग होता है। इसमें अनुप्रस्थ आवर्त दिखाई पड़ते हैं।

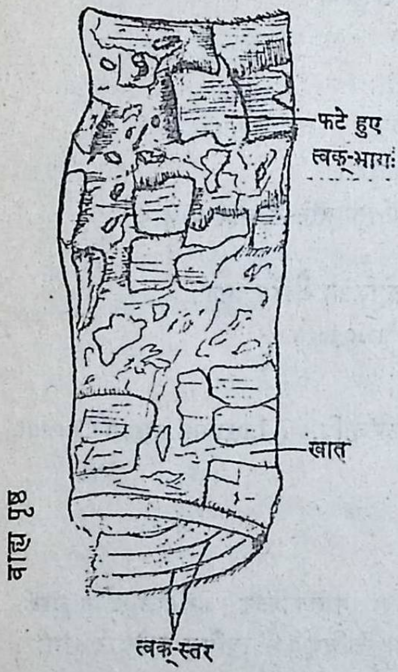

चित्र १५३

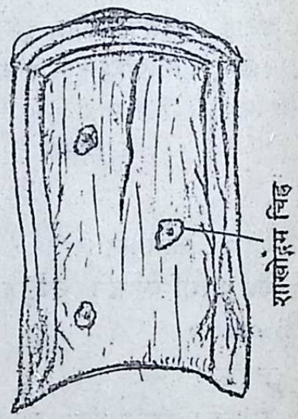

चित्र १५४

अनुलम्ब च्छेद : आर्द्र त्वक् में बाह्य भाग घना काला या कत्थई वर्ण का दिखाई पड़ता है। अन्तस्त्वक् कई भागों में विभक्त दिखाई देती है। इसमें पतली-पतली लम्बी धारियाँ होती हैं। यही धारियाँ स्तर का स्वरूप बनाती हैं। इनका गिनना सरल नहीं ज्ञात होता।

परिमाण :

वर्ण : प्राकृतिक, कत्थई वर्ण।

कषे, भंगे, चूर्णे : कत्थई वर्ण का।

क्वाथ : रक्त।

तैल व घृते : पीताभ रक्त।

ज्वालायाम् : रक्त पीत।

विलेयता : वारि में तैल व घृत की अपेक्षा अधिक घुलनशील है।

रस : प्रधान रस, कषाय, अनुरस, तिक्त।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गन्ध : शुष्क, मृदु सुगंधित ।

धूपन : उग्र ।

स्पर्श : कठिन खर, रुक्ष, लघु ।

शब्द : भग्नकालीन, चट, अभंगुर ।

गण : प्रायशः कषाय व ईषत् तिक्त होने से यह वायव्य वर्ग का है ।

कुटज त्वक् : होलोरिना एंटि डाइसेंट्रिका

नाम : कुटज त्वक् ।

वर्ग : चरक-वमन-अर्शोघ्न ।

सु० : हरिद्रादि-बृहत्यादि-कुल-कुटजादि ।

नाम : कुटज की छाल का त्वक् पतला नलिकाकार, चौकोर या लम्बा होता है । बाहर का भाग उन्नतोदर और भीतर का भाग नतोदर होता है । इसका बाहरी स्तर हरित पीत श्वेत वर्ण का होता है । इस पर छोटे-छोटे दानेदार उभार होते हैं । जिसके कारण यह रुक्ष प्रतीत होता है । कहीं-कहीं पर यह फटी हुई भी होती है । इसमें चौड़ाई पर धारियां भी हैं । अन्दर का भाग रक्ताभ होता है । यह सूत्रों से निर्मित होता है ।

छेदन : व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमें तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं ।

बाह्य स्तर : यह हरित पीत श्वेत वर्ण का होता है । इसकी मोटाई लगभग ·०५ इंच चौड़ा होता है । यह दानेदार और रूक्ष होता है ।

मध्य स्तर : यह रक्ताभ होता है । इसकी मोटाई लगभग ·१५ इञ्च होती है । इसमें सूत्र कम पाये जाते हैं ।

अन्तः स्तर : यह लम्बे-लम्बे सूत्रों से बना है, जो श्वेताभ होते हैं । यह लगभग ·१ इञ्च मोटा है ।

परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : बाह्य श्वेत हरित पीत मिश्रित । आभ्यंतर रक्ताभ ।

कषे, भंगे, चूर्णे : रक्ताभ ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत् घुलनशील ।

रस परीक्षा : प्रायशः तिक्त ।

गंध परीक्षा : मृदु सुगंध ।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष, लघु ।

शब्द परीक्षा : अभंगुर ।

गण विनिश्चय : तिक्त रस प्रधान होने से यह आग्नेय वर्ग का है ।

रोहितक त्वक् की परीक्षा : टेकोमेला अनडुलाटा

नाम : रोहितक का कांड त्वक ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्ग : श्योनाक कुल। विगनोनिएसी।

आकृति विज्ञान : रोहितक का कांड त्वक् ऊपर से फटा हुआ होता है। इस पर कृष्ण वर्ण के छोटे-छोटे धब्बे होते हैं जो कि दानेदार उभार की तरह दिखाई पड़ते हैं। यह बाहर की तरफ उन्नतोदर और भीतर की तरफ नतोदर होता है। बाह्य स्तर विषम वर्ण का कहीं पर कृष्ण, कहीं पर श्वेत वर्ण के मिश्रण से बना होता है। आभ्यंतर वर्ण रक्ताभ होता है। आभ्यंतर रचना के दर्शनार्थ छेद लेनेपर इसमें तीन स्तर दिखाई देते हैं।

प्रथम स्तर : यह स्फुटित तथा विषम वर्ण का होता है यह लगभग १ इञ्च मोटा होता है।

द्वितीय स्तर : यह ·२ इञ्च चौड़ा तथा गोलाई में बहुत से स्तरों से बना होता है। प्रत्येक स्तर में सूत्रों की रचना पाई जाती है। जिसमें कुछ एक दूसरे को क्रास करती हुई भी पाई जाती है। इसका वर्ण रक्तताभ होता है।

तृतीय स्तर : इसका अन्तः स्तर रक्ताभ होता है। इसमें सूत्र सीधे तथा लम्बे होते है। इस पर शाखा निकलने का कोई चिह्न नहीं होता।

परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : बाह्य वर्ण विवर्ण, कृष्ण श्वेत मिश्रित। आभ्यंतर का वर्ण रक्ताभ।

कषे, भंगे व चूर्णे : रक्ताभ।

क्वाथ : रक्त वर्ण।

घृत व तैल में : किंचित रक्ताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि में तैल व घृत की अपेक्षा अधिक घुलनशील है।

रस परीक्षा : प्रायशः तिक्त, अनुरस कषाय।

गंध परीक्षा : मृदु सुगन्धित।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष और लघु होता है।

शब्द परीक्षा : अभंगुर ज्वलनकालीन कोई शब्द नहीं होता।

गण विनिश्चय : प्रायशः तिक्त और ईषत् कषाय होने से यह आग्नेय वर्ग का है।

कटफल त्वक् की परीक्षा : माइरिका नागी

नाम : कटफल त्वक्।

वर्ग : कटफलादि वर्ग।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चरक : संधानीय-शुक्रशोधने-वेदनास्थापन ।

सुश्रुत : लोध्रादि-सुरसादि ।

आकृति विज्ञान : कटफल का त्वक् मोटा, चपटा, सारमय होता है । बाहर की तरफ उन्नतोदर तथा भीतर की तरफ यह नतोदर होता है । बाह्य स्तर विषम आकृति का तथा फटा हुआ होता है । यह उपर से खुरदरा होता है । बाह्य स्तर का वर्ण श्वेत, हरित पीत आदि वर्ण का मिश्रित होता है । नीचे का स्तर घन रक्ताभ मोटा है । सबसे नीचे का स्तर कृष्णाभ तथा सूत्रमय रचना का है ।

छेदन : व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमें तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं ।

१ : बाह्य स्तर : विषम वर्ण का खुरदरचा और फटा हुआ होता है । इसकी मोटाई ·१ इञ्च की होती है ।

२ : मध्य स्तर : यह रक्ताभ मोटाई में आधा इञ्च तक होता है । यह सारमय तथा दृढ़ होता है ।

३ : अन्तः स्तर : यह लगभग ·०५ इञ्च मोटा होता है तथा कृष्णाभ है । इसमें सूत्र अधिक है । इसका संगठन लम्बाई में है ।

परिमाण : त्वक् खंड का भार १२० ग्रेन, आयाम डेढ़ इञ्च, विस्तार १ इञ्च उत्सेध ·४ इञ्च है ।

वर्ण : बाह्य स्तर विषम वर्ण श्वेत हरित, पीत, मिश्रित ।

कषे : रक्त ।

भंगे : रक्ताभ ।

चूर्ण : रक्ताभ ।

क्वाथ : रक्त वर्ण ।

तैल व घृत : ईषत् रक्ताभ ।

ज्वाला : रक्ताभ ।

विलेयता : वारि तैल व घृत में ईषत् विलेय ।

रस परीक्षा : प्रायशः कषाय ईषत् कटु ।

गंध परीक्षा : उग्र, ग्लानिकर ।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष व लघु ।

शब्द परीक्षा : अभंगुर ।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय होने से यह वायव्य वर्ग का है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बबूल त्वक् की परीक्षा : अकेशिया अरेबिका

नाम : बबूल की छाल ।

वर्ग : बबूलादि वर्ग ।

प्राकृतिक विज्ञान : बबूल का त्वक् अर्द्ध वृत्ताकार नलिकाकृति होता है। बाह्य स्तर खुरदरा फटा हुआ तथा वर्ण में कृष्णाभ होता है। इसके नीचे का स्तर रक्ताभ होता है। त्वक् लम्बे चपटे हैं, उन पर शाखाओं के निकलने के चिह्न वर्तमान हैं। नीचे का स्तर पीताभ और सौत्रिक तन्तुओं का बना हुआ है।

छेदन : छेदन करने पर तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं यथा :

१ : बाह्य स्तर : कृष्णाभ तथा फटा हुआ है। यह लगभग ·१ इञ्च चौड़ा है। यह खुरदरा तथा कठिन है।

२ : मध्य स्तर : लगलग ·१ इञ्च चौड़ा है तथा रक्ताभ है। कषाय रस इसी भाग में अधिक होता है।

३ : आभ्यंतर स्तर : सबसे नीचे का भाग रक्त पीताभ सौत्रिक तन्तुओं का बना हुआ होता है।

परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : बाह्य कृष्णाभ : आभ्यंतर रक्ताभ।

कषे भंगे : रक्ताभ।

चूर्ण : रक्ताभ।

क्वाथ : रक्ताभ।

तेल घृत : पीताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि में ईषत् विलेय है।

रस परीक्षा : कषाय रस।

गंध : मृदु सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष, लघु।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय रस होने से यह वायव्य गण का है।

वरुण त्वक् की परीक्षा : क्रैटिवा रेलिजिओसा

नाम : वरुण त्वक्।

वर्ग : वरुण कुल।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चरक : अश्मरीहर बीज।

सुश्रुत : वरुणादि, वाताश्मरी नाशन, कफा श्मरी नाशन।

आकृति विज्ञान : वरुण का त्वक् शुष्क, कठिन, सारमय व रूक्ष होता है। उसका ऊपरी भाग उन्नतोदर व भीतरी भाग नतोदर होता है। ऊपरी वर्ण हरित पीत तथा श्वेत मिश्रित होता है। स्तर पर बहुत से विषम उत्सेध हैं।

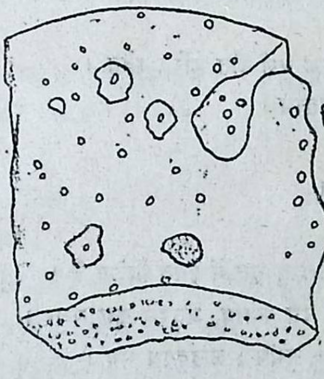

चित्र १५५

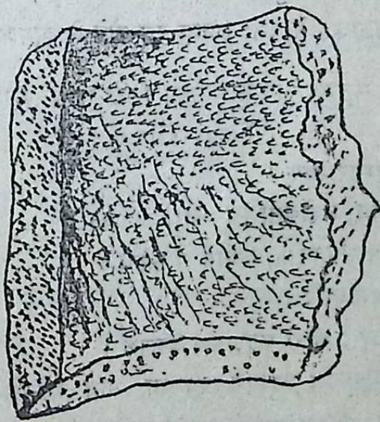

चित्र १५६

पूरे स्तर पर श्वेत चिह्न होते हैं। आभ्यंतर स्तर पीताभ श्वेत वर्ण का है। यह काष्ठमय व स्टार्च के दानों से भरा होता है। इसके कारण यह रूक्ष स्पर्श होत है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अनुच्छेद लेने पर उसमें तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं।

१ : बाह्य स्तर : अति तनुवर्ण में हरित पीत श्वेत वर्ण का है। इस पर छोटे-छोटे श्वेत दाने हैं।

२ : मध्य स्तर : यह लगभग ·२ इञ्च मोटा होता है। यह लम्वे-लम्वे सूत्रों से बना है। इसमें स्टार्च के दाने भरे होते हैं।

३ : अन्तः स्तर : यह सबसे नीचे का भाग है और पीताभ श्वेत होता है।

परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : बाह्य वर्ण पीत हरित श्वेत।

कषे भंगे चूर्णे : पीताभ।

क्वाथ : पीताभ।

तैल घृत : पीताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में ईषत् विलेय है।

रस परीक्षा : प्रधान रस कषाय, अनुरस कुछ मधुर।

गंध परीक्षा : मृदुगंध, सुगंध। आर्द्रंदुर्गंध मय।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष व लघु।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय रस होने से वायव्व है।

उदुम्बर त्वक परीक्षा : फाइकस ग्लेमुराटा
(Ficus Glamurata)

नाम : उदुम्बर त्वक्।

वर्ग : बटकुल, अर्टीकेसी। (Articaceae)

चरक : मूत्र संग्रहणीय, कषाय व स्कंध।

सुश्रुत : न्यग्रोधादि।

भाव प्रकाश : क्षीरी वृक्ष, पंच बल्कल।

आकृति विज्ञान : उदुम्बर त्वक् का भाग छोटे-छोटे चपटे टुकड़ों के रुप में मिलता है। ऊपर को यह उन्नतोदर होता है। बाहर का वर्ण श्वेताभ है। इसके ऊपरी पृष्ठ पर छोटे-छोटे दरार व उन्नत रेखाओं के होने से यह खर स्पर्श जान पड़ता है। ऊपरी त्वक् के हट जाने से नीचे रक्त वर्ण का दिखाई देता है। ऊपरी त्वक् बहुत पतला होता है। नीचे का भाग तन्तुओं से युक्त होता है। इसका वर्ण कुछ लाल कषाय वर्ण का है। उसके नीचे काष्ठ का भाग है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिच्छेद : व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमें तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं।

१ : बाह्य स्तर : बहुत पतला श्वेत धूसर वर्ण का है और सरलता से उतारा जा सकता है।

२ : मध्य स्तर : मध्य स्तर यह मोटी, हल्की कई धारियों से युक्त होने से कई स्तरों में विभक्त दिखाई पड़ता है।

अंतःस्तर : यह काष्ठमय भाग तन्तु निर्मित भाग है।

परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : प्राकृत वर्ण धूसर।

कषे भंगे चूर्णे : रक्ताभ।

क्वाथ : रक्त।

तैल व घृत : रक्ताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि, तैल घृत में ईषत् विलेय है।

रस परीक्षा : प्रायशः कषाय ईषत् मधुर।

गंध परीक्षा : मृदु गंध।

स्पर्श परीक्षा : स्पर्श में यह कठिन, खर, रुक्ष व लघु।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय रसत्वात यह वायव्य वर्ग का है।

बिल्व त्वक् : बार्क आफ ईगल मारमेलो
(Eagle Marmalo)

नाम : बिल्व, शांडिल्य. शैलूष।

वर्ग : जम्बीरादि। रुटेसी (Rutaceae)

चरक : शोथहर, अर्शोघ्न, आस्थापनोपग, अनुवासनोपग।

सुश्रुत : बृहद पंचमूल, वरुणादि, अम्बष्ठादि।

आकृति विज्ञान : बेल की छाल कठिन काष्ठमय तथा चपटी होती है। इसका बाह्य स्तर रूक्ष और स्फुटित होता है। यह वर्ण में पीताभ होता है। किन्तु कहीं-कहीं इस पर हरित व कृष्ण धब्बे रहते हैं। इसको तोड़ने पर चूर्ण-सा निकलता है। आभ्यंतर भाग सौत्रिक तन्तुओं से निर्मित होता है। व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमें तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं।

१ : बाह्य स्तर : यह श्वेत पीताभ होता है। कहीं-कहीं पर हरित कृष्ण

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

धब्बे रहते हैं। यह स्फुटित और स्पर्श में खर होता है। लगभग ·१ इञ्च मोटा होता है।

२ : मध्य स्तर : यह श्वेताभ कठिन होता है। लगभग ·२ इञ्च मोटा होता है। यह लम्बे-लम्बे सूत्रों से बना है। जिसके बीच दानेदार पदार्थ भरे रहते हैं।

३ : अन्तः स्तर : यह लम्बे-लम्बे सूत्रों से बना हुवा है। तथा इसमें पतले-पतले अनेक स्तर हैं। यह पीताभ श्वेत होता है।

परिमाण :

वर्ण परिज्ञान : बाह्यभाग श्वेत कृष्ण पीत वर्ण। आभ्यन्तर भाग श्वेत पीत।

भंगे, कषे : पीताभ।

चूर्ण : पीत।

क्वाथ : पीत।

तैल व घृत : पीताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि में अधिक, तेल व घृत में ईषत् विलेय ;

रस परीक्षा : प्रायशः कषाय ईषत् तिक्त।

गंध परीक्षा : मृदु गंध व सुगंधित।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, रूक्ष, खर व लघु।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायशः कषाय रस होने से वायव्य है।

अग्निमंथ परीक्षा : क्लेरोडेंड्रन फ्लोमिडिस
(Clerodendron phomidis)

नाम : अग्निमंथ गनियार।

वर्ग : निर्गुंडी कुल। बर्बिनेशी (Verbinaceae)

चरक : शोथहर, शीतप्रशमन, अनुवासनोपग।

सुश्रुत : बृहत पंचमूल, वातप्रशमन, वीर तर्वादि, बरुणादि।

आकृति विज्ञान : अरणी का त्वक् विषमाकृति का कठिन कांड त्वक् होता है। इसका बाह्य भाग उन्नतोदर और आभ्यंतर भाग नतोदर होता है। बाह्य भाग का वर्ण श्वेताभ होता है और कहीं-कहीं पर कृष्ण वर्ण के चिह्न होते हैं। यह रूक्ष और मृदु होता है। कहीं-कहीं पर फटा हुआ होता है।

व्यत्यस्त छेद : इसके छेद लेने पर तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ : बाह्य स्तर : यह पतला, मृदुस्फुटित तथा श्वेताभ होता है इसको नखों से तोड़ने पर सरलता से टूट जाता है।

२ : मध्य स्तर : यह श्वेताभ और लगभग ·१ इञ्च मोटा होता है।

३ : अन्तः स्तर : यह कृष्णाभ तथा ·१५ इञ्च मोटा होता है। इसमें लम्बे-लम्बे सूत्र अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। अनुलम्ब छेद में भी यही विवरण मिलता है।

द्रव्य परिमाण :
वर्ण परिज्ञान : बाह्य वर्ण श्वेताभ व आभ्यंतर कृष्ण रक्ताभ।
कपे : श्वेताभ।
भंगे चूर्णे : कृष्णाभ।
क्वाथ : ईषद्रक्त।
तैल व घृत : पीताभ।
ज्वाला : रक्ताभ।
विलेयेता : वारि, तेल व घृत में ईषत् घुलनशील।
रस परीक्षा : प्रायशः कषाय ईषत्तिक्त।
गंध परीक्षा : मृदु सुगंध।
स्पर्श परीक्षा : कठिन, रूक्ष, खर व लघु।
शब्द परीक्षा : अभंगुर।
गण परीक्षा : कषाय रस प्रधान होने से वायव्य है।

भारंगी त्वक् परीक्षा : क्लेरोडेंड्रन सेरेटम
(Clerodendron Saretum)

नाम : भारंगी त्वक्।
वर्ग : निर्गुंडी वर्ग। वर्बीनेसी।
सुश्रुत : पिप्पल्यादि वर्ग।

आकृति विज्ञान : यह कठिन, चपटा और विषमाकृति का होता है। बाह्य भाग उन्नतोदर, आभ्यंतर भाग नतोदर होता है। इसका ऊपरी वर्ण धूसर वर्ण का होता है। स्पर्श में यह रूक्ष होता है। आभ्यंतर भाग पीत श्वेत होता है। इसमें सौत्रिक भाग अधिक होते हैं।

व्यत्यस्त छेद करने पर इसमें तीन भाग दिखाई पड़ते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१ : बाह्य स्तर : यह धूसर वर्ण का तथा रूक्ष होता है। लगभग ·१५ इञ्च मोटा होता है। इसमें सूत्रों की रचना नहीं होती।

२ : मध्य स्तर : यह लगभग ·१ इञ्च मोटा है। इसमें सौत्रिक रचना कम होती है। यह श्वेताभ पीत है।

३ : अन्तःस्तर : यह सूत्रों का बना हुवा श्वेत वर्ण का स्तर है। यह करीब ·०१ इञ्च मोटा है। स्पर्श में रूक्ष है।

परिमाण : त्वक् खंड की लम्बाई डेढ़ इञ्च और मोटाई .३ इञ्च होती है।

वर्ण परिज्ञान : बाह्य स्तर धूसर आभ्यंतर श्वेताभ।

कषे, भंगे, चूर्णे : श्वेताभ।

क्वाथ : पीत।

तैल : पीताभ।

घृत : श्वेताभ।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि, तैल व घृत में अल्प विलेय।

रस परीक्षा : प्रधान रस मधुर अनुरस तिक्त और कषाय।

गंध परीक्षा : मृदुव सुगंध।

स्पर्श परीक्षा : कठिन, खर, रूक्ष व लघु।

शब्द परीक्षा : अभंगुर।

गण विनिश्चय : प्रायशः मधुर व ईषत् कषाय तिक्त होने से यह पार्थिव वर्ग का है।

दालचीनी : सिनेमोमिकोरटेक्स (Cinamomi)

नाम : गुडत्वक्, त्वक्, दारुसिता।

वर्ग : कर्पूर कुल लारेसी (Laraceae)

गण : चातुर्जात।

चरक : मुखशुद्धिकर गण।

इतिहास : दालचीनी भारतीय चिकित्सकों को अच्छी तरह ज्ञात था। चरक और सुश्रुत सबने इसका विवरण दिया है। यह भारतीय द्रव्य है। ईस्वीय सन् से कई हजार वर्ष पूर्व इसका ज्ञान था। कहा जाता है कि चीन वाले तज का ज्ञान तो रखते थे परन्तु उन्हे दालचीनी का ज्ञान न था। लंका पर पहले १५२६ ईस्वीय में पुर्तगीज और डच १६५६ में और ब्रिटिश १७९६ में अपना

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शाशन किये और तब से इसका ज्ञान पश्चिमी संसार को हुआ। १७७० में डचों ने अपनी तरफ से खेती करना प्रारम्भ किया। भारतीय दालचीनी का व्यापार पहले से ही डचों के हाथ में था। किन्तु बाद में इसका विकास हुआ।

परिचय : दालचीनी एक प्रकार के वृक्ष की छाल है और स्वाद में यह मधुर होती है। अतः इसका नाम दारुसिता रखा था। यह दालचीनी के वृक्ष की छाल है। इसे व्यापार में सिलोनी दालचीनी या जहाजी दालचीनी कहते हैं। दक्षिणी भारत व सिलोन में इसके वृक्ष चिरकाल से पाये जाते हैं। इसकी खेती दक्षिण भारत, लंका व जमैका, ब्राजील इत्यादि देशों में होती है। इसमें लंका की उत्तम होती है। ब्रिटिश त्वक् भी उत्तम मानी जाती है। और बाजार में अधिक पाई जाती है।

खेती व संग्रह :

दालचीनी की खेती सिलोन में होती है। इस निमित्त १६००० एकड़ भूमि पर इसके बाग लगाये गये हैं। दक्षिण भारत में इसकी खेती के लिये थोड़ी सी भूमि का प्रयोग होता है इसका स्थान वहाँ होता है जहाँ पर कम से कम ७५ से १२५ इञ्च जल बरसता हो। भूमि भी उर्वर चाहिये जो भारी न होकर लघु गुण की हो। इसके निमित्त भूमि में छिद्र करके ६ से १० फीट की दूरी पर बीज लगाये जाते हैं। दूसरे या तीसरे वर्ष में यह झाड़ी की तरह फैल जाते हैं। इसमें ५ से सात शाखायें होती हैं। सीधी शाखाओं को छोड़ करके बाकी को काट देते हैं। फिर कुछ मास छोड़ देते हैं तब यह मोटे और लम्बे हो जाते हैं और इसको काटने का समय आ जाता है। प्रायः भारी वर्षा के बाद इसको काट लेते हैं। शाखाओं को काट कर छाल तत्काल निकाल लेते हैं। अक्टूबर से दिसम्बर तक काटने का अच्छा काल माना जाता है। प्रति एकड़ ५० पौंड दालचीन सूखने पर मिलती है।

आकृति : दालचीनी चूंकि छाल होती है अतः इसका रूढि नाम त्वक् ही है। यह पतले और मोटे छालों के रूप में पृथक कर लिये जाते हैं। अच्छी दालचीनी की मोटाई ५ मिली मीटर होना चाहिये। इसका बाह्य भाग पीले भूरे रंग का होता है। यह चमकदार बीच-बीच में छिद्रदार और अन्य चिह्नों से युक्त होता है। भीतरी स्तर गहरे लाल रंग के होते हैं। सूखने पर यह सरलता से टूट जाती है। इसमें एक सुगंध भी आती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दालचीनी के भेद :

पश्चिमी द्वीप समूहों में भी इसकी खेती होती है। फ्रेंच गायना, ब्राजिल व अन्य स्थानों में भी खेती होती है। इनका संग्रह शाखाओं के अधिक रूढ़ हो जाने पर संग्रह करते हैं। अतः सिलोनी दालचीनी से हीन गुण के होते हैं। त्वचा मोटी, रूखी और हल्के पीले रंग की होती है।

जंगली दालचीनी : यह गहरे भूरे रङ्ग की होती है। तज की छाल से मिलती-जुलती होती है। ऐसे ही सैगोन की दालचीनी होती है। जावा में भी खेती होती है परन्तु सिलोन की सबसे उत्तम मानी गई है।

चित्र १५७—दालचीनी वा त्वगावरणपूर्ण

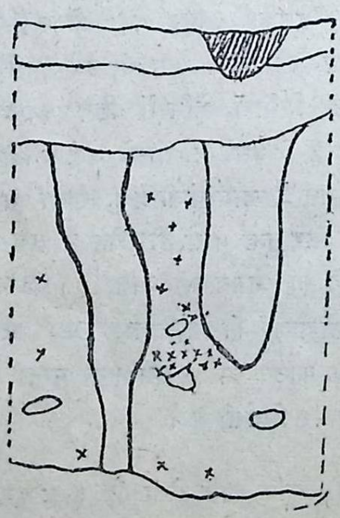

चित्र १५८—त्वक् का व्यत्यस्तच्छेद

संगठन : इसमें उड़नशील तैल ·८ से १·४ प्रतिशत व स्निग्ध म्यूसिलेज कैलसियम आक्जलेट स्टार्च का भाग होता है। इसमें ६ से १० प्रतिशत तैल का अंश होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्ण : बाहर से पीले रङ्ग का श्लक्ष्ण और छिद्र युक्त होता है। भीतर से लाल वर्ण का गहरे रङ्ग का होता है।

कषे व भंगे : पीत रक्त।

जल में : पीत वर्ण का।

तैल व घृत : पीत वर्ण का होता है।

गंध : सुगंधित मसालों की तरह।

रस : मधुर व ईषत् तिक्त।

शब्द : भंग करने पर चट से शब्द होता है। यह भंगुर है।

स्पर्श : स्पर्श में यह ऊपर व नीचे भी श्लक्ष्ण लघु-स्निग्ध ज्ञात होती है।

गण : प्रायशः मधुर होने से यह पार्थिव वर्ग का है।

मिश्रण : इसमें तज के छाल जो इसके समान पतले होते हैं या जंगली त्वक् के छाल मिला देते हैं। दालचीनी के वर्ग के कई पौधे मिलते हैं जिनकी छाल में सुगन्ध नहीं होती। व्यापारी वर्ग इसमें तत्सम छालों को मिला कर रङ्ग कर देते हैं और गंधार्थ दालचीनी का तेल लगा देते हैं। भारत व सिलोन में इसकी कई जातियां हीन गुण वाली होती हैं उनके त्वक् का भाग मिलाकर के व्यापारी वर्ग मिलावट करते हैं।

पंचांग का विवरण लेखन

स्वर्ण क्षीरी का पंचांग :

नाम : स्वर्ण क्षीरी, हेमक्षीरी।

वर्ग : अहिफेनादि वर्ग, पापावेरेसी।

चरक : भेदनीय।

सुश्रुत : अधोभागहर, श्यामादि गण, व्रण शोधन।

आकृति विज्ञान : यह एक कंटकयुक्त क्षुप है जो चार फीट तक ऊँचा होता है। क्षुप के समग्र भाग पर कांटे होते हैं। मूल से शिखर तक के किसी भाग को काटने पर या तोड़ डालने पर पीत वर्ण का क्षीर निकलता है। इसकी गंध विशिष्ट होती हैं। समग्र क्षुप पर एक श्वेत प्रकार का रज लगा होता है जिसे हटा देने पर नीचे का हरा वर्ण दिखाई पड़ता है। पत्र उत्कर्तित किनारी से युक्त लम्बे व कंटकाकीर्ण होते हैं। पुष्प पीले व फल शिम्बी युक्त कंटकाकीर्ण होते हैं विशेष विवरण नीचे है यथा :

मूल : मोटे क्षुप की मूल अंगुष्ठ प्रमाण होती है। वर्ण हल्का मटमैला भूरे

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रंग का होता है इनका आकार नलिकाकार ऊपर से स्थूल नीचे क्रमशः पतला होता जाता है। इस में उपमूलें कम होती हैं। मूल त्वक् मांसल रसयुक्त और आसानी से हटाये जा सकते हैं। वर्ण पीत होता है। बीच का मूल का काष्ठीय भाग श्वेत वर्ण कठिन और छेद लेने पर सछिद्र चक्राकार उग्र गंधयुक्त होता है। स्वाद में यह तिक्त होता है। काष्ठ में तीन भाग स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं यथा :

चित्र १५९

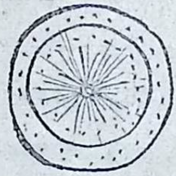

चित्र १६०

१ : बाह्यभाग : बाहरी श्वेत भाग कठिन सौत्रिक होते हैं।
२ : मध्य भाग : मृदु कुछ सूत्रों से बना होता है।
३ : आभ्यंतर भाग : बीच का भाग मज्जायुक्त मृदु होता है।

कांड व शाखायें : नलिकाकार वृंत्त, कंटकयुक्त अंगुलिवत स्थूल व मृदु होता है। शाखायें कम होती हैं। एक-एक में दो-दो होती हैं इन पर पांसुवत

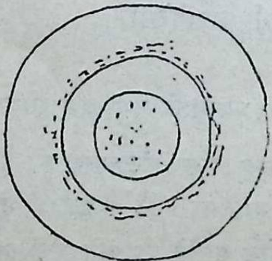

चित्र १६१—शाखा का छेद

श्वेत भाग लगा होता है। इस कारण वर्ण श्वेत दिखाई पड़ता है। इसके हटाने पर हरा वर्ण दिखाई देता है। ऊपर का काण्ड त्वक् मृदु व तनु होता है। इसके नीचे कुछ सौत्रिक भागयुक्त हरित वर्ण का मृदु घन भाग होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पत्र : पत्र लम्बे ६ से आठ इञ्च तक होते हैं जो किनारों पर कर्तित होते हैं। यह एकांतरित लगे होते हैं। पत्र वृन्तरहित होता है यह पत्रनिवेश स्थल पर एक चौड़ा आवरण बनाता है। पत्र में मध्यवर्ती शिरा शाखा पर नीचे तक जाकर लगी रहती है। पत्र की किनारी कटी हुई कोणीय और प्रत्येक कोण पर एक एक कंटक होते हैं। पत्र पृष्ठ पर पत्र की शिरायें उभरी हुई कंटकयुक्त होती हैं। यह ८ इञ्च तक लम्बा ६ से ढाई इञ्च चौड़ा और स्थूल होता है। पत्र पर भी श्वेत रज लगा होने से यह श्वेत दिखाई पड़ता है। गंध उग्र, स्वाद तिक्त होता है।

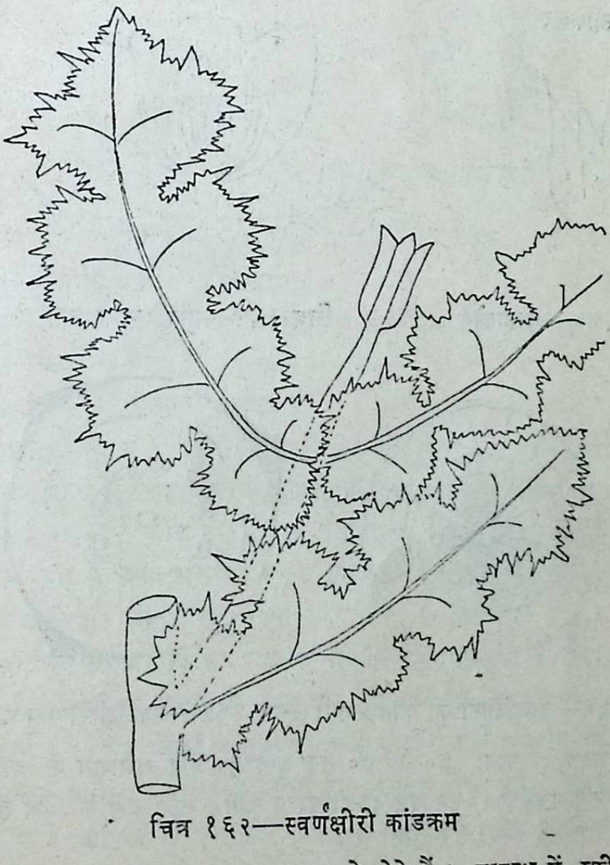

चित्र १६२—स्वर्णक्षीरी कांडक्रम

कंटक : यह मूल कांड व पत्र पर लगे होते हैं। प्रारम्भ में स्फीत और आगे तीक्ष्ण हो जाते हैं अग्र भाग में कंटक की तीक्ष्णता कम हो जाती है।

पुष्प : पुष्प शाखाग्र पर एकाकी पीत वर्ण के मृदु सुगंधयुक्त होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्प बाह्य कोष में ३ पुष्पदल होते हैं इनका वर्ण भस्माभ हरित श्वेत वर्ण का कंटकयुक्त होता है। इनके गिरते ही पुष्प विकसित हो जाता है। प्रारम्भावस्था में यह हरित वर्ण का तीन शिखरों वाला कंटकयुक्त होता है। प्रत्येक खंड पर एक-एक कंटक होते हैं। यह प्रस्फुटित होने पर पत्रवत दिखाई पड़ता है। पश्चात झड़ जाता है।

आभ्यंतर कोष :

इसके ६ दल होते हैं मूल भाग संकीर्ण और आगे का भाग चौड़ा होता है। दल श्लक्ष्ण चमकीले मृदु व वर्ण पीत होता है।

स्त्रीकेशर

चित्र १६३—वाह्यकोष

पुंकेशर

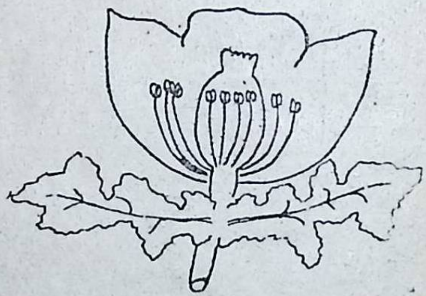

चित्र १६४—पुष्पविन्यास क्रम

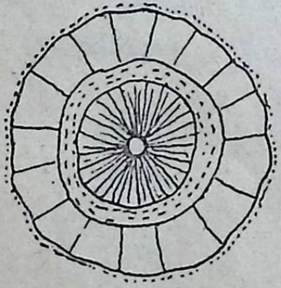

चित्र १६६—स्वर्णक्षीरी को कांड रचना

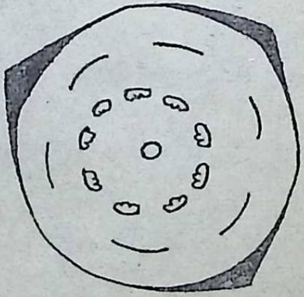

चित्र १६५—स्वर्णक्षीरी में पुष्पविन्यास

पुंकेशर : प्रायः ६० से ७० तक होते हैं और गर्भाशय के चारों ओर वृन्त से लगे रहते हैं। इन पर दो-दो पराग कोष लाल वर्ण के लगे होते हैं। लम्बाई गर्भाशय ग्रीवा तक होती है।

स्त्री केशर : एक गर्भाशय लम्बगोल व कठिन होता है। इस पर मृदु कंटक लगे होते हैं इसके अग्र भाग पर योनि क्षत्र ४ व ५ की संख्या में संलग्न होता है। वर्ण लाल होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

फल : यह एक से डेढ़ इञ्च तक लम्बा, आधे से एक इञ्च तक चौड़ा होता है। इस पर कंटक होते हैं। इस में प्रायः ६ खंड होते हैं। और संयुक्त होते हैं। परिपुष्ट होने पर बीज पूर्ण हो जाते हैं। और परिपक्व होने पर फट जाते हैं। बीज काले, गोल व बहुसंख्यक होते हैं। स्पर्श में चिकने चमकदार सर्षप की तरह दिखाई देते हैं।

चित्र १६७

फल का व्यत्यस्तच्छेद

चित्र १६८

अश्वगंधा के पंचांग का विवरण :

नाम : अश्वगंधा असगंधान, विथानिया सोम्नीफेरा।

वर्ग : कंटकारी वर्ग।

चरक : वल्य, बृंहणीय, मधुरस्कंध।

आकृति विज्ञान : यह एक क्षुपजातीय औषधि है। इसकी ऊँचाई ४ से ५ फीट तक होती है। यह देखने में सुन्दर हरित वर्ण का और परिपुष्ठ दल वाला क्षुप होता है। इस पर लाल रंग के फल लगते हैं। मूल इसकी काम में आती है। प्रधान कांड से ऊपर जाकर ४ या ५ तक शाखायें निकल आती हैं। बरसात में हरा-भरा दिखाई देता है।

मूल : मूल का वर्ण किंचित लाल व पीले वर्ण का होता है। ऊपर से यह मोटी व नीचे पतली हो जाती है। इस पर पतली-पतली उपमूल की शाखायें दिखाई देती हैं। मूल मोटाई में मूली की तरह मोटी होती है। प्रथम वर्ष में यह मृदु व पश्चात कठिन व सूत्रल हो जाती हैं। इसका बाह्य स्तर : त्वचा बाह्य स्तर पतला व सरलता से नाखून से हटाई जा सकती है। वर्ण लाल होता है। नीचे का वर्ण श्वेत होता है।

आभ्यंतर स्तर : यह मोटी होती है और सरलता से हटाई जा सकती है। वर्ण कुछ कम लाल होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

काष्ठ भाग : काष्ठयुक्त अधिक पिष्ठ भागों से युक्त होता है। रचना में तन्तु ऊपर से नीचे जाते दिखाई पड़ते हैं।

शाखा : हरे वर्ण के रोमश होते हैं। रोम के कारण वर्ण कुछ श्वेत दिखाई पड़ता है। ऊपर जाकर शाखा कई भागों में विभाजित हो जाती है। इन पर फिर फल लगते हैं।

व्यतस्त च्छेद : शाखा के च्छेद लेने पर यह निम्न रूप में दिखाई पड़ता है। यथा :

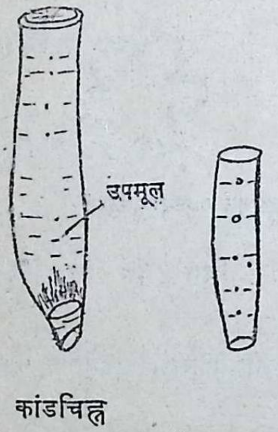

चित्र १६९—अश्वगंधामूल

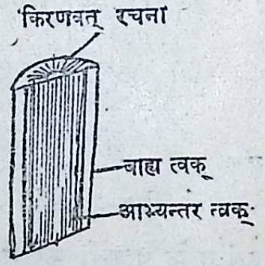

चित्र १७०

१ : बाह्य स्तर : हरी, श्लक्ष्ण व पतली होती है। और चारों ओर व्याप्त होती है।

२ : आभ्यंतर भाग : कुछ श्वेत व हरित वर्ण का होता है व मोटा होता है।

३ : काष्ठीय भाग : बीच का भाग काष्ठयुक्त और कठिन होता है। इसमें छिद्र भी पाये जाते हैं। बीच में मृदु मज्ज भाग का होता है।

पत्र : कांड पर एक पत्र एक स्थान से निकलता है। उसके मूल में ही उपपत्र भी निकलते हैं जो कि दो से तीन-तीन तक पाये जाते हैं। पत्र समानान्तर रहते हैं। इन पत्रों के अक्षि भाग से फल लगते हैं। इनकी लम्बाई २ से ४ इञ्च तक होती है। यह आकार में गोल व ऊपर कुंठित होते हैं। इसके बीच से मध्य शिरा निकलती है और उसके दोनों ओर अन्य शिरायें निकलती हैं। आभ्यंतर पृष्ट बाह्य से अधिक हरा होता है। पत्र के किनारे तरंगायित होते हैं। आकार लम्ब गोल होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्प : पत्र के कोण से पुष्प निकलते हैं जो संख्या में ४ से ५ तक होते हैं। वाह्य कोष में ५ पत्रक पाये जाते हैं। जो किंचित हरित श्वेत होते हैं। आभ्यंतर कोष में ५ पुष्प पत्र होते हैं। इसके बीच में पुंकेशर स्थित होते हैं इसकी संख्या ५ तक होती है। में बीच स्त्रीकेशर होता है। वृन्त छोटा-सा होता है।

फल : यह कच्चा रहने पर लाल हरित वर्ण का व पकने पर लाल वर्ण का हो जाता है। आकार में गोल व मकोय के फल की आकृति का होता है। भीतर वीज व रस भरा होता है। जिस में छोटे-छोटे वीज रहते हैं जिनका आकार मरिच के बीज की तरह होता है।

(निर्यास परीक्षा)

हिंगु परीक्षा

नाम : हिंगु, रामठ।

गण :

चरक : संज्ञा स्थापन, दीपनीय, कटुक स्कंध।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि, ऊषकादि।

प्राकृतिक : शतपुष्पादि अम्बेलीफेरी।

आकृति विज्ञान : हिंगु एक प्रकार का फेरुला फोयेटीडा नामक वृक्ष से निकलने वाला एक प्रकार का निर्यास है। जिसका वर्ण ईषत् पीत या लाल वर्ण का होता है। जो कि छोटे-छोटे टुकड़ों में या जमाये हुये थक्कों में बाजार में मिलता है। यह चमकदार व सुगन्धित विशिष्ट किस्म के गंध से युक्त होता है। यह गोल थक्के दार या चौकोर टुकड़ों के रूप में मिलता है। यह एक प्रकार के सूक्ष्म कणों के रूप में जमा हुआ निर्यास होता है।

स्थान : पूर्वी परसिया, अफगानिस्तान, या बिलूचिस्तान के प्रदेशों से आता है। यह खुरदरा, भंगुर व तोड़ने पर चमकदार अपारदर्शक या अर्द्ध पारदर्शक भिन्न-भिन्न प्रकार का मिलता है।

स्वाद या रस : इसका रस तीक्ष्णता लिये कटु व तिक्त होता है।

गंध : तीव्र स्थाई रहने वाला उग्र अहृद्य गंध विशेषतः रसोनगंधी होता है।

विलेयता : जल में पूर्णरूप से घुल जाता है। अलकोहल में आंशिक रूप से घुलता है। यह तैल व घृत में भी घुल जाता है।

संगठन : इसमें सुगंधित उड़नशील तैल ७ से १७ प्रतिशत व निर्यास में रालजातीय पदार्थ विशेष मात्रा में रहता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परीक्षा :

१ : ताजे टूटे हुए टुकड़े पर एक बूँद गंधक का तेजाब डालिये लाल रंग दिखाई पड़ेगा।

२ : तेजाव पानी से धो डालिये बैंजनी रंग भायलेट कलर दिखाई पड़ेगा।

३ : नये तोड़े टुकड़े पर शोरे का तेजाब ५० प्रति० डालिये हरा रंग दिखाई पड़ेगा।

४ : ३।१० ग्रेन चूर्ण ५ प्रतिशत अलकोहल में मिलाकर उबालिये। ठंडाकर के उसमें पांच मिली० ग्राम अल्कोहल डालिये और १० प्रतिशत अमोनिया का द्रव डालिये बैंजनी रंग मिलेगा।

५ : २ ग्रेन चूर्ण २ मिलीग्राम नमक के तेजाब में दो मिनट उबालिये। ठंडा होने पर बराबर पानी मिलाइये। पुनः १० प्रतिशत अमोनिया का घोल मिलाइये। तीक्ष्ण बैंजनी रंग दिखाई पड़ेगा।

पुन : पानी में इसको घोलने पर दूधिया रंग बन जाता है।

६ : तैल व घृत में डालने पर वर्ण श्वेत बन जाता है।

७ : हींग को जलाने पर उसके राख से भी हींग की गंध आती है।

हिंगु का परिचय

नाम : हिंगु, रामठ, वाह्लीक, सहस्रवेधी, जतुक आदि।

गण :

चरक : संज्ञा स्थापन, दीपनीय, कटुक स्कंध।

सुश्रुत : पिप्पल्यादि, ऊषकादि।

प्राकृतिक वर्ग : शतपुष्पा। अम्वेलीफेरी।

द्रव्य : यह एक प्रकार के फेरुला फोएटीडा नामक वृक्ष का निर्यास है जो उस पर चीरा लगा कर प्राप्त किया जाता है। हींग की कई जातियाँ होती हैं। जो कई प्रकार के पेड़ों से एकत्र किया जाता है। शास्त्रीय नाम से दो प्रकार का हींग का विवरण मिलता है। यथा :

१ : वह्लीक।

२ : रामठ।

वाह्लीक : वाह्लीक या वलख़ ईरान का एक प्रसिद्ध स्थान है। इसके आस-पास हींग की कई जातियाँ पाई जाती हैं। इस स्थान पर फेरुला फोएटीडा रीगल व फेरुला काली वोयस तथा हींग की कई अन्य जातियाँ भी पाई जाती हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तुर्किस्तान के अन्य कई प्रदेशों में भी हींग की कई जातियां पाई जाती हैं। इस स्थान से प्राप्त हींग को वाह्लीक और अफगानिस्तान, पांचाल इत्यादि देशों से प्राप्त हींग को रामठ कहते है।

इतिहास : हींग का प्रयोग भारतवर्ष में कई शताब्दियों से होता चला आ रहा है। चरक व सुश्रुत में इनके प्रयोग का विवरण मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि इसका प्रयोग भारतीय चिकित्सक ईसा के कई शताब्दी पूर्व से करते चले आ रहे हैं। भारतीय निघंटुओं में इसका विवरण विशेष प्रकार का मिलता है। इस प्रकार भारतीय चिकित्सक सहस्रों वर्ष से इसका प्रयोग करते हैं। जब कि यूरोप में इसका प्रयोग मध्यम युग से ही मिलता है।

इसका कई गणों में उपयोग किया गया है जैसे : ६ संज्ञा स्थापन, दीपनीय, कटुक स्कन्ध, पिप्पल्यादि और ऊषकादि गणों में इसका प्रयोग मिलता है। इसके नाम में भी वाह्लीक लिखा होने से यह भी सत्य है कि इसके स्थान का पता था। प्राचीनकाल में वाह्लीक भारतीय सीमा में आता था ऐसा पुराणों की कथाओं से ज्ञात होता है।

संग्रह : हींग के पेड़ छोटे क़द के कम ऊँचे होते हैं। यह सात-आठ फीट या १० फीट तक ऊंचे-ऊंचे होते हैं। इसके मूल व कांड से एक प्रकार की गंध निकला करती है। इसकी जड़ मोटी और कंदाकार होती है। इनका संग्रह वसंत ऋतु में किया जाता है। इस निमित्त वृक्ष के ऊपरी भाग को काट दिया जाता है तब उससे दूध निकल कर सूख जाता है और इनका संग्रह किया जाता है। इसी प्रकार कई बार काट-काट कर इनका संग्रह किया जाता है। हर बार नये स्थान से इसे काटते हैं और इसका दूध संग्रह करते हैं।

प्रथम बार का संग्रह उत्तम समझा जाता है। दूसरी विधि में केवल कांड व मूल पर ही चीरा लगाते हैं। और नीचे गढ़ा खोद देते हैं। और दूध बराबर निकल-निकल कर एकत्र होता है। इस प्रकार के हींग में मिट्टी व कंकड़ का भाग होता है। प्राचीन काल में बोलन व खैबर दर्रे से होकर इसका व्यापार होता था।

पहचान : हींग दो प्रकार का बाजार में पाया जाता है। छोटे-छोटे निर्यास के रूप में व जमे हुए थक्के के रूप में जो पांच-सात मिलीमीटर के आयताकार रूप में मिलता है। पहले बार का बनाया या एकत्र किया हुआ हींग श्वेत पीत वर्ण का होता है। अन्तिम बार का पीले रंग का होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हींगु :

यह अपारदर्शक होता है। ग्रिनिथेद का कहना है कि लाल रंग का हींगु फेरुला का और भूरा वर्ण वेरुला का होता है। गंधकाम्ल में डालने पर व धो देने पर यह पाटल वर्ण का हो जाता है। ५० प्रतिशत शोरकाम्ल के डालने पर यह हरा रंग देता है। हींग तोड़ने पर कड़ाई से टूटता है एमोनिकम के डालने पर यह मृदु हो जाता है। थक्का भी तोड़ने पर ऐसा ही होता है। किन्तु इसमें कंकड़ पत्थर मिला होता है। बाजारों में कई प्रकार के नकली व बनावटी हींग मिलते हैं। लाल, पीले, सफेद आदि। नकली हींग को बनाने के लिए किसी गोंद के साथ मिला कर जरा लाल रंग देकर मोटे-मोटे थक्के बनाये जाते हैं। इसमें रसोन की सी गंध आती है। जल में घुलाने पर यह दूधिया रंग का हो जाता है। ९० प्रतिशत अलकोहल में यह घुलनशील है। जलाने पर भस्म जिसमें कम मिलता है वही उत्तम होता है। कई व्यापारियों का मत है कि भस्म अवशिष्ट नहीं होना चाहिए। परन्तु १५ प्रतिशत तक भस्म का होना हानिकारक नहीं है।

संगठन :

इसमें एक प्रकार का उड़नशील तैल होता है। राल ५० प्रतिशत।

एसोरेजिनल फैरुलेट १६.५२ प्रतिशत।

फ्री फेरुलिक एसिड १.३३ प्रतिशत।

ईथर, सोल्यूबल रेजिन १ प्रतिशत। गम व अशुद्धियां ३१ प्रतिशत कुछ गंधक का भाग।

फेरुला गाल बेनम

स्थान : यह एक प्रकार का हींग ही है जो कि फेरुला गाल बेनम से प्राप्त होता है। यह भी हींग के साथ या पृथक ही बेचा जाता है। यह गाल बेनम फुवा के वृक्षों से चीरा लगा करके एकत्र किया जाता है। यह भी नैसर्गिक क्षीर के संग्रह से ही प्राप्त किया जाता है। कुछ लोग इसके पेड़ पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर चीरा लगा कर एकत्र करते हैं। और क्षीर को सुखा लेते हैं कभी कभी पेड़ के नीचे गढ़ा खोद कर ऊपर चीरा लगा देते हैं। और क्षीर संग्रह होने पर इसे एकत्र कर लेते हैं और सुखा देते हैं।

पहचान :

यह तोड़ने पर भूरे रंग का होता है। यह चीकट व सान्द्र होता है अधिक चिपकता है। यह दबा कर फैलाया जा सकता है। इसमें मिट्टी, फल व त्वक्

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मिले होते हैं। इसको अमोनिया के अल्कोहलिक द्रव में डालने पर बैंजनी रंग का हो जाता है या झाग देता है।

संगठन : इसमें उड़नशील तैल ६३ प्रतिशत।
गम व मिट्टी आदि २७ प्रतिशत मिलता है।

गुग्गुलु

वर्ग : वातसंशमन वर्ग।

आकृति विज्ञान : यह बालसमोडेन्ड्रन मुकुलनामक वृक्ष का गोंद है। यह निर्यास थक्कों में छोटे या बड़े जमाव के रूप में पाया जाता है। इसका वर्ण पीला स्वर्णाभ कण समूह से पूरित होता है। इसके पेड़ों के ऊपर चीरा लगाकर प्राप्त किया जाता है। कभी-कभी पेड़ों के नीचे की जमीन साफ करके इसके काण्ड के ऊपर चीरा लगा देते हैं फिर इसका निर्यास एकत्र होकर गढ़ों में सूख जाता है। अतः इसमें मिट्टी भी मिली हुई होती है। तोड़ने पर यह भीतर से रक्त पीत वर्ण का दिखाई पड़ता है। इसका कोई नियमित आकार नहीं होता। इसमें पेड़ की पीली त्वचा, लकड़ी और कंकड़ मिले होते हैं। आर्द्र करने पर यह फूल कर दुग्धाभ हो जाता है। यह रालजातीय अनियमित कणों का संगठित पदार्थ है।

वर्ण परिज्ञान : पीतारुण वर्ण होता हैं। दबाने या चूर्ण करने पर श्वेत और चूर्ण अधिक इकट्ठा होने पर भी श्वेत वर्ण का दिखाई देता है।

कषे : पीत श्वेत वर्ण का।

दाहे : दग्ध करने पर श्वेत व कृष्ण वर्ण का।

भंगे : पीतारुण वर्ण।

क्वाथ : दुग्धवत श्वेत।

तैल : तैल में धूम्रवर्ण।

घृत : में श्याम वर्ण का होता है।

ज्वाला : ज्वाला का वर्ण अधिक श्वेत वर्ण।

घुलनशीलता : उष्ण जल में घुलनशील है। तैल, घृत में भी घुलनशील है। किन्तु अल्पांश में।

गंध : प्रकृत वर्ण व गंध सुगंधयुक्त, हृद्य गंध देता है।

धूपन करने पर यह सुगंधयुक्त गंध बिखेरता है। आग में रखने पर प्रथम यह पिघलता है। पश्चात धूम गहरे श्वेत वर्ण का देता है। फिर ज्वलित हो जाता है। टेस्ट टयूब में रखकर जलाने पर यह प्रथम श्वेत वर्ण का धूम देता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है अधिक एकत्र होने पर इसमें ज्वाला लगाने पर ज्वलित हो जाता है धूम टेस्ट ट्यूब में जल कर एक स्थाई लाल रंग का तैल बिन्दु रूप में एकत्र हो जाता है।

रस विज्ञान : प्रथम यह मुख रस में घुलता है। तवतक ईषत् कषाय रस ज्ञात होता है। इसके पश्चात् तिक्त कटुरस व जिह्वा पर चिमि चिमायन प्रगट करता है। अन्त में तीक्ष्ण असह्य होता है। तिक्त अधिक उससे कम और पश्चात किंचित कषाय रस ज्ञात होता है। जब वृक्ष से ताजा निकलता है यह प्रथम मधुर कषाय पश्चात तिक्त कषाय होता है।

स्पर्श विज्ञान : गुग्गुलु के कण जमकर सूखने पर स्पर्श में कठिन स्निग्ध पिच्छिल सान्द्र तथा भार में गुरु होता है।

शब्द विज्ञान : ज्वलन काल में चिरचिराहट पैदा करता है। यह भंगुर होता है।

भौतिक गण : प्रायशः तिक्त, कटु और कुछ कषाय होने से यह आग्नेय वर्ग का होता है।

गुगुल का नैसर्गिक वर्ग बरसीरेसी है।

कुमारीसार या एलुवा

प्राप्तिस्थान : एलुवा घृतकुमारी के स्वरस से संगृहीत होता है। इसकी १६० जातियां पाई जाती हैं। उनमें से अधिकतर उष्ण देशों में पाई जाती हैं। विशेषकर भारतवर्ष और अफ्रिका में। इसकी कुछ जातियाँ यूरोप, पूर्वी व पश्चिमी द्वीप समूहों में भी पाई जाती हैं। यह एक प्रकार का विचित्र पौधा है। जो कम पानी के प्रदेशों में उत्पन्न होता है। इसकी पत्तियां मोटी तथा दृढ़ और किनारों पर कांटों से युक्त होती हैं। इनमें से कुछ तो बहुत ही छोटी जाती के और कुछ बहुत बड़े आकार के होते हैं। इनके बीच से एक पुष्पदंड निकलता है, जिसके ऊपरी भाग पर पुष्पों का समूह लगा होता है। इसका ऊपरी भाग पुष्प मंजरी का स्वरूप धारण करता है। पुष्पों का वर्ण लाल होता है यह देखने में बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ता है। कई प्रकार की इसकी जातियां विशेष मिलती हैं। यथा :

१ : एलो पेरियाई।
२ : एलो वेरा।
३ : एलो चाइनेंसिस।
४ : एलो फेरोक्स।
५ : एलो अफ्रिकाना।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एलो पेरीयाई : यह बहुवर्षीय क्षुप होता है। कांड १५ से २० मीटर ऊँचा, पत्तियां पीत हरित व लाल वर्ण की तीक्ष्णाग्र और कंटकयुक्त होती हैं। पुष्प रक्त और पीत होते हैं।

एलो वेरा : यह उत्तरी अफ्रिका में खेती से प्राप्त होता है। कांड ३० से ६० सें० मी० ऊंचे हरी पत्तियों से युक्त जो १५ से ३० मिली मी० लम्बी होती हैं। जिसके किनारों पर कंटक समकोण रूप में रहते हैं। पुष्प पीला होता है।

एलो चाइनेंसिस : वेकर और एंग्लर इसे दो का भेद मानते हैं। इसकी पत्तियाँ वेरा से छोटी होती हैं। इसका सर्वप्रथम ज्ञान चीन से हुआ था। अतः इसे चाइनेंसिस कहते हैं।

एलो फेरोक्स : यह दक्षिणी अफ्रिका में अधिक पाया जाता है। यह ८ से १८ फीट ऊंचा होता है। इसके पत्र बहुत घने और पुष्प श्वेत वर्ण के होते हैं। पत्रों की लम्बाई १५ से १७ सें० मी० होती है।

एलो अफ्रिकाना : यह अफ्रिका में पाये जाते हैं। इसके क्षुप छोटे पेड़ों की तरह होते हैं।

भारतीय एलो : भारतवर्ष में उपर्युक्त सब किस्में पाई जाती हैं। राजस्थान, सौराष्ट्र के भागों में इनकी उत्पत्ति अधिक होती है। सामान्यतया जहां की भूमि ऊसर हो ऐसे स्थानों में इसकी प्रचुर मात्रा पाई जाती है। एलो वेरा और चाइनेंसिस भी इन्हीं स्थानों में पाये जाते हैं।

एलो फेरोक्स : भारतवर्ष में बहुतायत से उन प्रदेशों में पाया जाता है जहां की भूमि उपजाऊ हो इसकी ऊँचाई ६ व ५ फीट तक होती है और इसके पत्र ३ से लेकर ४ फीट तक लम्बे, नोकदार, किनारों पर मुड़े हुए कांटों से युक्त गहरे हरे वर्ण के होते हैं। इनके बीच-बीच में सफेद रंग की धारियाँ होती हैं। ये १ से २ इंच तक मोटी होती हैं।

इतिहास : घृतकुमारी भारतवर्ष में सुपरिचित औषधि है। वेदों के काल से ही इसका व्यवहार होता है। ईसवीय सन् ५०० वर्ष पूर्व में इसका व्यवहार औषध रूप में प्राप्त होता है।

इतिहास : ब्रिटिश फार्माकोपिया में इसको सबसे पहले १९४८ ईस्वीय में समाविष्ट किया गया था। कहानियों से द्वारा ऐसा जान पड़ता है कि इसका ज्ञान निग्रो लोगों को ईस्वीय सन् से चार शताब्दी पूर्व ज्ञात था और सिकन्दर महान ने इसे पूर्व के देशों से लाकर अपने यहाँ लगवाया था। और उसकी खेती भी की जाती थी। दशवीं शताब्दी में इसका ज्ञान इंग्लैंड में हुआ था। इस्ट इण्डिया

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कम्पनी के रिकर्ड से ऐसा ज्ञात होता है कि १७वीं शताब्दी में इसका व्यापार किया जाता था।

संग्रह विधि : यद्यपि इनकी पत्तियों का प्रयोग औषधार्थ हुआ था। ताजी औषधि ही काम में लाई जाती थी। किन्तु उसके व्यापारिक क्रम के लिए इसको सुखाकर संग्रह किया जाता है। जिसे मुसब्बर या एलुवा के नाम से पुकारा जाता है। सबसे पहले इसको अरबी व्यापारियों ने लालसमुद्र के रास्ते जंजीवार और बंबई में पहुँचाया था। इसका व्यापार बड़े-बड़े पीपों में अथवा चर्म के थैलों में होता था। यह उस समय भी गीला रहता था और पुनः सुखा कर काम में लाते थे। इसमें एक प्रकार की गंध होती है। कई प्रकार की मुसब्बर की जातियाँ बाजार में मिलती हैं। यथा :

१ : पूर्वी अफ्रिका का एलुवा।

२ : जंजीवार का एलुवा।

३ : केप का एलुवा।

४ : पश्चिमीय द्वीप समूहों का एलुवा।

वर्तमान काल में एलुवा की प्राप्ति भारतवर्ष में बाहर के बाजारों से ही होती है। यद्यपि भारतवर्ष में इसकी सारी जातियां पाई जाती हैं और हजारों मन एलुवा जो बनता है उसकी घृतकुमारी नष्ट हो जाती है। परन्तु किसी भारतीय के मन में इसके व्यापार की बात न सूझी।

विधि : प्रायः प्रत्येक देश में एलुवा संग्रह करने की विधि एक ही है। यथा : जमीन के भीतर २० इंच लंबा और ६ इञ्च गहरा गढ़ा खोद कर उसमें बकरे का चर्म या कैनवास का टुकड़ा रख देते हैं और इसके ऊपर ताजी कटी हुई पत्तियों को इस प्रकार एक दूसरे के ऊपर रख देते हैं कि पत्ते का चौड़ा भाग गढ़े की तरफ रहे। एक बार में २ या ३ सौ पत्तों को तर-ऊपर रख देते हैं। धीरे-धीरे रस चूकर गढ़े में एकत्र होता है। अच्छे मौसम में सारा रस ६ से ८ घंटे में नितर जाता है। इसके बाद इसके रस को एक टीन में डालकर मंद आंच पर पकाते हैं। धीरे-धीरे इसको गाढ़ा होने देते है, इसको बराबर चलाते रहते हैं और बीच-बीच में उठाकर देखते रहते हैं जब इसकी चासनी गाढ़ी हो जाती है और पानी में डालने पर जम जाती है एवं सरलता से टूट जाती है तो इसे ठीक समझते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार के डिब्बों में संग्रह कर लेते हैं।

रासायनिक परीक्षा :

सामान्य प्रतिक्रिया : १ ग्राम औषधि को १०० मिलीग्राम औषधि में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उबालते हैं और उसे छान लेते हैं। इस पर भिन्न-भिन्न रसों की प्रतिक्रिया भिन्न प्रकार की होती है।

१ : शार्टेन की परीक्षा : छना हुआ विलयन ५ मिलीग्राम में। .२ ग्राम सुहागा को मिलावें। तब तक ताप दें जब तक कि घुल न जाय। इसकी कुछ बूंदें जल भर कर डाले तो उसमें हरा झाग दिखाई देगा।

२ : ब्रोमिन टेस्ट : एलुवा के २ ग्राम विलयन में ब्रोमिन का ताजा किया हुवा विलयन डालें।

हीराबोल की परीक्षा

वर्ग : गुग्गुल्वादि।

आकृति विज्ञान : यह एक प्रकार के गूगलजातीय वृक्ष वालसमोडेंड्रन-मिर्ह नामक एक वृक्ष की गोंद है जो कि वृत्ताकार छोटे-छोटे गोंद के समूह के थक्कों से जमा हुआ गोंद का जमाव है। यह छोटे-छोटे टुकड़ों में पीले लाल रंग के निर्यास के रूप में मिलता है। गोल-गोल कणों के जमाव के कारण यह विषम सतह वाला होता है। स्पर्श में यह खुरदरा और रूक्ष होता है। इसका वर्ण पीले लाल रंग का होता है। इसके साथ चिपके हुये वृक्ष के त्वग्भाग भी सम्मिलित होते हैं। इसके कण अल्प भासुर पारदर्शक होते हैं। इसमें एक प्रकार की सुगन्ध भी आया करती है। पानी में डालने पर यह डूब जाता है। यह उष्णोदक में पूर्णरूप से घुलनशील होता है। तैल व घी में भी यह घुल जाता है। किन्तु राल का भाग तो घुल जाता है पर निर्यास का भाग नीचे बैठ जाता है।

घुलनशीलता :

जल : जल में घुल कर यह दूधिया पीत वर्ण बनाता है गाढ़ा होने पर तो यह हल्के बादामी वर्ण का हो जाता है।

तैल घृत : तैल व घृत में धीरे-धीरे मन्द अग्नि देने पर पिघलता है और इसका वर्ण लाल हो जाता है।

ज्वाला : जलाने पर यह लाल वर्ण की शिखा निकालता है।

गंध : इसमें मंद सुगंध होती है। जलाने पर यह उग्र गंध देता है।

स्पर्श : स्पर्श में यह खर, कठिन रूक्ष, होता है।

शब्द : ज्वलनकाल में कोई शब्द नहीं देता।

रस : रस में यह तिक्त अधिक ईषत् कषाय और मधुर होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्ग : प्रायशः तिक्त, ईषत् कषाय और मधुर होने से यह तैजस वर्ग का है।

द्वितीय भेद :

परिचय : यह एक ओलियोगमरेजिन जाति का भी फोरा मोलमोल नामक पेड़ के निर्यास का जमाया हुआ थक्का है।

वर्ण : वरसेरेसी वर्ग का है।

प्राप्ति : उत्तरी पूर्वी अफ्रिका व दक्षिणी अमेरिका से प्राप्त होता है।

आकृति विज्ञान : यह जमा हुआ एक अनियमित थक्का है। जो छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में पाया जाता है।

वर्ण : रक्त पीत या रक्त व भूरा।

सतह : शुष्क सूक्ष्म कणों से व्याप्त होता है।

शब्द : यह भंगुर होता है। टूटने पर इसकी सतह अनियमित, चमकदार, भूरे वर्ण का अर्द्धपारदर्शक होता है।

गंध : सुगंधित।

स्वाद : तिक्त, कटु, सुगंधयुक्त।

घुलनशीलता : पानी में यह दूधिया इमल्शन की तरह होते हैं। अलकोहल में यह कुछ घुल जाता है।

सर्जरस : रेजिन्स (Resins)

परिचय : सर्जरस की प्राप्ति देवदार्वादि वर्ग की यह ओषधियों के निर्यास को परिश्रुत करने के बाद चुवा हुआ राल का अंश है। यह ओलियो रेजिन जाति के पदार्थों के शेष रह जाने पर जम कर बन जाता है।

वर्ग : देवदार्वादि वर्ग।

स्थान : भारत वर्ष, अमेरिका व आल्पस पर्वत से।

आकृति निरीक्षण : यह जमे हुए थक्केदार जमावट के रूप में अनियमित आकार का कोणीय अथवा गोलाकार डंडों के रूप में प्राप्त होता है।

आकार प्रकार : अनियमित विभिन्न प्रकार के जमावट के रूप में होता है।

वर्ण : पीला अथवा पीत रक्त वर्ण का।

सतह : चिकना, चमकदार कभी-कभी श्वेत वर्ण की धूलि से युक्त होता है।

भंगे : यह भंगुर होता है।

गंध : सुगंधित व तारपीन के गंध से मिलता जुलता।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वाद : जिह्वा पर इसका स्वाद कुछ नहीं ज्ञात होता है। तैल व घृत में घुल कर यह तिक्त स्वाद का हो जाता है। जल में यह बहुत कम घुलता है।

घुलनशीलता : यह जल में अल्प किन्तु तैल व घृत में पूर्ण रूप से घुल जाता है।

तत्त्व : इसमें उवेटिक एसिड, रेजिन, उड़नशील तैल व तिक्त पदार्थ रहते हैं।

वर्ग : प्रायसः तिक्त, ईषत् कषाय होने से यह आग्नेय वर्ग का है।

रासायनिक परीक्षण :

१ : सर्ज चूर्ण को : १ ग्रेन चूर्ण को १ मिलीग्राम एसेटिक एनहाइड्राइड में मिलाइए। गर्म करिए, ठंडा होने दीजिए। एक बूँद गंधक का तेजाब मिलाइए।

परिणाम : प्रथम पाटल रक्त वर्ण फिर भायलेट व पश्चात भूरा रंग दिखाई पड़ेगा।

२ : १० मिलीग्राम के हल्के पेट्रोलियम में १-१ ग्रेन चूर्ण को मिलाइये। इसे छान कर कापर एसिटेट द्रव के ·१ प्रतिशत को दूने मात्रा में मिलाइए। अलग होने दीजिए।

परिणाम : ब्लूईश ग्रीन वर्ण दिखाई पड़ेगा।

३ : तैल में घोलिए व गर्म करिए, लाल पीला वर्ण दिखाई पड़ेगा।

४ : शुद्ध घृत में डालकर घोलिए, गर्म करिए, पीत वर्ण मिलेगा।

५ : इसके चूर्ण को आग पर जलती आग पर डालिए, ज्वलित हो उठेगा।

६ : आग में डालिए, सुगंधित धूम उठेगा।

शल्लकी निर्यास परीक्षा, बोसवेलिया सेराटा

नाम : शल्लकी निर्यास, कुन्दुरु।

वर्ग : परीक्ष्य द्रव शल्लकी निर्यास है।

वर्ग : गुग्गुल्वादि वर्ग।

आकृति विज्ञान : शल्लकी निर्यास विषमाकृति के छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में प्राप्त होती है। यह स्पर्श में खर और कठिन होते हैं। इसका वर्ण विषम है। कहीं यह श्याव, कहीं पीत श्वेत व रक्त होता है। वर्ण मिश्रित दिखाई पड़ते हैं। जब नया होता है तब यह पीताभ रक्त वर्ण का दिखाई देता है। थोड़ा-थोड़ा निर्यास निकल कर के एक बड़ा टुकड़ा बन जाता है। इसके कुछ टुकड़े पीताभ गोल चमकदार होते हैं। कुछ अर्द्धपारदर्शक होते हैं। अधिक समय तक वायु

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

में रखने पर यह ऊपर से श्वेत वर्ण का दिखाई पड़ता है। पानी में भिगोने पर यह मृदु और श्वेत वर्ण का दिखाई पड़ता है।

अग्नि के संपर्क में यह स्वयं जलने लगता है। जलते-जलते अंत में कृष्ण वर्ण का अवशेष रह जाता है। चूर्ण करने पर यह सूक्ष्म चूर्ण नहीं होता। यह। आसानी से टूटता भी नहीं।

च्छेदन : छेदन करने पर कोई विशेष प्रकार की रचना नहीं दिखाई पड़ती

परिणाम : सामान्यरूप से इसके टुकड़े ३० ग्रेन तक बड़े मिलते हैं।

वर्ण : प्राकृत, श्वेत पीताभ अथवा पीत रक्ताभ।

कषे भंगे : श्वेत-पीत।

चूर्ण : श्वेत पीत।

क्वाथ : श्वेत, दुग्ध वर्ण का।

तैल : पीत।

घृत : पीत।

ज्वाला : रक्ताभ।

विलेयता : वारि में अधिक घुल जाता है।

तैल व घृत : अल्प।

रस : प्रधान रस मधुर। अनुरस : तिक्त व कषाय।

गंध : मृदु सुगंधित, आर्द्र, उग्र गन्धयुक्त...धूपन में उग्र गंध।

स्पर्श : कठिन, खर, रूक्ष व गुरू।

शब्द परीक्षा : ज्वलनकालीन शब्द कुछ नहीं।

गण निर्णय : प्रायशः मधुर और ईषत् तिक्त कषाय होने से यह पार्थिव वर्ग का द्रव्य है।

लोहबान। बेनज़ोयनम् (Benzoinum)

निर्यास :

नाम : लोह निर्यास शाल निर्यास, लोहबान।

प्राप्ति : यह एक प्रकार का निर्यास है जो कि लोहबान के पेड़ स्टाईरेक्स बेनज़ोइन के पेड़ से प्राप्त किया जाता है। इसके लिये पेड़ के ऊपर क्षत करके उसका निर्यास निकालते हैं जब यह सूखकर गोंद की तरह कड़ा हो जाता है तब इसको एकत्र कर लेते हैं। व्यापारी इसे सुमात्रा का लोहबान कहते हैं।

वर्ग : लोहबान वर्ग या स्टाईरेसी (Styraceae)

प्राप्तिस्थान : सुमात्रा व जावा द्वीप।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आकृति विज्ञान : यह निर्यास थक्कों के रूप में ऊँचे-नीचे विषम रूप में स्थित मिलता है। जिस में पेड़ के त्वगीय अंश भी मिले रहते हैं। यह विभिन्न प्रकार के थक्कों के रूप में ही मिलता है।

वर्ण : भूरे रंग से लाल भूरे ताम्र वर्ण का अपारदर्शक निर्यास के रूप में मिलता है। इसके भंग श्वेत या रक्तिम वर्ण के होते हैं। यह भंगुर प्रकृति का सरलता से टूट जाने वाला निर्यास होता है।

गंध : इसकी गंध अच्छी व हृद्य होती है। गंध गूगल के गंध से मिलता-जुलता होता है।

रस : ईषत् तिक्त होता है।

घुलनशीलता : जल में नहीं घुलता। मुख के लालारस में भी नहीं घुलता। अलकोहल या स्प्रिट में कुछ अंश घुल जाता है।

संगठन : इसमें बेनजोइक एसिड, (Benzoic Acid) सिनेमिक एसिड (Cenemic Acid) सर्ज या राल का अंश (Resin) इस्टर आफ बेनजोइक (Ester of Benzoic) आदि मिलते हैं।

ब्रिटिश फार्माकोपिया में इसका संगठन निम्न है :

१ : गुगल निर्यासवत द्रव्य १९ से २९ प्रतिशत।

२ : बालसमिक एसिड ३० से ६० प्रतिशत।

रासायनिक परीक्षा :

१ : एक शुष्क टेस्ट ट्यूब में थोड़ा सा लोहबान चूर्ण डाल कर गर्म करिये। पहले लोहबान पानी में पिघलता है। फिर उसमें से श्वेत धूम निकलता है। लिटमस पेपर पर अम्ल का चिह्न देता है। ठंडा होने पर इस पर श्वेत वर्ण की वस्तु जम जाती है।

२ : आधी ग्रेन चूर्ण डालकर उसमें एक प्रतिशत घोल पोटैशियम परमेंगनेट का डालिये। १० मिलिग्राम। इससे एक प्रकार का लोहबान का तीव्र गंध निकलेगा।

तत्सम तज्जातीय द्रव्य :

१ : स्याम बेनजोइन (Ceam Benzoin) यह स्टाइरेक्स टानकिनेंस क्रैव के पेड़ से प्राप्त होता है।

२ : पेनांग बेनजोइन : (Penang Benzoin)

३ : प्लैबेंग बेनजोइन : (Paleambang Benzoin)

यह तीन प्रकार के लोहबान मिलते हैं। व्यापार में पृथक्-पृथक् या लोवान के साथ मिला कर बेंचे जाते हैं। इनका पृथक्करण इस प्रकार कर सकते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्थान :	वर्ण :	भंग :
१ : सुमात्रा, जावा।	रक्त भूरा अपारदर्शक	श्वेत दुग्धवत
२ : पेनांग, सुमात्रा	भूरे रङ्ग का	ग्लास की तरह गंधरहित
३ : पैलेम बैंग, सुमात्रा	भूरा या लाल ब्राउन	अल्प दर्शक लघुभारी या श्वेत अल्प गन्धी

मधु : हानी : (Honey)

संग्रह : मधु का संग्रह मधुमक्खी की एक जाति एपिस मेलिफिका लिन नामक मक्खी से संग्रहीत होता है। इनका संग्रह मधु के छत्तों में होता है। यह मधुर, स्वादिष्ट गाढ़ा द्रव होता है।

प्राप्तिस्थल : भारतवर्ष के प्रत्येक स्थान पर मिलता है। केलिफोर्निया, जमैका आदि स्थानों से भी प्राप्त होता है। भारत वर्ष के हरे-भरे जंगल इसके प्रधान स्थल हैं।

मधुमक्खी का जाति वर्ग एपाइडी...होमेनी टेरा।

निरीक्षण : आकृति में यह एक गाढ़ा, चिकना, अर्द्धपारदर्शक, ताजा रहने पर पीत वर्ण व गरम करने पर लाल हो जाता है। रख देने पर कालान्तर में इसमें शर्करा नीचे बैठ जाती है। यह गाढ़े द्रव जाति का द्रव्य है।

वर्ण : देश की स्थिति के अनुसार इसका वर्ण भिन्न प्रकार का होता है। भोरों का श्वेत, मधुमक्खी का लाल वर्ण का होता है।

स्वाद : अति मधुर, कुछ विशिष्ट स्वाद का।

आपेक्षिक गुरुत्व : एक से अधिक होता है।

घुलनशीलता : जल व अलकोहल में सर्वांश में घुल जाता है।

संगठन : यद्यपि देशानुसार इसका संगठन भिन्न होता है तथापि निम्न रूप सामान्य होता है।

१ : डेक्सट्रोज ३० से ४० प्रतिशत।

२ : लेव्यूलोज़ ३५ से ४० प्रतिशत।

३ : जल १५ से २० प्रतिशत।

४ : सुक्रोज़, थोड़ा डेक्सट्रिन, अल्प सुगन्धित द्रव्य व मोम तथा पराग कण।

रासायनिक परीक्षा :

१ : एक भाग मधु में चार भाग जल का मिलाइए।

२ : परीक्षण नली में समान भाग द्रव का व फेहलिंग का द्रव डालिए। वाष्प पर गर्म करिए। वर्ण परिवर्तन दिखाई पड़ेगा।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

खदिरसार परीक्षा

नाम : खदिर सार, कत्था, खैर।

गण :

चरक : कुष्ठघ्न गण, कषाय स्कंध।

सुश्रुत : सालसारादि गण।

प्राकृतिक वर्ग : बब्बूल कुल माइमोसी।

आकृति विज्ञान :

यह एक प्रकार का सार का भाग है जो कि खदिर के काष्ठ से व त्वचा को क्वथित करके रसक्रिया द्वारा घना करके तैयार किया जाता है। घन होने पर इसको जमा करके सुखा कर चतुष्कोण या वर्गाकार चक्रिकायें बना ली जाती हैं। ऊपर से देखने में यह घन कृष्ण व लाल वर्ण का दिखाई देता है। तोड़ने पर यह सरलता से टूट जाता है और किनारों पर कृष्णाभ हल्के कषाय वर्ण का तथा बीच में यह श्वेताभ दिखाई पड़ता है। बाजार में यह कई प्रकार के टुकड़ों में मिलता है। काले रंग के टुकड़े, कत्थई वर्ण के टुकड़े तथा श्वेत वर्ण के गुलाबी रंग के टुकड़े व श्वेत वर्ण के टुकड़ों में मिलता है। कुछ कारखाने पपड़ी की तरह पतले-पतले चौकोर टुकड़ों में बना देते हैं। इनमें नकली व मिलावट वाले भी होते हैं। खदिर के साथ बबूल के छाल को भी पका कर मिला देते हैं। यह खैर काले वर्ण के व तोड़ने में कठिनता से टूटते हैं।

रस परीक्षा : रस में कषाय व ईषत् तिक्त होता है।

विलेयता : यह जल में पूर्ण विलेय है। तैल व घृत में अत्यल्प घुलता है।

गंध : इसका कोई विशेष गंध नहीं होता। शुष्क व गंधहीन। चूर्ण में पानी मिला कर सूंघने पर मृत्तिकावत सोंधा गंध होता है।

स्पर्श परीक्षा : स्पर्श में कठिन, खर, रुक्ष व होता है।

शब्द परीक्षा : भग्न होने पर चट की आवाज होती है।

वर्ग : प्रायशः कषाय रस होने से यह वायव्य वर्ग का है।

अन्य परीक्षा :

१ : खदिर के घोल में चीड़ की लकड़ी की एक सलाई डुबाकर सुखा दीजिये। इस पर एक बूंद तेजाब का डालिए। लाल रंग दिखाई पड़ेगा।

२ : खदिर का एक रत्ती चूर्ण पांच मिलीग्राम गर्म अल्कोहल में मिलाइये। छानिये। हरा रंग मिलेगा।

३ : गैम्ब्रियर परीक्षा : ३ ग्रेन कत्था चूर्ण दो मिलीग्राम अल्कोहल में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मिलाइये। छानकर इसमें २ मिलीग्राम सोडियम होइड्रोआक्साइड व २ मि० ग्रा० हल्का पेट्रोलियम मिलाइये धीरे-धीरे हिलाइये। हरा रंग पेट्रोलियम स्तर पर मिलेगा।

अणुवीक्षण परीक्षा : थोड़ा सा चूर्ण स्लाइड पर रखिये। यंत्र में देखिये। असंख्य छोटे-छोटे सूई की तरह रचना वाले दाने दिखाई पड़ेंगे।

मोचरस का विवरण

नाम : मोचरस, शाल्मलि निर्यास।

गण :

चरक : पुरीष विरजनीय, शोणितास्थापन, वेदनास्थापन, कषाय स्कंध।

सुश्रुत : प्रियंग्वादि।

प्राकृतिक वर्ग : कार्पास कुल।

परिचय : मोचरस यह शाल्मलि का निर्यास है जोकि एक प्रकार के कीट के द्वारा शाल्मलि की शाखाओं पर निर्माण किया जाता है। यह एक प्रकार का काले रंग का जमा हुआ सेमल का रस होता है। यह आकार में विषम ऊँचा-नीचा, काले-भूरे वर्ण का होता है। कुछ लोगों का विचार है कि यह शाल्मलि का निर्यास है परन्तु ऐसा नहीं होता यह रस का जमा हुआ भाग होता है जो कि चमकदार भूरे रंग का, भीतर से खोखला और भंगुर होता है। यह स्पर्श में रुक्ष, खर, कठिन होता है। आर्द्र करने पर फूल कर चिकना व चिपचिपा हो जाता है। इस पर सलवटें पड़ी हुई रहती हैं। तोड़ने पर स्तर दिखाई पड़ते हैं।

वर्ण : इसका वर्ण रक्त कृष्णाभ, चूर्णित दशा में कृष्ण व भूरा होता है। इसका क्वाथ रक्त वर्ण का व तैल व घृत में यह लाल कालिमा युक्त होता है। ज्वाला पीत वर्ण की दिखाई देती है।

विलेयता : जल में अधिक घुलनशील है। घृत व तैल में अल्प।

रस : प्रायशः कषाय व कुछ मधुर होता है।

गंध : मृदु व सुगंधित होता है।

स्पर्श : मूर्त गुण : कठिन, खर, रुक्ष व लघु।

शब्द : भंगुर।

वर्ग : प्रायशः कषाय व ईषत् मधुर होने से यह वायव्य वर्ग का है।

000057

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चिकित्सोपयोगी ग्रन्थ

१ आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास (सचित्र)। प्रियव्रत शर्मा
प्राक्कथन श्री कर्ण सिंह । संशोधित द्वि० संस्करण (१९८१) १२५-००

२ नाडी-विज्ञानम् । महर्षिकणाद कृत । 'विद्योतिनी' भाषाटीका ।
व्याख्याकार इन्द्रदेव त्रिपाठी । द्वि० संस्करण (१९८७) १०-००

३ नाडी-परीक्षा । रावणकृत । वैद्यप्रभा भा.टी. । व्या. इन्द्रदेव त्रिपाठी (१९८३) १०-००

४ सन्तति-निग्रह (गर्भ-निरोध) । शिवदयाल गुप्त (१९८३) ५·००

5 Introduction to Dravyaguna by P. V. Sharma(1976) 75-00

६ समाज चिकित्साशास्त्र एवं स्वस्थवृत्त । शिवनाथ खन्ना (१९७६) ५०-००

७ आयुर्वेद प्रवर्तक देवता । रघुवीरशरणशर्मा (१९७६) २०-००

८ आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास (सचित्र) संक्षिप्त संस्करण ।
प्रियव्रत शर्मा । द्वि० संस्करण (१९८७) ५०-००

९ आयुर्वेदीय अनुसन्धान-पद्धति (सचित्र)। प्रियव्रत शर्मा (१९७६) ५०-००

१० पदार्थविनिश्चय । दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी (१९७६) ५-००

११ योगरत्नमाला । नागार्जुनविरचिता । श्रीमिद्भवटीयश्वेताम्बरभिक्षुगुणाकरकृत
लघुविवृतिसंवलिता । सम्पादक प्रियव्रत शर्मा (१९७७) २५-००

१२ आचार्यप्रियव्रतशर्मा व्यक्तित्व एवं कृतित्व । गुरुप्रसाद शर्मा (१९८७) ५-००

१३ कुमार तंत्र समुच्चयं । सचित्र (कौमारभृत्यम्) रमानाथ द्विवेदी तथा
अशोक कुमार वर्मा (१९७७) २५-००

१४ अभिधानरत्नमाला (षड्रसनिघण्टुः) । सम्पादक प्रियव्रत शर्मा (१९७७) २५-००

१५ प्रारम्भिक रसशास्त्र । (सचित्र) सिद्धिनन्दन मिश्र । च. सं. (१९८७) ४०-००

१६ प्रारम्भिक वनस्पति विज्ञान (सचित्र) कैलाश चन्द्र मिश्र तथा
हरेन्द्र नाथ पाण्डेय । द्वि. संस्करण (१९८६) ४०-००

१७ शालाक्य विज्ञान । (सचित्र) रवीन्द्र चन्द्र चौधुरी । संपूर्ण
द्वि० संस्करण (१९९०) १००-००

१८ वैद्य जीवनम् । लोलम्बराज विरचित । इन्द्रदेव त्रिपाठी कृत विद्योतिनी
हिन्दी टीका (१९७८) १०-००

१९ रतिज रोग शास्त्र । शिवकुमार शास्त्री (१९७८) २५-००

२० अष्टाङ्गहृदयम् । (सूत्रस्थान) अरुणदत्त कृत सर्वाङ्गसुन्दरा, अत्रिदेव कृत
विद्योतिनी हिन्दी टीका । सम्पादक प्रियव्रत शर्मा (१९९०) ७५-००

२१ अष्टाङ्गसंग्रहः । (शारीरस्थानम्) 'सुबोधिनी' हिन्दी व्याख्या
व्याख्याकार पक्षधर झा. सम्पादक प्रियव्रत शर्मा (१९८२) ३५-००
निदानस्थान । अत्रिदेव गुप्त कृत हिन्दी व्या० तथा भूमिकादि युत (१९८४) ३५-००

२२ अभिनव कौमारभृत्य । (नूतन बालरोग चिकित्सा) (सचित्र)
राधाकृष्ण नाथ । सम्पादक रमानाथ द्विवेदी (१९८५) ५०-००

अन्य प्राप्तिस्थान—(१) चौखम्भा ओरियन्टालिया
बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७
(२) चौखम्भा भारती अकादमी, खजान्ची रोड, पटना–८०० ००४

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection